M.A. II Semester (Theory) Course Code MUSI-201TH

CORE COURSE

General Study Of Ragas, Taalas and Instruments

Lesson 1 – 20

Dr. Kirti Garg

Deptt.Of Performing Arts (Music)

Himachal Pradesh University

Summer Hill, Shimla - 5

अनुक्रमणिका

पाठ संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
पाठ्यक्रम		4 – 5
प्राक्कथन		6 – 8
इकाई – 1		
LESSON – 1	राग शुद्ध सारंग, बिहाग, बागेश्री का तुल्नात्मक अध्ययन	9 – 25
LESSON – 2	राग बृन्दावनी सारंग और राग यमन का तुल्नात्मक अध्ययन	26 – 33
LESSON – 3	राग शुद्ध सारंग और राग बिहाग में विलम्बित और द्रुत ख्याल/गत की स्वरलिपि	34 – 60
इकाई – 2		
LESSON – 4	ख्याल गायकी और सितार वादन के घरानों की उत्पत्ति एवं विकास	61 – 76
LESSON – 5	प्रबन्ध, ध्रुपद और धमार गायन शैलियों का अध्ययन	77 – 90
LESSON – 6	ख्याल, तराना, चतुरंग, त्रिवट, मसीतखानी और रज़ाखानी गत का अध्ययन	91 – 101
इकाई – 3		
LESSON – 7	सांगीतिक वाद्यों का वर्गीकरण एवं सितार और सरोद वाद्य का ऐतिहासिक विश्लेषण	102 – 125
LESSON – 8	सुरबहार, तबला, तथा तानपूरा वाद्य का ऐतिहासिक विश्लेषण	126 – 140
LESSON – 9	वायलिन, शहनाई, बाँसुरी, पखावज वाद्यों का ऐतिहासिक विश्लेषण	141 – 157
LESSON – 10	तीनताल ताल, रूपक तथा आड़ाचौताल की दुगुन, तिगुन तथा चौगुन लयकारियों का अध्ययन	158 – 168

LESSON – 11	झपताल, चौताल और धमार तालों का शास्त्रोक्त अध्ययन	169 – 178
LESSON – 12	संगीत में लय और ताल का महत्व	179 – 185
LESSON – 13	ताल के प्राण	186 – 194
इकाई – 4		
LESSON – 14	स्थाय, गीति–रीति, काकु, कुतुप, गमक तथा आलप्ति का अध्ययन	195 – 212
LESSON – 15	मींड, घसीट, कण, साधारण, तान और अलंकार का अध्ययन	213 – 233
LESSON – 16	शास्त्रीय संगीत का भविष्य	234 – 244
LESSON – 17	हिन्दुस्तानी संगीत में यान्त्रिक वाद्यों की भूमिका	245 – 251
LESSON – 18	पं0 वी. एन. भातखण्डे और पं0 वी.डी. पलुस्कर की स्वरलिपि पद्धति	252 – 269
LESSON – 19	ललित कलाओं से संगीत का सम्बन्ध	270 – 278
LESSON – 20	राग–रस और राग–भाव में सम्बन्ध	279 – 285
	संक्षिप्त वस्तुनिष्ठ प्रश्न–उत्तर	286 – 287
	ASSIGNMENT	288

Syllabus

Semester – II

Course Code MUSI-201 TH

Theory Paper – Total Marks = 100 (For Reguler Students – 80 Theory + 20 IA)(For ICDEOL Students – 80 Theory +20Assignment)

Course Code	Course type	Course name	Paper type	Max Marks	Theory	IA	Min.Pass %	Credit
MUSI-201TH	Core Course	General Study of Ragas, Taalas and Instruments	Theory	100	80	20	36%	4

Time – 3 Hours

Instructions :

The question paper will contain 2 parts (Part A and Part B) in all.

Part A

- Ten (10) Objective type Questions (MCQ/True or False/Fill in the blanks etc.) for one (1) marks each. (10x1=10 marks) and
- Four (5) short answer questions of two (2) marks each covering whole syllabus.

Part B

Each question may contain sub parts & will be of long type

- Unit-I : One (1) question, out of Two (2) questions, is to be attempted for eight (15) marks.
- Unit-II : One (1) question, out of Two (2) questions, is to be attempted for eight (15) marks.
- Unit-III : One (1) question, out of Two (2) questions, is to be attempted for eight (15) marks.
- Unit-IV: One (1) question, out of Two (2) questions, is to be attempted for eight (15) marks.

Total Marks (A+B+C+D+E) 20+15+15+15+15=80 marks

Course of Study

Unit-I

1. Theoretical and comparative study of following Ragas:

(i) Shudh Sarang (ii) Bihag (iii) Bageshree (iv) Brindavani Sarang (v) Yaman

2. Notation of Vilambit Khayal/Gat and Drut Khayal/Gat in one of the following Raga with Alap and Tana/Toda, according to Bhatkhande notation system:

(i) Shudh Sarang / (ii) Bihag

Unit-II

1. Origin and Development of Gharana System with special references to Khayal Gayaki and Sitar Vadan.

2. Types of musical compositions Prabandha, Dhrupad, Dhamar, Khyal, Trana, Chaturang, Trivat, Maseetkhani Gat and Rajakhani Gat.

Unit-III

1. Classification of Indian Musical Instruments with special Historical knowledge of the following Instruments:

Sitar, Sarod, Surbahar, Violin, Tanpura, Shahnai, Bansuri, Tabla, Pakhawaj. 10

2. A study of the following Talas & ability to write them in Dugun, Tigun, & Chaugun Layakaries:

Teental, Jhaptal, Roopak, Chautal, Adachautal. Dhamar.

3. Importance of Laya and Tala in Music.

4. Pranas of Tala.

Unit-IV

1. Study of the followings:

Sthaya, Giti, Riti, Kaku, Kutup, Gamak, Alapti, Meend, Ghasit, Kan, Sadharan, Tana, Alankar.

2. The future of Indian Classical Music.

3. Role of Electronic Instruments in Indian Classical Music.

4. Notation system of Pt. V.N. Bhatkhande and Pt. V.D.Puluskar.

5. Relationship of Music with Fine Arts.

6. Relation between Raga-Ras & Raga-Bhav.

प्राक्कथन

सौंदर्य वही है, जहाँ प्रतिक्षण नवीनता हो।

संगीत वहीं है, जहाँ प्रतिक्षण साधना हो।

भारत एक ऐसा देश है जहाँ के समस्त देवतागण भी गायन, वादन और नर्तन की किसी न किसी विधा में पारंगत हैं। हमारा संगीत धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों से सम्बन्धित है। जिस–जिस काल में जैसा संगीत रहा, वैसा ही उसका शास्त्र बनता रहा। समाज की स्थितियों के कारण संगीत में जो परिवर्तन होते रहे हैं उन्हीं को ग्रहण करके शिक्षा–व्यवस्था उसमें ढलती रही है।

इसी आधार पर आज हमारी शिक्षा प्रणाली में भी अन्तर आया है। आज नई उच्च शिक्षाप्रणाली (CBCS)का समावेश हमारे शिक्षा के क्षेत्र में हुआ है। अतः सर्वप्रथम नई उच्च शिक्षा प्रणाली (CBCS) के अन्तर्गत शिक्षा ग्रहण करने वाले सभी नए विद्यार्थियों का इस नई प्रणाली में स्वागत!

संगीत की यह सामग्री M.A-II SEMESTER के शास्त्र–पक्ष (Theory) के लिए लिखी गई है। M.A-II SEM का यह पाठ्यक्रम नई शिक्षा प्रणाली (CBCS) के अन्तर्गत लिखा गया है। इस नवीन संस्करण में यथा–स्थान और यथा–सम्भव हर उपयोगी संगीत से सम्बन्धित सामग्री का समावेश कर दिया गया है। जो कि नए पाठ्यक्रम के अनुसार है।

इस शिक्षण सामग्री को अपने संगीत अनुभव के आधार पर लिखने का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही संगीत से सम्बन्धित पुस्तकों द्वारा भी संगीत की शिक्षण सामग्री एकत्रित की गई है। इसके अतिरिक्त संगीत गुरूजनों के सान्निध्य में रह कर उनसे भी प्रेरणा और जानकारी लेकर इस संगीत पाठ्यक्रम सामग्री को अधिक लाभदायक बनाने का प्रयास किया गया है। इस पाठ्यक्रम को भाषा व विषय–वस्तु की दृष्टि से पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया है।

इस पाठ्यक्रम के प्रथम भाग (इकाई–1) में

Lesson-1 में राग शुद्ध सारंग, बिहाग तथा बागेश्री का तुल्नात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

Lesson-2 में राग बृन्दावनी सारंग और राग यमन के तुल्नात्मक अध्ययन की जानकारी दी गई है।

Lesson-3 में राग शुद्ध सारंग और राग बिहाग में विलम्बित और द्रुत ख्याल/गत का लेखन किया गया है।

इस पाठ्यक्रम के दूसरे भाग (इकाई – 2) में

Lesson-4 में ख्याल गायकी और सितार वादन के घरानों की उत्पत्ति एवं विकास का वर्णन किया गया है।

Lesson-5 में प्रबन्ध, ध्रुपद और धमार गायन शैलियों का वर्णन किया गया है।

Lesson-6 में ख्याल, तराना, चतुरंग, त्रिवट, मसीतखानी और रज़ाखानी गत का विस्तृत वर्णन किया गया है।

इस पाठ्यक्रम के तीसरे भाग (इकाई – 3) में

Lesson-7 में सांगीतिक वाद्यों के वर्गीकरण एवं सितार तथा सरोद वाद्य का ऐतिहासिक विश्लेषण किया गया है।

Lesson-8 में सुरबहार, तबला तथा तानपूरा वाद्य के इतिहास तथा आकार–प्रकार का वर्णन किया गया है।

Lesson-9 में वायलिन, शहनाई, बाँसुरी तथा पखावज वाद्यों का वर्णन किया गया है।

Lesson-10 में तीनताल, रूपक एवं आड़ाचौताल को परिचय सहित अलग–अलग लयकारियों में लिखा गया है।

Lesson-11 में झपताल, चौताल और धमार तालों को परिचय सहित अलग–अलग लयकारियों में लिखा गया है।

Lesson-12 में संगीत में लय और ताल के महत्व का वर्णन किया गया है।

Lesson-13 में ताल के प्राण का वर्णन किया गया है।

इस पाठ्यक्रम के चौथे भाग (इकाई – 4) में

Lesson-14 में स्थाय, गीति–रीति, काकु, कुतुप, गमक और आलप्तिगान का वर्णन किया गया है।

Lesson-15 में मींड, घसीट, कण, साधारण, तान और अलंकार का वर्णन किया गया है।

Lesson-16 में 'शास्त्रीय संगीत का भविष्य' विषय पर प्रकाश डाला गया है।

Lesson-17 में 'हिन्दुस्तानी संगीत में यान्त्रिक वाद्यों की भूमिका' विषय पर प्रकाश डाला गया है।

Lesson-18 में पं0 वी. एन. भातखण्डे एवं पं0 वी. डी. पलुस्कर की स्वरलिपि पद्धति का वर्णन किया गया है।

Lesson-19 में 'ललित कलाओं से संगीत का सम्बन्ध' विषय पर प्रकाश डाला गया है।

Lesson-20 में 'राग–रस और राग–भाव में सम्बन्ध' विषय पर प्रकाश डाला गया है।

वास्तव में संगीत एक यज्ञ है और हम सब यज्ञी।

अतः यह आशा करती हूँ कि M.A.- II SEMESTER की परीक्षा में आने वाले प्रत्येक प्रश्न का उत्तर आपको इस पाठ्यक्रम सामग्री में अवश्य उपलब्ध होगा। यह भी आशा करती हूँ कि अन्य संगीत पाठकों को भी इसके अध्ययन से ज्ञान और लाभ प्राप्त होगा।

डा0 कीर्ति गर्ग

संगीत विभाग

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला।

:–:–:–:–:–:–:–:

UNIT – I

LESSON -1

Theoretical and Comparative Study Of Following Ragas

Shudh Sarang, Bihag, Bageshree,

STRUCTURE :

1.1 उदेश्य

1.2 राग शुद्ध सारंग

1.2.1 भूमिका

1.2.2 राग का पूर्ण परिचय

1.2.3 तुल्नात्मक अध्ययन

1.2.4 शुद्ध सारंग और श्याम कल्याण का तुल्नात्मक अध्ययन

1.2.4.1 समानता

1.2.4.2 भिन्नता

1.2.5 राग शुद्ध सारंग और राग मियां की सारंग में तुलना

1.2.5.1 समानता

1.2.5.2 भिन्नता

1.3 राग बिहाग

1.3.1 भूमिका

1.3.2 राग का पूर्ण परिचय

1.3.3 राग बिहाग और राग यमन कल्याण की तुलना

1.3.3.1 समानता

1.3.3.2 भिन्नता

1.4 राग बागेश्री

1.4.1 भूमिका

1.4.2 राग का पूर्ण परिचय

1.4.3 राग बागेश्री तथा राग भीमपलासी में तुलना

1.4.3.1 समानता

1.4.3.2 भिन्नता

1.5 सारांश

1.6 शब्दकोष

1.7 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

1.1 उदेश्य :–

इस पाठ में पाठ्यक्रम में दिए गए रागों का विस्तृत वर्णन एवं तुल्नात्मक अध्ययन किया गया है। जिसका यही उदेश्य है कि इसके माध्यम से हम सभी रागों के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे और उन रागों के जो समप्रकृत राग है, जो उन रागों के समीप के राग हैं उनके विषय में भी जान पाएंगे और आसानी से समझ पाएंगे। इन रागों के तुल्नात्मक अध्ययन के द्वारा प्रत्येक राग के विषय में गहराई से समझ पाएंगे।

1.2 राग शुद्ध सारंग

1.2.1 भूमिका :–

दो मध्यम शुद्ध स्वर, गावत शुद्ध सारंग।

रिप संवाद औडव–षाड़व, मध्याह्न काल आनंद।।

थाट – कल्याण

स्वर – दोनों मध्यम शेष स्वर शुद्ध

वादी – रिषभ

सम्वादी – पंचम

वर्जित स्वर – आरोह में गन्धार व धैवत तथा अवरोह में केवल गन्धार

जाति – औडव–षाड़व

समय – मध्याह्न

आरोह – ऩि सा, रे, म॑ प, ध म॑ प, नि सां।

अवरोह – सां नि, ध प, म॑ प, म रे, ऩि सा।

पकड़ – रे म॑ प, म रे, सा, ऩि ध़ सा ऩि रे सा।

न्यास के स्वर – रे, प और नि

समप्रकृत राग – श्याम कल्याण

1.2.2 राग का पूर्ण परिचय :–

इस राग को कल्याण थाट जन्य माना जाता है। इस राग में दोनों मध्यम तथा शेष शुद्ध स्वरों का प्रयोग होता है। इस राग का वादी स्वर रिषभ तथा सम्वादी पंचम माना जाता है। इस राग के आरोह में गन्धार और धैवत स्वर वर्जित होते हैं तथा अवरोह में केवल गन्धार वर्जित होता है। इसी कारण इस राग की जाति औड़व–षाड़व मानी जाती है। इस राग का गायन समय मध्याह्न माना जाता है।

इस राग के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह सारंग का एक प्रकार है। इस राग के आरोह में तीव्र मध्यम तथा अवरोह में शुद्ध मध्यम का प्रयोग किया जाता है। कभी–कभी दोनों मध्यम एक साथ भी प्रयोग किए

जाते हैं जैसे –– रे मे म रे, सा ऩि। राग शुद्ध सारंग के आरोह में रिषभ पर शुद्ध मध्यम का कण लेकर तीव्र मध्यम पर जाया जाता हैं। अवरोह में सदैव मध्यम से रिषभ पर मींड से आते हैं जैसे –– रे मे प म रे, ऩि सा।

यह एक गम्भीर प्रकृति का राग है। इस राग का चलन मुख्यतः मन्द्र और मध्य सप्तक में अधिक किया जाता है। इस राग में रिषभ, पंचम और निषाद स्वर पर न्यास किया जाता है।

1.2.3 तुल्नात्मक अध्ययन :–

इस राग का समप्रकृत राग श्याम कल्याण है। क्यूकि यह राग सारंग का एक प्रकार है तो यह राग कुछ रूप में बृन्दाबनी सारंग से भी मिलता है।

राग श्याम कल्याण और शुद्ध सारंग आपस में बहुत कुछ मिलते–जुलते राग हैं। इन दोनों रागों का उत्तरांग तो लगभग एक समान ही है। राग श्याम कल्याण के पूर्वांग में गंधार का प्रयोग एवं कामोद अंग का प्रयोग दोनों रागों को एक–दूसरे से अलग कर देते हैं। यह अन्तर इस प्रकार है –––

शुद्ध सारंग –– रे मं प, ध प मं प, म रे, ऩि सा।

श्याम कल्याण –– रे मं प, ध प मं प, ग म प ग म रे, सा।

प्राचीन काल में जब सारंग नाम का उल्लेख किया जाता था तो यह समझा जाता था कि राग शुद्ध सारंग की बात हो रही है लेकिन आज जब सारंग का नाम लिया जाता है तो यही समझा जाता है कि बृन्दावनी सारंग की बात की जा रही है।

1.2.4 शुद्ध सारंग और श्याम कल्याण का तुल्नात्मक अध्ययन :–

1.2.4.1 समानता :–

1. दोनों ही राग कल्याण थाट जन्य माने जाते हैं।
2. दोनों ही रागों का आरोह औड़व जाति का है।
3. दोनों रागों में दोनों मध्यम और शेष स्वर शुद्ध प्रयोग किए जाते हैं।
4. दोनों रागों में पंचम स्वर महत्वपूर्ण माना जाता है।
5. दोनों रागों में ' रे मं प,' ' प नि सां ' तथा ' म रे ' आदि स्वर समूह प्रयोग किए जाते हैं।

1.2.4.2 भिन्नता :–

1. शुद्ध सारंग एक स्वतंत्र राग है जबकि श्याम कल्याण में दो रागों कल्याण और कामोद रागों का मिश्रण पाया जाता है।
2. शुद्ध सारंग में रिषभ वादी और पंचम सम्वादी होता है जबकि श्याम कल्याण में पंचम वादी और षड़ज सम्वादी होता है।
3. शुद्ध सारंग का गायन समय दोपहर अर्थात् मध्याह्न माना गया है जबकि श्याम कल्याण का समय रात्री का माना जाता है।
4. शुद्ध सारंग में धैवत स्वर का प्रयोग अल्प होता है जबकि श्याम कल्याण में धैवत का प्रयोग अल्प नही होता अपितु उत्तरांग में धैवत का प्रयोग दोनों रागों को एक–दूसरे से अलग करता है।
5. शुद्ध सारंग की जाति औडव–षाड़व है जबकि श्याम कल्याण की जाति औडव–संपूर्ण मानी जाती है।
6. शुद्ध सारंग में गन्धार वर्जित है जबकि राग श्याम कल्याण के अवरोह में गंधार का प्रयोग किया जाता है और इसे आवश्यक स्वर भी माना जाता है। देखा जाए तो इन दोनों रागों को पूर्वांग में गंधार द्वारा ही अलग किया जाता है।

इस प्रकार राग श्याम कल्याण राग शुद्ध सारंग का समप्रकृत राग माना जाता है।

1.2.5 राग शुद्ध सारंग और राग मियां की सारंग का तुल्नात्मक अध्ययन :–

1.2.5.1 समानता :–

1. दोनों ही राग सारंग के प्रकार माने जाते हैं। अतः दोनों रागों में म रे, प म रे, प्रयोग किए जाते हैं।
2. दोनों रागों में रिषभ वादी और पंचम सम्वादी माना जाता है।
3. दोनों के अवरोह में गंधार स्वर वर्जित होता है।
4. दोनों रागों का चलन अधिकतर मन्द्र और मध्य सप्तक में होता है।
5. दोनों ही गंभीर प्रकृति के राग माने जाते हैं।
6. राग शुद्ध सारंग और राग मियां की सारंग दोनों ही ख्याल और ध्रुपद शैली के राग हैं क्योंकि इनमें किसी में भी ठुमरी आदि नहीं गाई जाती।
7. दोनों रागों का गायन समय मध्यान्ह माना जाता है।

1.2.5.2 भिन्नता :–

1. राग शुद्ध सारंग कल्याण थाट का राग है जबकि राग मियां की सारंग काफी थाट का राग माना जाता है।
2. राग शुद्ध सारंग में दोनों मध्यम प्रयोग किए जाते हैं जबकि मियां की सारंग में दोनों निषाद प्रयोग होते हैं।
3. शुद्ध सारंग की जाति औडव–षाड़व मानी जाती है जबकि मियां की सारंग की जाति औड़व–औड़व मानी जाती है।
4. राग मियां की सारंग में मल्हार और सारंग का मिश्रण पाया जाता है अतः इसमें रे प और दोनों निषादों की संगति दिखाई देती है जबकि शुद्ध सारंग में ऐसा स्वरों का प्रयोग गलत माना जाता है।
5. शुद्ध सारंग एक स्वतंत्र राग माना जाता है क्योंकि इसमें किसी अन्य राग का मिश्रण नहीं पाया जाता।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 राग शुद्ध सारंग का संक्षिप्त परिचय लिखिए।

प्र0.2 राग शुद्ध सारंग और राग श्याम कल्याण में क्या भिन्नता पाई जाती है ?

प्र0.3 राग शुद्ध सारंग और राग मियां की सारंग में समानता बताइए।

1.3 राग बिहाग :–

1.3.1 भूमिका :–

ग नी संवाद बनायकर, चढ़ते रे ध को त्याग।
रात्री दूसरे प्रहर में, गावत राग बिहाग।
या
कोयल मध्यम तीव्र सब, चढ़ते रे ध को त्याग।
ग नी वादी संवादिते, जानत राग बिहाग।

थाट – बिलावल

स्वर – सभी स्वर शुद्ध तथा कभी–कभी तीव्र मध्यम का प्रयोग भी किया जाता है।

वर्जित – आरोह में रे ध वर्जित तथा अवरोह सम्पूर्ण।

जाति – औढ़व–सम्पूर्ण

वादी – गान्धार

सम्वादी – निषाद

अंग – पूर्वांगवादी

समय – रात्री का दूसरा प्रहर

आरोह – सा ग, म प, नि सां।

अवरोह – सां, नि ध प, म ग, रे सा।

पकड़ – नि सा, ग म प, ग म ग, रे सा।

न्यास के स्वर – सा, ग, प, नि।

1.3.2 राग का पूर्ण परिचय :–

राग बिहाग, बिलावल थाट से उत्पन्न होता है। इसमें सभी स्वर शुद्ध लगते हैं। इस राग के आरोह में रिषभ और धैवत स्वर वर्जित होते हैं तथा अवरोह सम्पूर्ण होती है। अतः इस राग की जाति औड़व–सम्पूर्ण मानी जाती है। इस राग का वादी स्वर गान्धार तथा सम्वादी निषाद माना जाता है। इस राग का वादी स्वर गान्धार है जो सप्तक के पूर्वांग में आता है इसलिए यह राग पूर्वांगवादी राग कहलाता है। इस राग का गायन समय रात्री का दूसरा प्रहर माना जाता है। इस राग में 'सा, ग, प, नि' आदि स्वरों पर न्यास किया जाता है। इस राग के आरोह में रे और ध स्वर वर्जित होते हैं परन्तु इसके अवरोह में इन स्वरों का प्रयोग किया जाता है लेकिन इन्हें दुर्बल रखा जाता है जैसे 'सां नि, ध प, म ग, म प, म ग, रे सा'। इस स्वर समूह से स्पष्ट होता है कि अवरोही क्रम में 'रे' और 'ध' का प्रयोग कम किया गया है। 'ग नि' पर ठहराव होने के कारण 'रे' और 'ध' अपने आप दुर्बल हो जाते हैं। जब इस राग में तानें ली जाती हैं तब अवरोही क्रम में रिषभ और धैवत का प्रयोग पूर्ण रूप से किया जाता है। इस राग में तीव्र मध्यम विवादी स्वर के नाते लिया जाता है परन्तु आजकल तीव्र मध्यम इस राग का मुख्य स्वर बन गया है। बिना तीव्र मध्यम के बिहाग फीका लगता है। इसी तीव्र मध्यम के कारण विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। कुछ लोग इसे बिलावल थाट का राग मानते हैं और तीव्र मध्यम का प्रयोग केवल विवादी स्वर के नाते करते हैं। कुछ लोग इसे कल्याण थाट का राग मानते हैं और मध्यम तीव्र का स्वतन्त्र अथवा अनुवादी स्वर की तरह प्रयोग करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पुराने समय में बिहाग में केवल शुद्ध मध्यम का प्रयोग ही करतै थे। आगे चलकर तीव्र मध्यम का प्रयोग होने लगा और आज यह अनुवादी स्वर की तरह लगाया जाता है। लेकिन आज दोनों मध्यमों का प्रयोग इस राग में किया जाता है। इसमें तीव्र मध्यम का प्रयोग पंचम के सहारे

होता है जैसे – प म ग म ग। गायक–वादक राग बिहाग में निषाद का प्रयोग करते समय निषाद पर ठहरते हैं जिससे राग का रूप निखर उठता है और इस राग का सौन्दर्य बढ़ जाता है। यह श्रृंगार प्रधान राग है।

इस राग का चलन मन्द्र, मध्य और तार तीनों सप्तकों में समान रूप से होता है। इस राग में विलम्बित, द्रुत ख्याल तथा तराना गाया जाता है। इस राग से मिलता–जुलता राग यमन कल्याण है।

1.3.3 तुल्नात्मक अध्ययन :–

बिहाग :– नि ध प, म॑ प ग म ग, रेसा।

यमन कल्याण :– नि ध प, प म॑ ग म ग रे, नि़ रे सा।

1.3.3.1 समानता :–

1. दोनों का चलन मन्द्र 'नि' से प्रारम्भ होता है। कल्याण राग में 'नि़ रे ग' और बिहाग में 'नि़ सा ग' स्वरों से आलाप प्रारम्भ करते हैं।
2. एक मतानुसार दोनों ही कल्याण थाट के राग हैं। राग कल्याण तो कल्याण थाट का ही राग है किन्तु कुछ विद्वान जो बिहाग राग में तीव्र मे अधिक प्रयोग करते हैं, वे इस राग को बिलावल थाट का न मान कर कल्याण थाट का मानते हैं।
3. दोनों का अवरोह सम्पूर्ण है।
4. दोनों में 'ग' वादी तथा 'नि' सम्वादी माना जाता है।
5. दोनों रागों में 'सा, ग, प और नि' स्वरों पर निवास होता है।
6. दोनों ही गम्भीर प्रकृति के राग हैं, दोनों रागों का चलन तीनों सप्तकों में होता है।
7. दोनों ही पूर्वांग प्रधान राग हैं।
8. दोनों रागों का गायन समय रात्री का प्रथम प्रहर माना जाता है।

1.3.3.2 विभिन्नता :–

1. बिहाग बिलावल थाट का और यमन कल्याण राग कल्याण थाट का राग है।
2. राग बिहाग में थाट के विषय में मतभेद माना जाता है लेकिन कल्याण राग के विषय में ऐसा मतभेद नहीं है।
3. राग कल्याण अपने थाट का आश्रय राग है जबकि राग बिहाग आश्रय राग की श्रेणी में नही आता क्योंकि यह एक जन्य राग है।

4. बिहाग औड़व–सम्पूर्ण जबकि कल्याण सम्पूर्ण जाति का राग है।
5. यद्यपि दोनों रागों का अवरोह सम्पूर्ण है, लेकिन बिहाग के अवरोह में 'रे और ध' स्वर दुर्बल होते हैं जबकि कल्याण राग के अवरोह में ये दोनों स्वर प्रबल होते हैं।
6. कुछ विद्वान कल्याण राग का गायन समय रात्री का प्रथम प्रहर और बिहाग का गायन समय रात्री का द्वितीय प्रहर मानते हैं।
7. बिहाग में तीव्र मध्यम का प्रयोग विवादी स्वर के नाते किया जाता है जबकि कल्याण राग में तीव्र मध्यम का प्रयोग आवश्यक स्वर के रूप में किया जाता है।
8. राग बिहाग में जितना शुद्ध मध्यम महत्वपूर्ण है उतना ही राग यमन कल्याण में तीव्र मध्यम महत्वपूर्ण है।
9. दोनों रागों का चलन अधिकतर मन्द्र 'नि' से प्रारम्भ होता है किन्तु कल्याण के आरोह में अधिकतर पंचम वर्जित कर देते हैं जैसे –– 'नि़ रे ग ऽ मॅ ध नि,' किन्तु बिहाग के आरोह में कभी भी पंचम को वर्जित नहीं करते।
10. कल्याण राग में 'प रे' की संगति बहुत महत्वपूर्ण है, जैसे ––– नि़ रे ग मॅ प रे, नि़ रे सा। लेकिन बिहाग में 'प रे' का प्रयोग कभी नही होता।

इस प्रकार ये दोनों राग एक–दूसरे के समप्रकृत राग हैं जिसके कारण दोनों रागों में कुछ समानताएं तथा कुछ विभिन्नताएं पाई जाती हैं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली –2

प्र0.1 राग बिहाग का पूर्ण परिचय लिखिए।

प्र0.2 राग बिहाग और राग यमनकल्याण में समानता बताइए।

1.4 राग बागेश्वरी :–

1.4.1 भूमिका :–

ग नि कोमल, संवाद म सा, आरोही रे प काट।

मधुर राग बागेश्वरी, लखि काफी के थाट।।

या

तीव्र रे ध, कोमल ग म नि, मध्यम वादी।

खरज जहाँ सम्वादी है, बागेश्वरी बरवानी।।

राग परिचय :–

थाट – काफी

स्वर – ग नि कोमल शेष शुद्ध

वर्जित – रिषभ, पंचम

जाति – औढ़व–सम्पूर्ण

वादी – मध्यम

सम्वादी – षड़ज

अंग – उतरांगवादी राग

समय – रात्री का दूसरा प्रहर

आरोह – सा नि़ ध़ नि़ सा, सा म ग, म ध, नि सां।

अवरोह – सां, नि ध, म ग, म ग रे सा।

पकड़ – सा नि़ ध़ म़ ध़ नि़ सा, म ग रे सा, म ध नि ध, म ग रे सा।

न्यास के स्वर – सा, ग, म ध।

1.4.2 राग का पूर्ण परिचय :–

राग बागेश्वरी काफी थाट का राग है। इस राग में ग नि कोमल तथा शेष शुद्ध स्वर प्रयोग होते हैं। इस राग का वादी स्वर मध्यम तथा सम्वादी षड़ज है। इस राग का गायन समय रात्री का दूसरा प्रहर माना जाता है। इस राग के आरोह में रिषभ और पंचम स्वर वर्जित होते हैं, इसलिए इस राग की जाति औड़व–सम्पूर्ण मानी जाती है। इस राग की जाति के विषय में मतभेद पाया जाता है। कुछ लोग इसके आरोह में रिषभ व पंचम वर्जित करके इसे औढ़व–सम्पूर्ण मानते हैं, कुछ इसके आरोह तथा अवरोह दोनों में पंचम वर्जित करके इसे षाड़व–षाड़व मानते हैं। कुछ लोग इसमें सभी स्वर लगाकर इसे सम्पूर्ण जाति का राग मानते हैं लेकिन इसे औड़व–सम्पूर्ण जाति का राग मानना ही अधिक उचित है। कभी–कभी कुछ लोग इसमें शुद्ध निषाद का प्रयोग विवादी स्वर के नाते करते है। इस राग का वादी स्वर मध्यम होने के कारण यह पूर्वांगवादी राग माना जाता है।

इस राग में 'सा, ग, म ध' स्वरों पर न्यास किया जाता है। इस राग के अवरोह में पंचम का वक्र प्रयोग किया जाता है जैसे– 'म प ध ग'। सपाट तानों में इसका सीधा प्रयोग भी किया जाता है। राग बागेश्वरी में 'म

ध नि॒' की संगत बड़ी कर्णप्रिय लगती हैं। राग की सारी सुन्दरता इन्हीं स्वरों पर आधारित है। राग बागेश्वरी का समप्रकृत राग भीमपलासी माना जाता है। इस राग में ख्याल, ध्रुपद, तराना आदि अधिक अच्छे लगते हैं। यह अत्यन्त लोकप्रिय राग माना जाता है।

1.4.3 राग बागेश्वरी और राग भीमपलासी की तुलना :–

1.4.3.1 समानता :–

1. दोनों रागों की उत्पत्ति काफी थाट से मानी गई है।
2. दोनों में 'ग नि' कोमल तथा अन्य स्वर शुद्ध प्रयोग किए जाते हैं।
3. दोनों में 'म' वादी और 'सा' सम्वादी माना गया है।
4. दोनों की जाति औडव – सम्पूर्ण मानी जाती है।
5. दोनों रागों में 'सा म' की संगति बार–बार दिखाई जाती है।
6. दोनों राग बड़ा ख्याल, छोटा ख्याल तथा तराना के लिए उपयुक्त माने जाते हैं।
7. दोनों रागों का चलन तीनों सप्तकों में किया जाता है।

1.4.3.2 विभिन्नता :–

1. राग बागेश्वरी के आरोह में पंचम वर्जित तथा धैवत का प्रयोग किया जाता है जबकि राग भीमपलासी के आरोह में धैवत वर्जित तथा पंचम का प्रयोग किया जाता है।
2. राग बागेश्री का गायन समय रात्री का दूसरा प्रहर माना जाता है जबकि राग भीमपलासी का गायन समय दिन का तीसरा प्रहर माना जाता है।
3. कुछ विद्वानों के अनुसार बागेश्वरी एक स्वतंत्र राग है जबकि भीमपलासी दो रागों का मिश्रण माना जाता है।
4. राग भीमपलासी में पंचम का प्रयोग स्वतंत्र रूप से किया जाता है जबकि राग बागेश्वरी में पंचम की स्वतंत्रता सीमित हो जाती है अर्थात् आरोह में इसका प्रयोग नही होता और अवरोह में भी पंचम का प्रयोग वक्र किया जाता है।
5. राग बागेश्री में न्यास का स्वर धैवत माना जाता है जबकि भीमपलासी में मध्यम–पंचम न्यास के स्वर माने जाते हैं, धैवत नहीं।
6. राग बागेश्वरी का चलन मन्द्र धैवत से शुरू होता है जबकि भीमपलासी का चलन मन्द्र निषाद से होता है जैसे –– राग बागेश्वरी में 'ध़ नि़॒ सा म' और भीमपलासी में 'नि़॒ सा म' किया जाता है।

इस प्रकार दोनों राग एक–दूसरे से समानता रखते हुए भी कुछ बातों में भिन्नता रखते हैं जिससे दोनों का अलग स्वतंत्र रूप देखने को मिलता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 राग बागेश्री का संक्षिप्त परिचय लिखिए।

प्र0.2 राग बागेश्री और राग भीमपलासी में समानता बताइए।

1.5 सारांश :–

उपरोक्त पाठ में राग शुद्ध सारंग, बिहाग और राग बागेश्री रागों को पूर्ण परिचय के साथ वर्णित किया गया है। इन सभी रागों का तुल्नात्मक अध्ययन भी विस्तार से दिया गया है। जैसे राग शुद्ध सारंग कल्याण थाट का राग है और इस राग से मिलता–जुलता राग है राग श्याम कल्याण। इस लिए इन दोनों रागों का तुल्नात्मक अध्ययन विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार राग बिहाग की तुलना राग यमन कल्याण से तथा राग बागेश्री का तुल्नात्मक अध्ययन राग भीमपलासी के साथ किया गया है। ये सभी राग किस–किस रूप में अपने नज़दीकी रागों से मिलते हैं और कहाँ–कहाँ एक–दूसरे से भिन्न हैं, इसका विस्तृत वर्णन किया गया है।

1.6 शब्दकोष :–

1. समप्रकृत – एक समान प्रकृति वाला
2. गावत – गायन करना
3. त्याग –छोड़ना
4. बखानी – व्याख्या करना

1.7 स्वयं परीक्षा प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 राग शुद्ध सारंग का पूर्ण परिचय लिखिए।

उ0. **दो मध्यम शुद्ध स्वर, गावत शुद्ध सारंग।**

रिप संवाद औडव–षाड़व, मध्याह्न काल आनंद।।

थाट – कल्याण

स्वर – दोनों मध्यम शेष स्वर शुद्ध

वादी – रिषभ

सम्वादी – पंचम

वर्जित स्वर – आरोह में गन्धार व धैवत तथा अवरोह में केवल गन्धार

जाति – औडव–षाड़व

समय – मध्याह्न

आरोह – ऩि सा, रे, मं प, ध मं प, नि सां।

अवरोह – सां नि, ध प, मं प, म रे, ऩि सा।

पकड़ – रे मं प, म रे, सा, ऩि ध़ सा ऩि रे सा।

न्यास के स्वर – रे, प और नि

समप्रकृत राग – श्याम कल्याण

राग का पूर्ण परिचय :–

इस राग को कल्याण थाट जन्य माना जाता है। इस राग में दोनों मध्यम तथा शेष शुद्ध स्वरों का प्रयोग होता है। इस राग का वादी स्वर रिषभ तथा सम्वादी पंचम माना जाता है। इस राग के आरोह में गन्धार और धैवत स्वर वर्जित होते हैं तथा अवरोह में केवल गन्धार वर्जित होता है। इसी कारण इस राग की जाति औड़व–षाड़व मानी जाती है। इस राग का गायन समय मध्याह्न माना जाता है।

इस राग के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह सारंग का एक प्रकार है। इस राग के आरोह में तीव्र मध्यम तथा अवरोह में शुद्ध मध्यम का प्रयोग किया जाता है। कभी–कभी दोनों मध्यम एक साथ भी प्रयोग किए जाते हैं जैसे –– रे मे म रे, सा ऩि। राग शुद्ध सारंग के आरोह में रिषभ पर शुद्ध मध्यम का कण लेकर तीव्र मध्यम पर जाया जाता हैं। अवरोह में सदैव मध्यम से रिषभ पर मींड से आते हैं जैसे –– रे मे प म रे, ऩि सा।

यह एक गम्भीर प्रकृति का राग है। इस राग का चलन मुख्यतः मन्द्र और मध्य सप्तक में अधिक किया जाता है। इस राग में रिषभ, पंचम और निषाद स्वर पर न्यास किया जाता है।

प्र0.2 राग शुद्ध सारंग और राग श्याम कल्याण में क्या भिन्नता पाई जाती है ?

उ0. **भिन्नता :–**

1. शुद्ध सारंग एक स्वतंत्र राग है जबकि श्याम कल्याण में दो रागों कल्याण और कामोद रागों का मिश्रण पाया जाता है।
2. शुद्ध सारंग में रिषभ वादी और पंचम सम्वादी होता है जबकि श्याम कल्याण में पंचम वादी और षड़ज सम्वादी होता है।
3. शुद्ध सारंग का गायन समय दोपहर अर्थात् मध्याह्न माना गया है जबकि श्याम कल्याण का समय रात्री का माना जाता है।
4. शुद्ध सारंग में धैवत स्वर का प्रयोग अल्प होता है जबकि श्याम कल्याण में धैवत का प्रयोग अल्प नही होता अपितु उत्तरांग में धैवत का प्रयोग दोनों रागों को एक–दूसरे से अलग करता है।
5. शुद्ध सारंग की जाति औडव–षाड़व है जबकि श्याम कल्याण की जाति औडव–संपूर्ण मानी जाती है।
6. शुद्ध सारंग में गन्धार वर्जित है जबकि राग श्याम कल्याण के अवरोह में गंधार का प्रयोग किया जाता है और इसे आवश्यक स्वर भी माना जाता है। देखा जाए तो इन दोनों रागों को पूर्वांग में गंधार द्वारा ही अलग किया जाता है।

प्र0.3 राग शुद्ध सारंग और राग मियां की सारंग में समानता बताइए।

उ0. **समानता :–**

1. दोनों ही राग सारंग के प्रकार माने जाते हैं। अतः दोनों रागों में म रे, प म रे, प्रयोग किए जाते हैं।
2. दोनों रागों में रिषभ वादी और पंचम सम्वादी माना जाता है।
3. दोनों के अवरोह में गंधार स्वर वर्जित होता है।
4. दोनों रागों का चलन अधिकतर मन्द्र और मध्य सप्तक में होता है।
5. दोनों ही गंभीर प्रकृति के राग माने जाते हैं।
6. राग शुद्ध सारंग और राग मियां की सारंग दोनों ही ख्याल और ध्रुपद शैली के राग हैं क्योंकि इनमें किसी में भी ठुमरी आदि नहीं गाई जाती।
7. दोनों रागों का गायन समय मध्यान्ह माना जाता है।

प्र0.4 राग बिहाग का पूर्ण परिचय लिखिए।

उ0. **राग का पूर्ण परिचय :–**

राग बिहाग, बिलावल थाट से उत्पन्न होता है। इसमें सभी स्वर शुद्ध लगते हैं। इस राग के आरोह में रिषभ और धैवत स्वर वर्जित होते हैं तथा अवरोह सम्पूर्ण होती है। अतः इस राग की जाति औड़व–सम्पूर्ण मानी

जाती है। इस राग का वादी स्वर गान्धार तथा सम्वादी निषाद माना जाता है। इस राग का वादी स्वर गान्धार है जो सप्तक के पूर्वांग में आता है इसलिए यह राग पूर्वांगवादी राग कहलाता है। इस राग का गायन समय रात्री का दूसरा प्रहर माना जाता है। इस राग में 'सा, ग, प, नि' आदि स्वरों पर न्यास किया जाता है। इस राग के आरोह में रे और ध स्वर वर्जित होते हैं परन्तु इसके अवरोह में इन स्वरों का प्रयोग किया जाता है लेकिन इन्हें दुर्बल रखा जाता है जैसे 'सां नि, ध प, म ग, म प, म ग, रे सा'। इस स्वर समूह से स्पष्ट होता है कि अवरोही क्रम में 'रे' और 'ध' का प्रयोग कम किया गया है। 'ग नि' पर ठहराव होने के कारण 'रे' और 'ध' अपने आप दुर्बल हो जाते हैं। जब इस राग में तानें ली जाती हैं तब अवरोही क्रम में रिषभ और धैवत का प्रयोग पूर्ण रूप से किया जाता है। इस राग में तीव्र मध्यम विवादी स्वर के नाते लिया जाता है परन्तु आजकल तीव्र मध्यम इस राग का मुख्य स्वर बन गया है। बिना तीव्र मध्यम के बिहाग फीका लगता है। इसी तीव्र मध्यम के कारण विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। कुछ लोग इसे बिलावल थाट का राग मानते हैं और तीव्र मध्यम का प्रयोग केवल विवादी स्वर के नाते करते हैं। कुछ लोग इसे कल्याण थाट का राग मानते हैं और मध्यम तीव्र का स्वतन्त्र अथवा अनुवादी स्वर की तरह प्रयोग करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पुराने समय में बिहाग में केवल शुद्ध मध्यम का प्रयोग ही करते थे। आगे चलकर तीव्र मध्यम का प्रयोग होने लगा और आज यह अनुवादी स्वर की तरह लगाया जाता है। लेकिन आज दोनों मध्यमों का प्रयोग इस राग में किया जाता है। इसमें तीव्र मध्यम का प्रयोग पंचम के सहारे होता है जैसे – प म ग म ग। गायक–वादक राग बिहाग में निषाद का प्रयोग करते समय निषाद पर ठहरते हैं जिससे राग का रूप निखर उठता है और इस राग का सौन्दर्य बढ़ जाता है। यह श्रृंगार प्रधान राग है।

इस राग का चलन मन्द्र, मध्य और तार तीनों सप्तकों में समान रूप से होता है। इस राग में विलम्बित, द्रुत ख्याल तथा तराना गाया जाता है। इस राग से मिलता–जुलता राग यमन कल्याण है।

प्र0.5 राग बिहाग और राग यमनकल्याण में समानता बताइए।

उ0. **समानता :–**

1. दोनों का चलन मन्द्र 'नि' से प्रारम्भ होता है। कल्याण राग में 'ऩि रे ग' और बिहाग में 'ऩि सा ग' स्वरों से आलाप प्रारम्भ करते हैं।

2. एक मतानुसार दोनों ही कल्याण थाट के राग हैं। राग कल्याण तो कल्याण थाट का ही राग है किन्तु कुछ विद्वान जो बिहाग राग में तीव्र मे अधिक प्रयोग करते हैं, वे इस राग को बिलावल थाट का न मान कर कल्याण थाट का मानते हैं।

3. दोनों का अवरोह सम्पूर्ण है।
4. दोनों में 'ग' वादी तथा 'नि' सम्वादी माना जाता है।

5. दोनों रागों में 'सा, ग, प और नि' स्वरों पर निवास होता है।
6. दोनों ही गम्भीर प्रकृति के राग हैं, दोनों रागों का चलन तीनों सप्तकों में होता है।
7. दोनों ही पूर्वांग प्रधान राग हैं।
8. दोनों रागों का गायन समय रात्री का प्रथम प्रहर माना जाता है।

प्र0.6 राग बागेश्री का संक्षिप्त परिचय लिखिए।

उ0. **ग नि कोमल, संवाद म सा, आरोही रे प काट।**

मधुर राग बागेश्वरी, लखि काफी के थाट।।

या

तीव्र रे ध, कोमल ग म नि, मध्यम वादी।

खरज जहाँ सम्वादी है, बागेश्वरी बरवानी।।

राग परिचय :–

थाट – काफी

स्वर – ग नि कोमल शेष शुद्ध

वर्जित – रिषभ, पंचम

जाति – औढ़व–सम्पूर्ण

वादी – मध्यम

सम्वादी – षड़ज

अंग – उतरांगवादी राग

समय – रात्री का दूसरा प्रहर

आरोह – सा नि़ ध़ नि़ सा, सा म ग, म ध, नि सां।

अवरोह – सां, नि ध, म ग, म ग रे सा।

पकड़ – सा नि़ ध़ म़ ध़ नि़ सा, म ग रे सा, म ध नि ध, म ग रे सा।

न्यास के स्वर – सा, ग, म ध।

प्र0.7 राग बागेश्री और राग भीमपलासी में समानता बताइए।

उ0. **समानता :–**

1. दोनों रागों की उत्पत्ति काफी थाट से मानी गई है।
2. दोनों में 'ग नि' कोमल तथा अन्य स्वर शुद्ध प्रयोग किए जाते हैं।
3. दोनों में 'म' वादी और 'सा' सम्वादी माना गया है।
4. दोनों की जाति औडव – सम्पूर्ण मानी जाती है।
5. दोनों रागों में 'सा म' की संगति बार–बार दिखाई जाती है।
6. दोनों राग बड़ा ख्याल, छोटा ख्याल तथा तराना के लिए उपयुक्त माने जाते हैं।

दोनों रागों का चलन तीनों सप्तकों में किया जाता है।

1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. संगीत विशारद, बसंत, संपादक–लक्ष्मीनारायण गर्ग, प्रकाशक–संगीत कार्यालय हाथरस, इलाहाबाद।
2. राग परिचय, पं. हरिश्चन्द श्रीवास्तव, संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मलाका, इलाहाबाद।
3. संगीत शिक्षा, श्रीमति विजय अरोड़ा, ए.पी. पब्लिशर, जालन्धर।

1.9 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 राग बागेश्री और राग भीमपलासी में क्या–क्या समानता और भिन्नता पाई जाती है ?

प्र0.2 राग शुद्ध सारंग का पूर्ण परिचय लिखिए।

प्र0.3 राग बिहाग का पूर्ण परिचय लिखिए।

:–:–:–:–:–:–:

LESSON – 2

Theoretical and Comparative Study Of Following Ragas

Bridndavani Sarang and Yaman

STRUCTURE :

2.1 उदेश्य

2.2 राग बृन्दावनी सारंग

2.2.1 भूमिका

2.2.2 राग का पूर्ण परिचय

2.2.3 सारंग के प्रकार

2.2.4 रागों का तुल्नात्मक अध्ययन

2.3 राग यमन

2.3.1 भूमिका

2.3.2 राग का पूर्ण परिचय

2.3.3 रागों का तुल्नात्मक अध्ययन

2.3.4 राग यमन तथा राग शुद्ध कल्याण में तुलना

2.4 सारांश

2.5 शब्दकोष

2.6 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

2.1 उदेश्य :–

इस पाठ में पाठ्यक्रम में दिए गए रागों बृन्दावनी सारंग और यमन का विस्तृत वर्णन एवं तुल्नात्मक अध्ययन किया गया है। जिसका यही उदेश्य है कि इसके माध्यम से हम इन रागों के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे और इन रागों के जो समप्रकृत राग है, जो उन रागों के समीप के राग हैं उनके विषय में भी जान पाएंगे और आसानी से समझ पाएंगे। इन रागों के तुल्नात्मक अध्ययन के द्वारा प्रत्येक राग के विषय में गहराई से समझ पाएंगे।

2.2 राग वृन्दाबनी सारंग :–

2.2.1 भूमिका :–

वर्ज्य करें धैवत गान्धार, गावत काफी अंग।

दो निषाद रे प सम्वाद, है वृन्दावनी सारंग।।

थाट – काफी

जाति – औडव–औडव

स्वर – दोनों निषाद शेष शुद्ध

वादी – रिषभ

सम्वादी – पंचम

अंग – पूर्वांग वादी

वर्जित – ग, ध

समय – मध्याह्न

प्रकृति – गम्भीर

आरोह – ऩि सा, रे, म प, नि सां।

अवरोह – सां, <u>नि</u> प, म रे, सा।

पकड़ – ऩि सा रे, म रे, प म रे, ऩि सा।

न्यास – सा, रे और प स्वरों पर न्यास किया जाता है।

2.2.2 राग का पूर्ण परिचय :–

वृन्दावनी सारंग राग का जन्म काफी थाट से माना गया है। इसमें गान्धार और धैवत स्वर वर्जित होते हैं। अतः इस राग की जाति औडव–औडव मानी जाती है। इस राग का वादी स्वर रिषभ तथा सम्वादी पंचम है। इसका गायन समय मध्याह्न माना जाता है। इस राग के आरोह में शुद्ध तथा अवरोह में कोमल निषाद प्रयोग होता है। अन्य सभी स्वर इसमें शुद्ध प्रयोग होते हैं।

कुछ विद्वान इसे खमाज थाट का राग मानते हैं। किन्तु इसे काफी थाट जन्य मानना अधिक उचित है। इसका कारण है यह है कि कभी भी राग का थाट निश्चित करने के लिए स्वर से महत्वपूर्ण स्वरूप है और स्वरूप की दृष्टि से यह राग खमाज की तुलना में काफी थाट के अधिक समीप है। यह गम्भीर प्रकृति का राग है। इसका स्वरूप भी स्वतंत्र है। यह पूर्वांगवादी राग है।

2.2.3 सारंग के प्रकार :–

सारंग के कई प्रकार हैं जैसे ––

शुद्ध सारंग, मियां की सारंग, मध्यमाद सारंग इत्यादि। कहा जाता है कि इस राग की रचना उत्तर प्रदेश के एक लोक गीत के आधार पर हुई है। इस राग में बड़ा ख्याल, छोटा ख्याल, ध्रुपद, धमार, तराना, गीत, गज़ल, भजन तथा शबद आदि गाए जाते हैं। इस राग में ठुमरी नहीं गाई जाती। ऐसा कहा जाता है। इसमें मसीतखानी तथा रज़ाखानी गतें बजाई जाती हैं। साधारण बोलचाल की भाषा में सारंग का अर्थ वृन्दावनी सारंग से लगाया जाता है।

इस राग से अधिक समीप का राग मध्यमाद सारंग माना जाता है। इसके अतिरिक्त इस राग से मिलता–जुलता राग सूर मल्हार भी माना जाता है।

2.2.4 तुल्नात्मक अध्ययन :–

जिस प्रकार राग वृंदावनी सारंग में गन्धार और धैवत स्वर वर्जित होते हैं ठीक उसी प्रकार राग मध्यमाद सारंग में भी ये दोनों स्वर वर्जित होते हैं।

इन दोनों रागों में अन्तर केवल इतना है कि वृन्दावनी सारंग में दोनों निषाद प्रयोग होते हैं जबकि मध्यमाद सारंग में केवल कोमल निषाद का प्रयोग होता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 राग वृन्दावनी का संक्षिप्त परिचय लिखिए।

प्र0.2 राग सारंग का तुल्नात्मक राग बताइए।

2.3 राग यमन :–

2.3.1 भूमिका :–

शुद्ध सुरन के संग जब, मध्यम तीवर होय।

ग–नि वादी–सम्वादी ते, यमन कहत सब कोय।।

थाट – कल्याण

जाति – सम्पूर्ण

स्वर – मध्यम तीव्र तथा शेष स्वर शुद्ध

वादी–सम्वादी – गान्धार व निषाद

अंग – गान्धार वादी होने के कारण यह पूर्वांगवादी राग है।

समय – रात्री का प्रथम प्रहर

प्रकृति – गम्भीर

आरोह – ऩि रे ग, म ध नि, सां । या सा रे ग, म प, ध नि सां।

अवरोह – सां नि ध, म ग, रे सा। या सां नि ध, प, म ग, रे सा।

पकड़ – म ग, ऩि रे ग रे ऩि रे सा या प म ग, ऩि रे ग रे ऩि रे सा।

न्यास – सा, रे, ग, प, नि

2.3.2 राग का पूर्ण परिचय :–

मध्यकालीन ग्रन्थों में ''यमन'' राग का उल्लेख मिलता है, परन्तु प्राचीन ग्रन्थों में ''कल्याण'' राग दिखाई देता है ''यमन'' नहीं। आधुनिक ग्रन्थों में ''यमन'' एक सम्पूर्ण जाति का राग बताया गया है जबकि वास्तव में

इसमें पंचम वर्जित है और इसके कारण इस राग की जाति षाड़व मानी जाती हैं। कई बार पंचम का अल्प प्रयोग अवश्य किया जाता है लेकिन यमन में अब पंचम ने महत्वपूर्ण स्थान ले लिया है। इसमें गान्धार व निषाद महत्व के स्वर माने जाते हैं अर्थात् इस राग में गान्धार वादी तथा निषाद सम्वादी स्वर हैं। इस राग की जाति षाड़व मानी जाती है, लेकिन कुछ लोग इसकी जाति सम्पूर्ण ही मानते हैं। यह राग रात्री के प्रथम प्रहर में गाया जाता है और गम्भीर प्रकृति का राग है। कई बार इस राग में पंचम व षड़ज वर्जित करके गान्धार और निषाद का महत्व राग की विशेषता के रूप में दिखाया जाता है और यही सच्चा राग ''यमन'' है। इस राग को ''इमन'' कह कर भी पुकारा जाता है।

यमन राग में ''प रे'' की संगत का अधिक प्रयोग होता है और यह अच्छा भी प्रतीत होता है। जैसे– 'नि़ रे ग म॑ प, रे, सा' या 'म॑ प ध, म॑ ग, प रे, नि रे सा'। यमन से ही ''यमनी'' और ''यमनी पूरिया'' आदि राग निकले हैं। इस राग में बड़ा ख्याल, छोटा ख्याल, तराना, मसीतखानी तथा रज़ाखानी गतें इत्यादि गाई–बजाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त इस राग में निर्मित गीत, गज़ल, भजन इत्यादि भी बहुत मधुर लगते हैं। इस राग का चलन तीनों सप्तकों में होता है। यह राग गाने–बजाने में बहुत ही मधुर लगता है इस लिए इस राग को अधिकतर लोग गाना–बजाना पसन्द करते हैं।

2.3.3 तुल्नात्मक अध्ययन :–

राग यमन और शुद्ध कल्याण दोनों ही राग कल्याण थाट के राग हैं। दोनों में तीव्र मध्यम का प्रयोग होता है और शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। दोनों रागों का गायन समय रात्री का प्रथम प्रहर ही है। दोनो गम्भीर प्रकृति के राग हैं।

2.3.4 राग यमन और शुद्ध कल्याण में तुलना :–

1. राग यमन सम्पूर्ण जाति का राग है जबकि राग शुद्ध कल्याण औडव–सम्पूर्ण जाति का राग है।
2. दोनो के संवादी स्वर में भिन्नता पाई जाती है।
3. यमन राग में 'निरे' की संगत अधिक रहती है जबकि शुद्ध कल्याण में भोपाली की तरह गाया बजाया जाता है। शुद्ध कल्याण का आरोह भोपाली की तरह होता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 राग यमन का पूर्ण परिचय लिखिए।

प्र0.2 राग यमन और राग शुद्ध कल्याण में तुलना लिखिए।

2.4 सारांश :–

उपरोक्त पाठ में राग वृन्दाबनी सारंग, और राग यमन को पूर्ण परिचय के साथ वर्णित किया गया है। इन सभी रागों का तुल्नात्मक अध्ययन भी विस्तार से दिया गया है। जैसे राग वृन्दाबनी सारंग काफी थाट का राग है और इस राग से मिलता–जुलता राग है मध्यमाद सारंग। इस लिए इन दोनों रागों का तुल्नात्मक अध्ययन विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार राग यमन का तुल्नात्मक अध्ययन राग शुद्ध कल्याण के साथ किया गया है। ये सभी राग किस–किस रूप में अपने नज़दीकी रागों से मिलते हैं और कहाँ–कहाँ एक–दूसरे से भिन्न हैं, इसका विस्तृत वर्णन किया गया है।

2.5 शब्दकोष :–

1. मध्यान्ह – दोपहर
2. जन्य – पैदा हुआ
3. सुरन – सुर
4. कोय –कोई

2.6 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 राग वृन्दाबनी सारंग का संक्षिप्त परिचय लिखिए।

उ0. **वर्ज्य करें धैवत गान्धार, गावत काफी अंग।**

दो निषाद रे प सम्वाद, है वृन्दावनी सारंग।।

थाट – काफी

जाति – औडव–औडव

स्वर – दोनों निषाद शेष शुद्ध

वादी – रिषभ

सम्वादी – पंचम

अंग – पूर्वांग वादी

वर्जित – ग, ध

समय – मध्याह्न

प्रकृति – गम्भीर

आरोह – ऩि सा, रे, म प, नि सां।

अवरोह – सां, <u>नि</u> प, म रे, सा।

पकड़ – ऩि सा रे, म रे, प म रे, ऩि सा।

न्यास – सा, रे और प स्वरों पर न्यास किया जाता है।

प्र0.2 राग सारंग का तुल्नात्मक राग बताइए।

उ0. इस राग से अधिक समीप का राग मध्यमाद सारंग माना जाता है। इसके अतिरिक्त इस राग से मिलता–जुलता राग सूर मल्हार भी माना जाता है।

तुल्नात्मक अध्ययन :–

जिस प्रकार राग वृंदावनी सारंग में गन्धार और धैवत स्वर वर्जित होते हैं ठीक उसी प्रकार राग मध्यमाद सारंग में भी ये दोनों स्वर वर्जित होते हैं।

इन दोनों रागों में अन्तर केवल इतना है कि वृन्दावनी सारंग में दोनों निषाद प्रयोग होते हैं जबकि मध्यमाद सारंग में केवल कोमल निषाद का प्रयोग होता है।

प्र0.3 राग यमन का पूर्ण परिचय लिखिए।

उ0. **राग का पूर्ण परिचय :–**

मध्यकालीन ग्रन्थों में ''यमन'' राग का उल्लेख मिलता है, परन्तु प्राचीन ग्रन्थों में ''कल्याण'' राग दिखाई देता है ''यमन'' नहीं। आधुनिक ग्रन्थों में ''यमन'' एक सम्पूर्ण जाति का राग बताया गया है जबकि वास्तव में इसमें पंचम वर्जित है और इसके कारण इस राग की जाति षाड़व मानी जाती हैं। कई बार पंचम का अल्प प्रयोग अवश्य किया जाता है लेकिन यमन में अब पंचम ने महत्वपूर्ण स्थान ले लिया है। इसमें गान्धार व निषाद महत्व के स्वर माने जाते हैं अर्थात् इस राग में गान्धार वादी तथा निषाद सम्वादी स्वर हैं। इस राग की जाति षाड़व मानी जाती है, लेकिन कुछ लोग इसकी जाति सम्पूर्ण ही मानते हैं। यह राग रात्री के प्रथम प्रहर में गाया जाता है और गम्भीर प्रकृति का राग है। कई बार इस राग में पंचम व षड़ज वर्जित करके गान्धार और निषाद का महत्व राग की विशेषता के रूप में दिखाया जाता है और यही सच्चा राग ''यमन'' है। इस राग को ''इमन'' कह कर भी पुकारा जाता है।

यमन राग में ''प रे'' की संगत का अधिक प्रयोग होता है और यह अच्छा भी प्रतीत होता है। जैसे– 'ऩि रे ग मं प, रे, सा' या 'मं प ध, मं ग, प रे, नि रे सा'। यमन से ही ''यमनी'' और ''यमनी पूरिया'' आदि राग निकले हैं। इस राग में बड़ा ख्याल, छोटा ख्याल, तराना, मसीतखानी तथा रज़ाखानी गतें इत्यादि गाई–बजाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त इस राग में निर्मित गीत, गज़ल, भजन इत्यादि भी बहुत मधुर लगते हैं। इस राग का चलन तीनों सप्तकों में होता है। यह राग गाने–बजाने में बहुत ही मधुर लगता है इस लिए इस राग को अधिकतर लोग गाना–बजाना पसन्द करते हैं।

प्र04. राग यमन और राग शुद्धकल्याण में तुलना लिखिए।

उ0. **तुल्नात्मक अध्ययन :–**

राग यमन और शुद्ध कल्याण दोनों ही राग कल्याण थाट के राग हैं। दोनों में तीव्र मध्यम का प्रयोग होता है और शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। दोनों रागों का गायन समय रात्री का प्रथम प्रहर ही है। दोनो गम्भीर प्रकृति के राग हैं।

राग यमन और शुद्ध कल्याण में तुलना :–

1. राग यमन सम्पूर्ण जाति का राग है जबकि राग शुद्ध कल्याण औडव–सम्पूर्ण जाति का राग है।
2. दोनो के संवादी स्वर में भिन्नता पाई जाती है।
3. यमन राग में 'निरे' की संगत अधिक रहती है जबकि शुद्ध कल्याण में भोपाली की तरह गाया बजाया जाता है। शुद्ध कल्याण का आरोह भोपाली की तरह होता है।

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. संगीत विशारद, बसंत, संपादक–लक्ष्मीनारायण गर्ग, प्रकाशक–संगीत कार्यालय हाथरस, इलाहाबाद।
2. राग परिचय, पं. हरिश्चन्द श्रीवास्तव, संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मलाका, इलाहाबाद।
3. संगीत शिक्षा, श्रीमति विजय अरोड़ा, ए.पी. पब्लिशर, जालन्धर।

2.8 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 राग यमन और राग शुद्ध कल्याण में क्या–क्या समानता और भिन्नता पाई जाती है ?

प्र0.2 राग वृन्दाबनी सारंग का पूर्ण परिचय लिखिए।

:–:–:–:–:–:–:

LESSON - 3

Notation of Vilambit Khayal/Gat and Drut Khayal/Gat in one of the Following Ragas with Alap and Tana/Tora according to Bhatkhande Notation System : Raga Shudh Sarang and Bihag

STRUCTURE :

3.1 उदेश्य

3.2 राग शुद्ध सारंग का बड़ा ख्याल (एकताल विलम्बित)

3.2.1 भूमिका

3.2.2 स्थाई के बोल

3.2.3 अन्तरा के बोल

3.2.4 स्वर विस्तार/आलाप

3.2.5 स्थाई स्वरलिपि

3.2.6 अन्तरा स्वरलिपि

3.2.7 तानें

3.3 शुद्ध सारंग छोटा ख्याल (मध्यलय)

3.3.1 स्थाई के बोल

3.3.2 अन्तरा के बोल

3.3.3 स्थाई स्वरलिपि

3.3.4 अन्तरा स्वरलिपि

3.3.5 तानें

3.4 राग शुद्ध सारंग, विलम्बित गत (एकताल विलम्बित)

3.4.1 स्थाई स्वरलिपि

3.4.2 अन्तरा स्वरलिपि

3.4.3 तोड़े

3.5 राग शुद्ध सारंग, द्रुत गत (मध्यलय)

3.5.1 स्थाई स्वरलिपि

3.5.2 अन्तरा स्वरलिपि

3.5.3 तोड़े

3.6 राग बिहाग, बड़ा ख्याल (एकताल विलम्बित)

3.6.1 भूमिका

3.6.2 स्वर विस्तार/आलाप

3.6.3 स्थाई के बोल

3.6.4 अन्तरा के बोल

3.6.5 स्थाई स्वरलिपि

3.6.6 अन्तरा स्वरलिपि

3.6.7 तानें

3.7 राग बिहाग छोटा ख्याल (तीनताल मध्यलय)

3.7.1 स्थाई के बोल

3.7.2 अन्तरा के बोल

3.7.3 स्थाई स्वरलिपि

3.7.4 अन्तरा स्वरलिपि

3.7.5 तानें

3.8 राग बिहाग (विलम्बित गत)

3.8.1 स्थाई स्वरलिपि

3.8.2 अन्तरा स्वरलिपि

3.8.3 तोड़े

3.9 राग बिहाग (द्रुतगत तीनताल)

3.9.1 स्थाई स्वरलिपि

3.9.2 अन्तरा स्वरलिपि

3.9.3 तोड़े

3.10 सारांश

3.11 शब्दकोष

3.12 स्वयं परीक्षा प्रश्न–उत्तर

3.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.14 महत्वपूर्ण प्रश्न

3.1 उदेश्य :–

इस पाठ का अध्ययन करने से हम राग शुद्ध सारंग के विषय में विस्तार से जान पाएंगे। राग का पूरा परिचय, स्वर लगाने का तरीका तथा बंदिश व गत को गाने व बजाने का तरीका सीखना इस पाठ का उदेश्य है।

3.2 राग शुद्ध सारंग (बड़ा ख्याल) एकताल (विलम्बित)

3.2.1 भूमिका :–

आरोह :– ऩि सा, रे मं प, ध प, नि सां।

अवरोह :– सां नि, ध प, मं प, म रे, ऩि सा।

म

पकड़ :– रे मं प, म रे, सा, ऩि ध़ सा ऩि रे सा।

3.2.2 स्थाई के बोल :–

ए बन्ना बन आया, आया री मेरे द्वारे।

3.2.3 अन्तरे के बोल :–

अदारंग बने सिर मोर बिराजत, बनरी की मांग भराया।।

3.2.4 स्वर विस्तार /आलाप :–

1. सा, रे ऽ नि़ ऽ ऽ नि़ सा, (सा) नि़, प़ नि़ सा नि़, मं ऽ प़ नि़, नि़ ध़ सा नि़ ऽ रे सा नि़, नि़ सा रे रे म रे ऽ ममरेमरेसानि़, प़ नि़ सा रे म रे सा नि़, सा रे म रे सा नि़, नि़ ध़ सा नि़ रे सा।
2. नि़ सा, रे मे प ऽ ऽ ऽ मंप, (प) रे म रे मे ऽ मं प, मं प ध मं प, रेमेपधधप, धपमंप, मरे सा, रे मंप, मं प नि ऽ ध प म रे ऽ मं प, नि़ ध़ सा नि़ रे सा, रे मं प नि ऽ ध प, रे मं प, धधपमेप रे म रे, निसारेमंपध म पं रे म रे सा नि़ ध़ सा नि़ रे सा।
3. मं प नि ऽ ऽ सां ऽ ऽ ऽ रें सां, सां नि सां, रें मं रें सां, रें मं पं मं रें, रें मं मं रें, नि सां, नि ध सां नि रें सां, सां नि ध प, रे मं प नि सां नि ध प, म रे, मं प म रे, सा नि़, नि़ ध़ सा नि़ रे सा।

3.2.5 स्थाई स्वरलिपि :–

रेम	रेसा	(ध़) नि़–	ध़प़	नि़	–ध़	सा	(सा) नि़रे	सा	–	नि़सा	(म) रे
एऽ	बन्ना	ऽऽ	बन	आ	ऽऽ	ऽ	ऽऽ	या	ऽ	आया	री
3		4		×		0		2		0	

म	रे	सारेमंप	–मं	प	–	रेमंपनि	–	(ध) प	मं(प)	म	रे
ऽ	ऽ	ऽऽऽऽ	ऽमे	रे	ऽ	ऽऽऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ द्वा	ऽ	ऽ
3		4		×		0		2		0	

(म) नि़	(म) सा, रे	सानि़	ध़प
ऽ	रे, ब़	नाऽ	बन
3		4	

3.2.6 अन्तरा स्वरलिपि :–

प	प	नि	–सां	सां	सां	निसां	रे	–	सां	–	निसां
अ	दा	रं	ऽग	ब	ने	ऽऽ	सि	ऽ	र	ऽ	ऽऽ
3		4		×		0		2		0	

नि	सां	रें	मंरें	(सां)–	नि	प	–(प)	म	रे	ऩिसा	ममरेसारे–
मो	ऽ	र	ऽबि	राऽ	ऽ	ऽ	ऽज	त	ऽ	ब न	रीऽऽऽऽऽ
3		4		×		0		2		0	

रेमंप–,मं)	प	नि	सांरें	सां	नि	धप	मं(प)	म	रे	ऩि	सां
ऽऽऽऽ, की	मां	ऽ	गभ	रा	ऽ	ऽऽ	ऽ ऽ	या	ऽ	ऽ	ऽ
3		4		×		0		2		0	

ऩिसारेम	रेसा	(ऩि)–	धऩ्प़
ए ऽ ऽ ऽ	बना	ऽ ऽ	बन
3		4	

3.2.7 तानें :–

सम से :–

1. ऩिसा ऩिसा रेसा ऩिसा रेरे मम रेसा ऩिसा रेसा –––– बना बन

2. ऩिसा रेसा रेरे मंप धप मप मंमं रेसा ऩिसा –––––बना बन

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 राग शुद्ध सारंग का स्वर विस्तार लिखिए।

प्र0.2 राग शुद्ध सारंग में बड़े ख्याल की बंदिश की स्वरलिपि दो तानों सहित लिखिए।

3.3 राग शुद्ध सारंग छोटा ख्याल (मध्यलय) :–

3.3.1 स्थाई के बोल :–

पनघट जाने दे छाड़ मोरी बैयां।

अब तुम काहे करत लरकैंयां।।

3.3.2 अन्तरा के बोल :–

ललन चलन तोरी नीक न लागे,

अब जिन करो झगरैयाँ।।

3.3.3 स्थाई स्वरलिपि :–

म॑	प	ध	प	रे	म	रे	सा	नि़	प़	नि़	सा	रे	–	सा	–
प	न	घ	ट	जा	ने	दे	छा	ऽ	ड़	मो	री	बै	ऽ	याँ	ऽ
2				0				3				×			
म	रे	नि़	सा	रे	म॑	प	नि	सां	निध	म॑	प	रे	म	रे	–
अ	ब	तु	म	का	ऽ	हे	क	र	तऽ	ल	र	कै	ऽ	याँ	ऽ
2				0				3				×			

3.3.4 अन्तरा स्वरलिपि :–

प	प	नि	सां	सां	सां	सां	सां	रें	मं	रें	सां	सांनि	सां	नि	–
ल	ल	न	च	ल	न	तो	री	नी	ऽ	क	न	लाऽ	ऽ	गे	ऽ
0				3				×				2			
प	नि	सां	रें	सां	निध	म॑	प	रे	म	रे	–	म॑	प	ध	प
अ	ब	जि	न	क	रोऽ	झ	ग	रै	ऽ	याँ	ऽ	प	न	घ	ट
0				3				×				2			

3.3.5 तानें :–

सम से :–

1. ऩिसा रेसा ऩिसा रेम॑ पध मप रेम रेसा।
2. रेरे म॑प धप निनि धप म॑प मम रेसा।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 राग शुद्ध सारंग के छोटे ख्याल की स्थाई की स्वरलिपि लिखिए।

3.4 राग शुद्ध सारंग (विलम्बित गत)

3.4.1 स्थाई स्वरलिपि :–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
											रेम	रे	सानि़	प़	ऩिसा
											दिर	दा	दिर	दा	राऽ
रे	रे	सा	रेरे	म॑	पप	ध	प	रेम	रे	सा,					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दाऽ	दा	रा,					
×				2				0				**3**			

3.4.2 अन्तरा स्वरलिपि :–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
											मम	प	धम	प	निनि
											दिर	दा	दिर	दा	राऽ
सां	रें	सां	निंनिं	ध	पम	प	मम	रेसा	ऩि	सा,					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा–	दाऽ	दा	रा,					
×				2				0				3			

3.4.3 तोड़े :–

चौथी मात्रा से :–

1. ऩिसाऩिसा रेसाऩिसा रेरेमम रेसाऩिसा रेरेमप धपमप ममरेसा –– मुखड़ा
2. रेरेमप धपमप निनिधप निसांरेंसा निनिधप मेपमम रेसाऩिसा –– मुखड़ा

सम से :–

ऩिसारेसा रेरेमप धपमप निनिधप निसांरेंसां रेंमंरेंसां निसांरेंसां निनिधप मपधप मपमम रेसाऩिसा ––मुखड़ा

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 राग शुद्ध सारंग की विलम्बित गत की स्थाई की स्वरलिपि लिखिए।

3.5 शुद्ध सारंग (द्रुत गत)

3.5.1 स्थाई स्वरलिपि :–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
											म	रे	नि़	–	रे
											दा	रा	दा	ऽ	दा
												3			
सा	–	नि़	प	नि़	ध़ध़	सासा	नि़नि़	रेऽ	रेसा	–सा					
दा	ऽ	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽरा					
×				2				0							
											रे	रे	म॑	–	म॑
											दा	रा	दा	ऽ	दा
												3			
प	–	ध	प	म॑	पप	मम	रेरे	सा–	रेसा	–सा					
दा	ऽ	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर					
×				2				0							

3.5.2 अन्तरा स्वरलिपि :–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
											म॑	पप	नि	–	नि
											दा	दिर	दा	ऽ	रा
												3			
सां	–	रें	सां	नि	सांसां	निनि	पप	म॑–	म॑प	–प					
दा	ऽ	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽरा					
×				2				0							

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
											ध	म॑म॑	प	–	प
											दा	दिर	दा	ऽ	रा
												3			
म	मम	रे	रे	म॑	पप	रेरे	सासा	ऩि–	रेसा	–सा					
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	–रा					
×				2				0							

3.5.3 तोड़े :–

× —— गत

1. ऩिसा रेसा ऩिसा रेसा ऩिऩि पक़़ ऩिऩि धक़क़ सासा रेम रेसा।
2. मम रेसा रेरे म॑प धप म॑प धप म॑प मम रेसा ऩिसा।
3. मप धप निसां रेंसां निनि धप म॑प धप मम रेसा ऩिसा।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 4

प्र0.1 शुद्ध सारंग राग में द्रुत गत के अन्तरे की स्वरलिपि लिखिए।

3.6 राग बिहाग (बड़ा ख्याल), एकताल (विलम्बित)

3.6.1 भूमिका :–

आरोह :– ऩि सा ग, म प, नि सां।

अवरोह :– सां नि, ध प, म प ग म ग, रे सा।

पकड़ :– ऩि सा ग म प, म प ग म ग, रे सा।

3.6.2 स्वर विस्तार /आलाप :–

1. सा, ऩि सा, ग ऽ रे सा, ऩि प़ ऩि सा, ऩि सा ग म ग, रे सा।
2. ऩि सा ग, म ग, प ऽ म ग म ग, सा म ग प ऽ ध प, म प ऽ म ग म ग, ग म प ऽ ग म ग, म ग, रे सा।
3. ऩि सा ग म प, ग म प नि ऽ ध प, ग म ग म प नि ऽ ध प, ध प म प ग म ग, ग म प नि प नि ध प, ध प म प, ग म ग, ग म प ऽ ग म ग, सा म ग प ऽ ध ग म ग, ग म प म ग ऽ रे सा, ऩि सा ग ऽ रे सा।
4. ग म प नि ऽ प नि सां, नि सां गं ऽ रें सां, प नि सां गं ऽ रें सां, नि सां नि गं ऽ रें सां, गं रें सां ऽ रें सां नि ऽ प नि प नि सां नि ऽ ध प, प म ग म प नि सां नि ऽ ध प, ध ऽ म प ग म ग, सा म ग प ध ग म ग, ग म ग म प म ग, रे सा, ऩि सा ग ऽ रे सा।

3.6.3 स्थाई के बोल :–

कैसे सुख सोवे निंदरिया श्याम मूरत चित चढ़ी।

3.6.4 अन्तरा के बोल :–

सोच सोच सदारंग औकलावे या विधि गाँठ परी।

3.6.5 स्थाई स्वरलिपि :–

ग	सा(सा)	नि़	,साम	ग	–	सा	–	नि़	नि़	–	सा(सा)
कै	ऽ से	ऽ	सुख	सो	ऽ	वे	ऽ	नीं	ऽ	ऽ	द रि
3		4		×		0		2		0	
				नि							
नि़	–	प़	–	सा	–	–	म	ग	मग	प	प
या	ऽ	ऽ	ऽ	श्या	ऽ	ऽ	म	ऽ	मुऽ	र	त
3		4		×		0		2		0	
–	प	नि	–ध	सां	(सां)	नि	प	प	(प)	गम	ग
ऽ	चि	त	ऽऽ	च	ढ़ी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ
3		4		×		0		2		0	

3.6.6 अन्तरा स्वरलिपि :–

प	सां	सां	निनि	रें	सां	–	सां(सां)	नि	प	गम	ग
सो	च	सो	ऽच	स	दा	ऽ	रं ऽ	ग	ऽ	ऽऽ	ऽ
3		4		×		0		2		0	
				नि़							
गम	पम	ग	सा	सा	–	–	मग	ग	प	–	प
औऽ	ऽक	ला	वे	या	ऽ	ऽ	विऽ	धि	ऽ	ऽ	गाँ
3		4		×		0		2		0	

–	नि	–ध	सां	(सां)	–	नि	प	प	(प)	गम	ग
ऽ	ठ	ऽऽ	प	री	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ
3		4		×		0		2		0	

3.6.7 तानें :–

1. ऩि सा ग ग रे सा, ऩि सा ग म प प ग म ग ग रे सा, ऩि सा ग म प नि सां नि ध प मं प ग म ग ग रे सा।
2. ऩि सा ग म प नि सां रें सां नि ध प मं प ग म ग ग रे सा, ऩि सा ग म प नि सां गं रें सां नि ध प मं ग म ग ग रे सा।
3. ग म ग ग रे सा, प प ग म ग ग रे सा, नि नि ध प मं प ग म ग ग रे सा, सां रें सां नि ध प मं प ग म ग ग रे सा।
4. प मं ग म ग ग रे सा, ग म म ग म प मं ग म ग रे सा, प मं ग म ग ऽ रे सा, सा प मं प ग म ग रे सा।
5. सां नि ध प म ग रे सा, सां रें सां नि ध प म ग रे सा, सां गं रें सां नि ध प म ग रे सा, सां गं मं पं मं गं रें सां नि ध प म ग रे सा, ऩि सा ग म प नि सां गं रें सां नि ध प म ग रे सा।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 5

प्र0.1 राग बिहाग का स्वर विस्तार लिखिए।

प्र0.2 राग बिहाग के बड़े ख्याल की स्थाई की स्वरलिपि दो तानों सहित लिखिए।

3.7 राग बिहाग (छोटा ख्याल) (तीनताल मध्यलय) :–

3.7.1 स्थाई के बोल :–

बालम रे मोरे मन के, चिते होवन दे रे, होवन देरे मीत पियरवा।

3.7.2 अन्तरा के बोल :–

सदारंग जिन जावो, बिदेसवा सुख निंदरिया, सोवन दे रे, सोवन दे रे मीत पियरवा।

3.7.3 स्थाई स्वरलिपि :–

म															
ग	म	प	सां	नि	–	प	–	–	–	(प)	प	ग	म	ग	–
बा	ऽ	ल	म	रे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	मो	रे	म	न	के	ऽ
3				×				2				0			

प	ध														
नि	नि	(प)	–	–	–	ग	म	प	–	ग	म	ग	–	सा	–
चीं	ऽ	ते	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	हो	ऽ	व	न	दे	ऽ	रे	ऽ
3				×				2				0			

प़	–	नि़	नि़	सा	–	ग	म	प	–	ग	म	ग	गरे	सा	–
हो	ऽ	व	न	दे	ऽ	रे	ऽ	मी	ऽ	त	पि	य	रऽ	वा	ऽ
3				×				2				0			

3.7.4 अन्तरा स्वरलिपि :–

ग	ग	म	प	–	प	नि	नि	सां	–	सां	सां	सां	रें	सां	–
स	दा	ऽ	रं	ऽ	ग	जि	न	जा	ऽ	वो	बि	दे	स	वा	ऽ
3				×				2				0			
नि					ध			मे							
सां	सां	(सां)	–	नि	नि	(प)	–	प	–	नि	नि	सां	नि	(प)	–
सु	ख	नीं	ऽ	द	रि	या	ऽ	सो	ऽ	व	न	दे	ऽ	रे	ऽ
3				×				2				0			

ग	म	प	नि	सां	नि	प	–	प	म॑	ग	म	ग	ग	(सा)	–
सो	ऽ	व	न	दे	ऽ	रे	ऽ	मी	ऽ	त	पि	य	र	वा	ऽ
3				×				2				0			

3.7.5 तानें :–

सम से :–

1. ऩिसा गम पम गम गम गग रेसा ऩिसा गम गग रेसा ऩिसा –––– बालम ।
2. निनि धप मप गम गम पम गम गग रेसा ऩिसा गग रेसा ––– बालम।
3. निसां रेंसां निसां निनि धप मप गम पम गम गग रेसा निसा ––– बालम।
4. ऩिसा गम पम गम गम गग रेसा निनि धप मप गम गम पम गम गग रेसा निसां रेंसां निसां निनि धप मप गम पम गम गग रेसा निसा ––– बालम।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 6

प्र0.1 राग बिहाग के छोटे ख्याल के स्थाई और अन्तरे के बोल लिखिए।

प्र0.2 राग बिहाग के छोटे ख्याल की स्थाई स्वरलिपि दो तानों सहित लिखिए।

3.8 राग बिहाग (विलम्बित गत तीनताल) :–

3.8.1 स्थाई स्वरलिपि :–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
											निसां	नि	पप	म॑प	–गम
											दिर	दा	दिर	दिर	दिर
ग	ग	सा	निनि	सा	मम	ग	प	ग	म	ग					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा					
×				0				2				3			

3.8.2 अन्तरा स्वरलिपि :–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
											पप	ग	म॑म॑	प	नि
											दिर	दा	दिर	दा	रा
सां	गं	सां	निसां	नि	सांसां	म॑ं	गं	गं	नि	सां					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा					
×				0				2				3			
											म॑म॑	ग	निसां	नि	प
											दिर	दा	दिर	दा	रा
सां	सां	सां	सांसां	नि	धप	म॑	प	ग	म॑	ग					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा					
×				0				2				3			

3.8.3 तोड़े :–

5वीं मात्रा से (सात मात्रा का तोड़ा) :–

1. ऩिसा गम ग– पमं गम ग– सांनि धप मप गम पमं गम ग– –– मुखड़ा।

सम से (ग्यारह मात्रा का तोड़ा) :–

2. सांनि धप मंप निनि धप मंप गम गरे ऩिसा साग गम पसां नि– ––
   प– प– गम पसां नि– –– प– प– मुखड़ा।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 7

प्र0.1 राग बिहाग में विलम्बित गत के अन्तरे की स्वरलिपि लिखिए।

3.9 राग बिहाग (द्रुत गत तीनताल) :–

3.9.1 स्थाई स्वरलिपि :–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
												ऩि	धध	ऩि	रे
												दा	दिर	दा	रा
												3			
ग	–	ग	रे	ग	मंमं	पप	मंमं	ग–	गरे	–रे	सा–				
दा	ऽ	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ				
×				2				0				3			
ग	मंमं	ध	नि	सां	निनि	ध	प	ग	रेरे	गग	मंमं	ग–	गरे	–रे	सा–
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ
×				2				0				3			

3.9.2 अन्तरा स्वरलिपि :–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
								ग	गग	म	मम	ध	नि	सां	–
								दा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	ऽ
								0				3			
सां	सांसां	सां	नि	रेंरें	सां	सां	–								
दा	दिर	दा	रा	दिर	दा	रा	ऽ								
								नि	रेरे	गंगं	मम	गं–	गरें	–रें	सां–
								दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ
नि–	निध	–ध	प–	गम	धनि	सांनि	धप	मध	पमे	गरे	सा–				
दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दाऽ				
×				2				0				3			

3.9.3 तोड़े :–

0 से सम तक :–

1. ऩिरे गरे ग– ऩिरे गरे ग– निरे गरे
   पम गरे ग– पम गरे ग– पम गरे

0 से गत :–

2. सांनि धप मग रेसा।

सम से गत :–

3. ऩिध ऩिरे गरे ऩिरे ग– – – ऩिध ऩिरे गरे ऩिरे ग– – –
   ऩिध ऩिरे गरे।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली –8

प्र0.1 राग बिहाग में द्रुत गत की स्थाई की स्वरलिपि लिखिए।

प्र0.2 राग बिहाग में तोड़े लिखिए।

3.10 सारांश :–

इस पाठ में राग शुद्ध सारंग तथा राग बिहाग की चर्चा की जा रही है। जिसके अन्तर्गत् राग का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। राग के थाट, स्वर, वर्जित–अवर्जित, जाति, वादी–सम्वादी, गायन समय के साथ–साथ आरोह–अवरोह, पकड़ के साथ–साथ राग के स्वर विस्तार को भी समझाया गया है। इसके अतिरिक्त राग शुद्ध सारंग और राग बिहाग में गायन और वादन शैली में गत व बंदिश स्वरलिपि सहित दी गई है।

इन रागों में विलम्बित गत व द्रुत गत को तोड़ों सहित दिया गया है। इसी प्रकार ख्याल की स्वरलिपि भी तानों सहित बताई गई है। जिसका बार–बार अभ्यास करना आवश्यक है।

3.11 शब्दकोष :–

1. बन्ना – दूल्हा
2. बनरी – दुल्हन
3. बिराजत – विराजना या बैठना
4. छाड़ – छोड़ना
5. लरकैंयां – लड़ना
6. झगरैंयां – झगड़ना
7. निंदरिया – नींद
8. चित – मन
9. औकलावे – बौखलाना
10. बिदेसवा – विदेश
11. जावो – जाओ

3.12 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 राग शुद्ध सारंग का स्वर विस्तार लिखिए।

उ0. **स्वर विस्तार /आलाप :–**

1. सा, रे ऽ नि़ ऽ ऽ नि़ सा, (सा) नि़, प़ नि़ सा नि़, म ऽ प़ नि़, नि़ ध़ सा नि़ ऽ रे सा नि़, नि़ सा रे रे म रे ऽ ममरेमरेसानि़, प़ नि़ सा रे म रे सा नि़, सा रे म़ रे सा नि़, नि़ ध़ सा नि़ रे सा।
2. नि़ सा, रे मे प ऽ ऽ ऽ मंप, (प) रे म रे मे ऽ मं प, मं प ध मं प, रेमेंपधधप, धपमंप, मरे सा, रे मंप, मं प नि ऽ ध प म रे ऽ मं प, नि़ ध़ सा नि़ रे सा, रे मं प नि ऽ ध प, रे मं प, धधपमेप रे म रे, निसारेमंपध म पं रे म रे सा नि़ ध़ सा नि़ रे सा।
3. मं प नि ऽ ऽ सां ऽ ऽ ऽ रें सां, सां नि सां, रें मं रें सां, रें मं पं मं रें, रें मं मं रें, नि सां, नि ध सां नि रें सां, सां नि ध प, रे मं प नि सां नि ध प, म रे, मं प म रे, सा नि़, नि़ ध़ सा नि़ रे सा।

प्र0.2 राग शुद्ध सारंग में बड़े ख्याल की बंदिश की स्वरलिपि लिखिए।

उ0. **स्थाई स्वरलिपि :–**

		ध़					सा				म
रेम	रेसा	नि़–	ध़प़	नि़	–ध़	सा	नि़रे	सा	–	नि़सा	रे
एऽ	बन्ना	ऽऽ	बन	आ	ऽऽ	ऽ	ऽऽ	या	ऽ	आया	री
3		4		×		0		2		0	
								ध			
म	रे	सारेमंप	–मं	प	–	रेमंपनि	–	प	मं(प)	म	रे
ऽ	ऽ	ऽऽऽऽ	ऽमे	रे	ऽ	ऽऽऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ द्वा	ऽ	ऽ
3		4		×		0		2		0	
म	म										
नि़	सा, रे	सानि़	ध़प								
ऽ	रे, ब़	नाऽ	बन								
3		4									

अन्तरा स्वरलिपि :–

प	प	नि	–सां	सां	सां	निसां	रे	–	सां	–	निसां
अ	दा	रं	ऽग	ब	ने	ऽऽ	सि	ऽ	र	ऽ	ऽऽ
3		4		×		0		2		0	

नि	सां	रें	मंरें	(सां)–	नि	प	–(प)	म	रे	ऩिसा	ममरेसारे–
मो	ऽ	र	ऽबि	राऽ	ऽ	ऽ	ऽज	त	ऽ	ब न	रीऽऽऽऽऽ
3		4		×		0		2		0	

रेम॑प–,म॑)	प	नि	सांरें	सां	नि	धप	म॑(प)	म	रे	ऩि	सां
ऽऽऽऽ, की	मां	ऽ	गभ	रा	ऽ	ऽऽ	ऽ ऽ	या	ऽ	ऽ	ऽ
3		4		×		0		2		0	

ऩिसारेम	रेसा	(ऩि)–	ध़प़
ए ऽ ऽ ऽ	बना	ऽ ऽ	बन
3		4	

प्र0.3 राग शुद्ध सारंग के छोटे ख्याल की स्थाई की स्वरलिपि लिखिए।

उ0. स्थाई स्वरलिपि :–

म	प	ध	प	रे	म	रे	सा	ऩि	प़	ऩि	सा	रे	–	सा	–
प	न	घ	ट	जा	ने	दे	छा	ऽ	ड़	मो	री	बै	ऽ	याँ	ऽ
2				0				3				×			
म	रे	ऩि	सा	रे	मं	प	नि	सां	निध	मं	प	रे	म	रे	–
अ	ब	तु	म	का	ऽ	हे	क	र	तऽ	ल	र	कै	ऽ	याँ	ऽ
2				0				3				×			

प्र0.4 प्र0.1 राग शुद्ध सारंग की विलम्बित गत की स्थाई की स्वरलिपि लिखिए।

उ0. स्थाई स्वरलिपि :–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
												ऩि	धध	ऩि	रे
												दा	दिर	दा	रा
												3			
ग	–	ग	रे	ग	मंमं	पप	मंमं	ग–	गरे	–रे	सा–				
दा	ऽ	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ				
ग	मंमं	ध	नि	सां	निनि	ध	प	ग	रेरे	गग	मंमं	ग–	गरे	–रे	सा–
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ
×				2				0				3			

प्र0.5 राग शुद्ध सारंग में द्रुत गत के अन्तरे की स्वरलिपि लिखिए।

उ0. **अन्तरा स्वरलिपि :–**

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
											म	पप	नि	–	नि
											दा	दिर	दा	ऽ	रा
												3			
सां	–	रें	सां	नि	सांसां	निनि	पप	म–	मप	–प					
दा	ऽ	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽरा					
×				2				0							
											ध	मम	प	–	प
											दा	दिर	दा	ऽ	रा
												3			
म	मम	रे	रे	म	पप	रेरे	सासा	नि़–	रेसा	–सा					
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	–रा					
×				2				0							

प्र0.6 राग बिहाग का स्वर विस्तार लिखिए।

1. उ0. सा, नि़ सा, ग ऽ रे सा, नि़ प़ नि़ सा, नि़ सा ग म ग, रे सा।
2. नि़ सा ग, म ग, प ऽ म ग म ग, सा म ग प ऽ ध प, म प ऽ म ग म ग, ग म प ऽ ग म ग, म ग, रे सा।
3. नि़ सा ग म प, ग म प नि ऽ ध प, ग म ग म प नि ऽ ध प, ध प म प ग म ग, ग म प नि प नि ध प, ध प म प, ग म ग, ग म प ऽ ग म ग, सा म ग प ऽ ध ग म ग, ग म प म ग ऽ रे सा, नि़ सा ग ऽ रे सा।

4. ग म प नि ऽ प नि सां, नि सां गं ऽ रें सां, प नि सां गं ऽ रें सां, नि सां नि गं ऽ रें सां, गं रें सां ऽ रें सां नि ऽ प नि प नि सां नि ऽ ध प, प म ग म प नि सां नि ऽ ध प, ध ऽ म प ग म ग, सा म ग प ध ग म ग, ग म ग म प म ग, रे सा, ऩि सा ग ऽ रे सा।

प्र0.7 राग बिहाग के बड़े ख्याल की स्थाई की स्वरलिपि दो तानों सहित लिखिए।

उ0. **स्थाई स्वरलिपि :–**

ग	सा(सा)	ऩि	,साम	ग	–	सा	–	ऩि	ऩि	–	सा(सा)
कै	ऽ से	ऽ	सुख	सो	ऽ	वे	ऽ	नीं	ऽ	ऽ	द रि
3		4		×		0		2		0	
				नि							
ऩि	–	प़	–	सा	–	–	म	ग	मग	प	प
या	ऽ	ऽ	ऽ	श्या	ऽ	ऽ	म	ऽ	मुऽ	र	त
3		4		×		0		2		0	
–	प	नि	–ध	सां	(सां)	नि	प	प	(प)	गम	ग
ऽ	चि	त	ऽऽ	च	ढ़ी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ
3		4		×		0		2		0	

तानें :–

सम से :–

1. ऩिसा गम पम गम गम गग रेसा ऩिसा गम गग रेसा ऩिसा –––– बालम ।

2. निनि धप मप गम गम पम गम गग रेसा ऩिसा गग रेसा ––– बालम।

प्र0.8 राग बिहाग के छोटे ख्याल के स्थाई और अन्तरे के बोल लिखिए।

उ0. **स्थाई के बोल :–**

बालम रे मोरे मन के, चिते होवन दे रे, होवन देरे मीत पियरवा।

अन्तरा के बोल :–

सदारंग जिन जावो, बिदेसवा सुख निंदरिया, सोवन दे रे, सोवन दे रे मीत पियरवा।

प्र0.9 राग बिहाग में द्रुत गत की स्थाई की स्वरलिपि लिखिए।

उ0. स्थाई स्वरलिपि :–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
												नि़	धध	नि़	रे
												दा	दिर	दा	रा
												3			
ग	–	ग	रे	ग	मम	पप	मम	ग–	गरे	–रे	सा–				
दा	ऽ	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ				
ग	मम	ध	नि	सां	निनि	ध	प	ग	रेरे	गग	मम	ग–	गरे	–रे	सा–
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ
×				2				0				3			

प्र0.10 राग बिहाग में विलम्बित गत के अन्तरे की स्वरलिपि लिखिए।

उ0. **अन्तरा स्वरलिपि :–**

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
											पप	ग	मम	प	नि
											दिर	दा	दिर	दा	रा
सां	गं	सां	निसां	नि	सांसां	मं	गं	गं	नि	सां					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा					
×				0				2				3			
											मम	ग	निसां	नि	प
											दिर	दा	दिर	दा	रा
सां	सां	सां	सांसां	नि	धप	म	प	ग	म	ग					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा					
×				0				2				3			

प्र0.11 राग बिहाग की द्रुत गत की स्थाई की स्वरलिपि लिखिए।

उ0. स्थाई स्वरलिपि :–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
												नि़	धध	नि़	रे
												दा	दिर	दा	रा
												3			
ग	–	ग	रे	ग	मम	पप	मम	ग–	गरे	–रे	सा–				
दा	ऽ	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ				
ग	मम	ध	नि	सां	निनि	ध	प	ग	रेरे	गग	मम	ग–	गरे	–रे	सा–
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ
×				2				0				3			

प्र0.12 राग बिहाग में तोड़े लिखिए।

तोड़े :–

0 से सम तक :–

1. नि़रे गरे ग– नि़रे गरे ग– निरे गरे
   पम गरे ग– पमे गरे ग– पम गरे

0 से गत :–

2. सांनि धप म॑ग रेसा।

3.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. मधुर स्वरलिपि संग्रह, संपादक – पं0 हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव, प्रकाशक – संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मलाका, इलाहाबाद।
2. नन्द लाल गर्ग रचित गतें।
3. संगीत सार, वीणा मानकरण, राज पब्लिशर, जालन्धर।

3.14 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 राग बिहाग की विलम्बित गत और द्रुत गत लिखिए।

प्र0.2 राग शुद्ध सारंग में बड़े और छोटे ख्याल की स्वरलिपि दो तानों सहित लिखिए।

–:–:–:–:–:–:–:–

UNIT – II

LESSON – 4

Origin and Development of Gharana System with special references to Khayal Gayaki and Sitar Vadan

STRUCTURE :

4.1 भूमिका

4.2 उदेश्य

4.3 घराने का अर्थ

4.4 गायकी के घराने

4.4.1 ग्वालियर घराना

4.4.2 आगरा घराना

4.4.3 जयपुर घराना

4.4.4 पटियाला घराना

4.4.5 अल्लादिया खां का घराना

4.4.6 किराना घराना

4.4.7 दिल्ली घराना

4.5 सितार के घराने

4.5.1 सेनिया घराना

4.5.2 अल्लाऊदीन खां का घराना

4.5.3 गौरीपुर घराना

4.6 सारांश

4.7 शब्दकोष

4.8 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.10 महत्वपूर्ण प्रश्न

4.1 भूमिका :–

'घराना' शब्द संगीत से सम्बन्धित कोई पारिभाषिक महत्व नहीं रखता। सामाजिक दृष्टि से इसका अर्थ क्षेत्र बड़ा संकुचित प्रतीत होता है। घरानों का जन्म मध्यकाल से माना जाता है। मध्यकाल में मुसलमानों का शासन था। उस समय गायकी में आनन्द रूपता ने स्थान ले लिया था। संगीत के प्रति गायकों की रूचि में परिवर्तन हुआ और अनेक गायकों ने अपनी–अपनी रूचि के अनुसार संगीत की भिन्न–भिन्न शैलियों का निर्माण किया। इस प्रकार प्रत्येक शैली के अलग–अलग प्रर्वतक हो गए। इन प्रवर्तकों की अलग–अलग शिष्य परम्परा चल पड़ी। प्रत्येक शिष्य परम्परा में धीरे–धीरे नई–नई शैलियों का आविष्कार हुआ। जिससे गायन, वादन और नृत्य के अनेक घरानों की उत्पति एवं विकास हुआ।

4.2 उदेश्य :–

हमारे भारतीय संगीत में गायन के क्षेत्र में अलग–अलग प्रकार की विशेषताएं पाई जाती हैं। इन विशेषताओं को लेकर हमारे अलग–अलग संगीतज्ञों ने अलग–अलग घरानों की नींव रखी। इन घरानों में अलग–अलग प्रवर्तक एवं प्रचारक हुए। जिन्होंने अनेक शिष्यों को तैयार किया। इसी घराना परम्परा के विषय में जानना इस पाठ का उदेश्य है।

4.3 घराने का अर्थ :–

मध्यकालीन राजदरबारों में गायकों का बड़ा आदर होता था। अतः अनेक मध्यकालीन संगीतज्ञों ने अपनी शिष्य परम्परा स्थापित करने तथा उसे जीवित रखने के लिए सहृदयता के साथ शिष्यों को संगीत की शिक्षा देनी आरम्भ कर दी। इन गायकों ने ध्रुपद और धमार गायकी के स्थान पर ख्याल गायकी का आविष्कार किया । ख्याल गायकी के सर्वप्रथम प्रवर्तक अमीर खुसरो माने जाते हैं। इन्होंने सबसे पहले कव्वाली का आविष्कार किया तत्तपश्चात् कव्वाली की शैली का पुट लेकर उन्होंने छोटे ख्याल का आविष्कार किया। छोटे ख्याल का प्रचार होने के पश्चात् ही बड़े ख्याल का प्रचार प्रारम्भ हुआ था ऐसा हमारे पुराने संगीतज्ञों का मानना है। बड़े ख्याल के प्रचारक सुल्तान हुसैन शर्की माने जाते हैं।

पहले ध्रुपद गायन शैली और ख्याल गायन शैली एक साथ प्रचार में थी। किन्तु बाद में धीरे–धीरे ध्रुपद गायकी का प्रचार कम हो गया और ख्याल गायकी का प्रचार बढ़ गया। जब ख्याल गायकी का प्रचार बढ़ गया तब इसमें अपनी–अपनी शैली को लेकर अलग–अलग घरानों का उदय हुआ।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 घराने से आप क्या समझते हैं ?

4.4 गायकी के घराने :–

आधुनिक संगीत जगत में ख्याल गायकी के अनेक घराने प्रचलित हैं जो कि इस प्रकार हैं –––

1. ग्वालियर घराना
2. आगरा घराना
3. दिल्ली घराना
4. जयपुर घराना
5. पटियाला घराना
6. अल्लादियाँ खां का घराना
7. किराना घराना

4.4.1 ग्वालियर घराना —

स्वर्गीय नत्थन पीरबक्श इस घराने के जन्मदाता माने जाते हैं। उनके दो पुत्र हुए –– कादरबक्श और पीरबक्श। इन दोनों में कादरबक्श ग्वालियर नरेश दौलत राव जी महाराज के यहाँ नियुक्त थे। इनके तीन पुत्र हुए –– हददू खां, हस्सु खां तथा नथ्थू खां। इन लोगों ने संगीत जगत में बहुत नाम कमाया।

नथ्थू खां को उनके चाचा पीरबक्श ने गोद ले लिया था और वहीं इन्होंने संगीत की शिक्षा भी प्राप्त की।

हस्सू खां के पुत्र गुलेइमाम खां हुए और आगे गुलेइमाम खां के पुत्र मेंहदी हुसैन खां थे जिन्होंने संगीत की शिक्षा अपने पिता और दादा से प्राप्त की। इस घराने की शिष्य परम्परा में सबसे पहले बालकृष्ण बुआ, वासुदेव जोशी, तथा बाबा दिक्षित हुए। आगे चल कर इन शिष्यों के भी आगे शिष्य हुए जैसे –– बालकृष्ण बुआ के शिष्य पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर हुए जिन्होंने संगीत के लिए और उसके प्रचार–प्रसार में अपना विशेष योगदान दिया। आगे चल कर इस घराने में विनायक राव पटवर्धन, नारायण राव व्यास, पं0 ओंकारनाथ ठाकुर, वी.एन. कशालकर, वी.एन. ठाकुर इत्यादि।

इसी घराने के हददू खां के दो पुत्र हुए ––रहमत खां तथा मुहम्मद खां। इनके शिष्यों में इन्दौर के रामभाऊ तथा विष्णु पंत छत्रे प्रमुख थे।

ग्वालियर घराने के ही नत्थू खां थे। इनके कोई पुत्र नहीं थे अतः इन्होंने अपने मित्र के पुत्र निसार हुसैन को गोद लिया और उन्हें संगीत की शिक्षा प्रदान की। निसार हुसैन ने संगीत जगत में बहुत नाम कमाया। निसार हुसैन की शिष्य परम्परा में शंकर राव पंडित, भाऊ राव जोशी, राजा भैय्या पूंछवाले तथा मुश्ताक हुसैन खां प्रमुख रहे।

आगे इसी घराने में शंकर राव पंडित के पुत्र कृष्ण राव पंडित तथा शिष्य राजाभैया पूंछवाले थे।

इस घराने की विशेषताएं इस प्रकार हैं —

1. खुली व ज़ोरदार आवाज़ में गाना।
2. ध्रुपद अंग के ख्याल गाना।
3. गमक का प्रयोग करना।
4. बहलाव के साथ विस्तार करना।
5. सीधी व सपाट तानों का प्रयोग करना।
6. गायकी की तैयारी पर अधिक बल दिया जाता है।
7. इस घराने में तराने की तैयारी पर विशेष बल दिया जाता है।

4.4.2 आगरा घराना :–

आगरा घराने के प्रवर्तक हाजी सुजान माने जाते हैं। इस घराने का प्रचार खुदा बक्श ने किया। वे नत्थन पीरबक्श के शिष्य थे। इन्होंने आगरा जा कर ग्वालियर घराने की गायकी को एक नवीन शैली का रूप दिया जो आगे चल कर आगरा घराने के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इस घराने के प्रमुख संगीत कलाकारों में नत्थन खाँ, गुलाम अब्बास खाँ तथा कल्लन खाँ के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। आगरा घराने की शिष्य परम्परा में मुहम्मद खाँ, अब्दुल खाँ, फैयाज़ खाँ, विलायत हुसैन खाँ तथा बन्ने खाँ के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस घराने की विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

1. इस घराने के गायक ज्वारीदार आवाज़ में गायन का प्रदर्शन करते हैं। ग्वालियर घराने के प्रभाव के कारण खुली आवाज़ में गाना इस घराने की विशेषता है।
2. इस घराने में पेचदार बंदिशे गाई जाती हैं। बंदिशों के मुखड़े विलक्षण होते हैं।
3. इस घराने में गायकों के आलाप लेने का ढंग निराला है। इस घराने के अधिकतर गायक अपने गायन में नोम्–तोम् का आलाप लेते हैं।

4. इस घराने में विशेष प्रकार की बोल तानों का प्रयोग किया जाता है।
5. इस घराने में जबड़े की तानों का भी विशेष प्रयोग किया जाता है।
6. इस घराने में लय और ताल की तैयारी पर अधिक बल दिया जाता है।
7. इस घराने में ध्रुपद, धमार और ख्याल के अतिरिक्त ठुमरी गायन का भी विशेष प्रचलन है।

4.4.3 जयपुर घराना :–

जयपुर घराने के जन्मदाता मुहम्मद अली खाँ माने जाते हैं। मुहममद अली खाँ के वंशजों में मनरंग का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि इन्होंने जयपुर घराने के विकास में महान योगदान दिया। इस घराने के अन्य प्रमुख कलाकारों में आशिक अली खाँ और मुश्ताक़ अली खाँ के नाम विशेष रूप से लिए जाते हैं।

इस घराने की विशेषताएं निम्नलिखित हैं :–

1. इस घराने में राग का स्वर–विस्तार छोटे–छोटे स्वर–समूहों युक्त तानों के द्वारा किया जाता है।
2. इस घराने में वक्र तानों का भी अत्यधिक प्रयोग किया जाता है।
3. इस घराने में बहुत संक्षिप्त बंदिशें गाई जाती हैं। इनमें स्थाई और अन्तरा की पंक्तियां सीमित रहती हैं जिससे बोलतानों के लिए पर्याप्त अवसर मिलता है।
4. इस घराने में खुली आवाज़ में गाने का प्रचलन है।
5. इस घराने के गायन में स्वर वैचित्रय उत्पन्न करने पर विशेष बल दिया जाता है।
6. इस घराने में गायन में एक विशेष प्रकार के स्वर लगाव पर ध्यान दिया जाता है।

4.4.4 पटियाला घराना :–

पटियाला घराने के प्रर्वतक अलीबक्श माने जाते हैं। कहा जाता है कि इनके सहयोगी फतेह अली खाँ ने इस घराने के प्रचार और प्रसार में विशेष योगदान दिया। इस घराने के प्रमुख संगीतज्ञों में काले खाँ, कालू खाँ तथा बड़े गुलाम अली खाँ के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस घराने की विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

1. इस घराने की बंदिशें कलात्मक होती हैं लेकिन ख्यालों के गीत संक्षिप्त होते हैं।
2. इस घराने की एक विशेषता यह है कि इस घराने में गले की तैयारी पर विशेष बल दिया जाता है।
3. इस घराने में तानों को विशेष महत्व दिया जाता है।

4. इस घराने में अभ्यस्त तानों का अधिक प्रयोग किया जाता है। यहाँ अलंकारिक तथा वक्र तानों का अधिक प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त फिरत की तानों पर भी विशेष बल दिया जाता है।
5. इस घराने में पंजाबी ठुमरी गाने का भी विशेष नियम है।

4.4.5 अल्लादिया खाँ का घराना :–

अल्लादिया खाँ संगीत कला के उच्चकोटी के गायक थे। इनके गुरू जहाँगीर खाँ थे। अपने गुरू से संगीत की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् इन्होंने अपनी एक अलग गायन शैली का सुत्रपात किया और अपने ही नाम से एक नए घराने को जन्म दिया जो कि आगे चल कर इन्हीं के नाम अल्लादीया खाँ के घराने के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इस घराने की शिष्य परम्परा में मानतोल खाँ, ख्वाजा अहमद खाँ, हैदर खाँ के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। अल्लादीया खाँ के दो पुत्र हुए –– मंजी खाँ तथा मूर्जी खाँ। ये दोनों ही संगीत के सिद्धस्त कलाकार थे। इनके अतिरिक्त केसर बाई केरकर, मोघू बाई कुर्डीकर तथा शंकर राव सरनाहक भी इस घराने के जाने माने कलाकार रहे।

इस घराने की विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

1. इस घराने में कला पक्ष को प्रधानता दी जाती है।
2. इस घराने में पेचदार बंदिशें गाने की प्रधानता है।
3. इस घराने का गीत को प्रस्तुत करने का अपना एक निराला ढंग है।
4. इस घराने की यह विशेषता रही है कि इस घराने में मिश्र रागों का प्रदर्शन करने की प्रवृत्ति रही है।
5. बोल तानों का प्रयोग करना इस घराने की विशेषता है।
6. इस घराने में ध्रुपद, धमार तथा बड़े ख्याल के गायन में अधिकतर अति विलम्बित लय का प्रयोग किया जाता है।

4.4.6 किराना घराना :–

'मुज़फ्फरनगर' में 'किराना' एक स्थान है जहाँ के रहने वाले संगीतज्ञों की गायन शैली 'किराना घराना' के नाम से प्रसिद्ध हुई। मुगल शासनकाल में अली खाँ उच्चकोटी के संगीतज्ञ थे। वे बीन बजाने में अधिक कुशल थे। अली खाँ के पुत्र बन्दे अली खाँ हुए। जो कि बीन बजाने के साथ–साथ गायन के भी सुविख्यात कलाकार रहे।

इस घराने की शिष्य परम्परा में मुराद खाँ, अज़ीम बक्श, मौला बक्श, अब्दुल करीम खाँ, अब्दुल वहीद खाँ के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। अब्दुल करीम खाँ के तीन भाई और हुए –– अब्दुल मजीद, अब्दुल गनी और अब्दुल हक। ये सभी संगीत के महान कलाकारों में गिने जाते थे।

इस घराने की शिष्य परम्परा में उस्ताद अमीर खाँ, गंगू बाई हंगल, हीराबाई बड़ोदकर तथा भीमसेन जोशी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस घराने की विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

1. इस घराने में स्वर लगाव पर विशेष ध्यान दिया जाता है।
2. स्वर लगाने का एक विशेष नियम है। इस घराने में आलाप करते समय एक–एक स्वर को लेकर स्वर विस्तार करने का नियम है।
3. इस घराने में आलाप को प्रधानता दी जाती है।

4.4.7 दिल्ली घराना :–

इस घराने का जन्म मुगल शासन के पतन के पश्चात् हुआ। इस घराने के प्रवर्तक तानरस खाँ माने जाते हैं। 'यथा नाम तथा गुण' यह कथन तानरस खाँ के जीवन में अक्षरसः चरितार्थ होता है। जैसा इनका नाम तानरस खाँ था वैसा ही तान लेने की कला इनकी गायन शैली की विशेषता थी। जब ये तान लेते थे तो ऐसा प्रतीत होता था मानों बहुत से पक्षियों का एक समूह एक साथ उड़ गया हो।

आगे चल कर इनके पुत्र हुए उमराव खाँ जिन्होंने इस घराने के विकास में महान योगदान दिया। इसी प्रकार इस घराने में चाँद खाँ का नाम भी विशेष रूप से लिया जाता है।

इस घराने की विशेषताएं निम्नलिखित हैं :–

1. इस घराने में गायकी की तैयारी पर विशेष बल दिया जाता है।
2. इस घराने में बोल आलापों की अपेक्षा बोल तानों पर विशष ध्यान दिया जाता है।
3. इस घराने में तान लेते समय स्वर विचित्रता और अलंकार विचित्रता पर विशेष ध्यान दिया जाता है।
4. इस घराने की बंदिशों में कलापक्ष की प्रधानता रहती है।

इस प्रकार गायन के अलग–अलग घरानों ने अपनी गायन शैली अलग विशेषताओं में स्थापित की और आज बहुत से लोग इन घरानों से शिक्षा ग्रहण करके इन घरानों का नाम रौशन कर रहे हैं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 दिल्ली घराने तथा आगरा घराने की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

प्र0.2 गायन के प्रथम घराने का वर्णन कीजिए।

प्र0.3 पटियाला घराने के विषय में लिखिए।

4.5 सितार के घराने :–

गायन के घरानों की तरह भारतीय वाद्य संगीत में भी घरानों का विशेष महत्व रहा है। वाद्य संगीत में वाद्य की बनावट, वादन क्रिया या बाज की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं के आधार पर भिन्न–भिन्न घरानों का जन्म समय–समय पर होता रहा है। वादन संगीत की कभी कोई घरानेदार शैली प्रचलित हुई तो कभी कोई दूसरी शैली। जैसे प्राचीन तन्त्रकारी के बाज की प्रतिष्ठा एवं विशेषता बीन, रबाब और सुरसिंगार से प्रेरित थी। दूसरी ओर वीणा की प्राचीन परम्परागत शैली, ध्रुपद शैली से सम्बन्धित थी। जबकि आधुनिक वाद्य संगीत की शैली आलाप और गतकारी पर आधारित हुई।

आज सितार , सरोद और वाइलिन जैसे साजों में गला–बजाना अर्थात् गायकी अंग में वादन करना कला और कलाकारी का चमत्कार माना जाता है। जबकि प्राचीन वाद्य संगीत की शैली में तंत्र के ही बाज में गले की हरकतों का प्रयोग करना वर्जित था। आज भी सेनिया घराने के वादक वाद्यों पर गला बजाना 'बाज' मर्यादा का अपमान मानते हुए गले की हरकतों का बहिष्कार करते हैं।

जब वाद्यों का स्वतंत्र रूप से वादन का प्रचार हुआ तब सितार, सरोद आदि वाद्यों की भी वादन शैलियाँ बन गई। शैली का अर्थ है 'वादन का एक विशेष प्रकार'। वादन संगीत में इसी शैली या वादन के विशेष प्रकार को 'बाज' कह कर पुकारा जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि घराना और बाज एक–दूसरे के पर्याय हैं। वादन संगीत में अलग–अलग वादन शैलियाँ या बाज अलग–अलग विशेषताओं पर निर्भर करते हैं जैसे –––

1. रागों का चुनाव
2. आलापचारी
3. स्वरों की बढ़त
4. लयकारी पर विशेष ध्यान
5. तोड़ों के प्रकार और उनका प्रस्तुतिकरण
6. वादन शैलियों में अलग–अलग गायन शैलियों का प्रभाव
7. मिजराब के बोलों को अलग ढंग से बजाना
8. वाद्यों का आकार–प्रकार

आज के समय में वादन संगीत में सितार वाद्य का विशेष स्थान माना जाता है। अतः संगीत के क्षेत्र में गायन संगीत की तरह वादन संगीत (सितार) की भी कई अलग–अलग शैलियां अर्थात् 'बाज' या 'घराने' प्रचलित हैं। जो कि इस प्रकार हैं –––

1. सेनिया या जयपुर घराना
2. अलाऊदीन खाँ का घराना
3. गौरीपुर घराना (इनायत खाँ का)

4.5.1 सेनिया घराना :–

इस घराने का उद्‌गम तानसेन और उनकी शिष्य परम्परा से माना जाता है। फिरोज़ खाँ के पुत्र मसीत खाँ तानसेन की सातवीं पीढ़ी से थे। ये अपनी वंशानुगत प्रतिष्ठा एवं ज्ञान के योग्य अधिकारी थे।

मसीत खाँ साहब ने सितार की शिक्षा अपने पिता फिरोज़ खाँ से प्राप्त की। ये महान सितार वादक माने जाते थे। इन्हीं के नाम से सितार में बजने वाले बाज 'मसीतखानी बाज' का निर्माण हुआ। आगे चल कर मसीत खाँ ने सितार की शिक्षा अपने भान्जे दुल्ला खाँ को दी। दुल्ला खाँ ने आगे ये शिक्षा अपने शिष्य और जवांई रहीम सेन कों दी। रहीम सेन के पुत्र और शिष्य अमृत सेन हुए जिन्होंने सितार पर वीणा, ख्याल तथा ध्रुपद अंग का प्रयोग किया। जयपुर के निवासी होने के कारण इनकी इस परम्परा को ही जयपुर घराना भी कहा जाने लगा।

आगे चल कर अमृतसेन के बहनोई एवं शिष्य उस्ताद अमीर खाँ इस घराने के महान कलाकार हुए। अमीर खाँ के शिष्यों में बरकतउल्ला खाँ तथा इमदाद खाँ हुए। इन दोनों कलाकारों के पश्चात् सितार के दो अलग–अलग घराने अस्तित्व में आए। एक घराना सेनिया के नाम से जाना गया और दूसरा गौरीपुर घराने के नाम से जाना गया।

सेनिया घराने में बरकतउल्ला खाँ के शिष्य आशिक अली खाँ हुए, आशिक अली खाँ के पुत्र एवं शिष्य स्व. मुश्ताक अली खाँ हुए। वर्तमान में इस परम्परा का प्रतिनिधित्व उस्ताद मुश्ताक अली खाँ के शिष्य पदमभूषण प्रो0 देवव्रत चौधरी, अरूण कुमार चटर्जी, अरबिन्दो घोष इत्यादि ने किया।

सेनिया घराना सितार का सबसे प्राचीन घराना माना जाता है। इस घराने की यह विशेषता है कि इस घराने के वादक कलाकार घरानेदार चीज़ों को बिना परिवर्तन के बजाने में गौरव अनुभव करते हैं। इस घराने की एक विशेषता यह भी है कि इस घराने ने मसीतखानी बाज में कोई परिवर्तन नहीं किया। इस घराने में सतरह (17) पर्दों का सितार बजाने की परम्परा है। सेनिया घराने की यह विशेषता भी है कि यहाँ के कलाकार राग की शुद्धता, राग में मिश्रित रूप का भाव, वादन में मिठास का होना, मिजराब का सन्तुलित प्रहार तथा परम्परा को बनाएं रखना इस घराने की विशेषता है।

4.5.2 अल्लाऊदीन खाँ का घराना :–

इस घराने के प्रर्वतक सरोद वादक स्व. उस्ताद अल्लाऊदीन खाँ माने जाते हैं। इन्होंने संगीत की शिक्षा उस्ताद मुहम्मद बज़ीर खाँ साहब से प्राप्त की थी। अल्लाऊदीन खाँ ने अपनी पुत्री अन्नपूर्णा को चौदह वर्षों तक गायन तथा सितार की शिक्षा प्रदान की। ये स्वयं इतने बड़े वादक कलाकार थे कि इन्होंने अपने पुत्र उस्ताद अली अकबर खाँ को प्रथम श्रेणी का सरोद वादक बनाया।

इस घराने की शिष्य परम्परा में महान सितार वादक पं0 रवि शंकर भी रहे। जिन्होंने सितार का न केवल भारत में अपितु विदेशों में भी प्रचार–प्रसार किया।

इस घराने की विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

1. इस घराने के वादन में प्राचीन और आधुनिक शैलियों का सुन्दर सम्मिश्रण देखने को मिलता है।
2. इस बाज में उत्तर व दक्षिण भारतीय वीणा, तंत्रकारी व कत्थक नृत्य के छंदों इत्यादि का समावेश देखने को मिलता है।
3. इस घराने में अति मंद्र सप्तक के स्वरों के लिए खरज व लरज के तारों का प्रयोग किया जाता है।
4. इस बाज की आलापचारी में ध्रुपद अंग की गम्भीरता सुनने को मिलती है।
5. इस घराने या बाज में जहाँ एक ओर गमक व मींड का प्रदर्शन गम्भीरता का सूचक है वहीं दूसरी ओर कृन्तन, जमजमा आदि का प्रयोग चंचलता को दिखाता है।
6. वादन में मिठास, सफाई एवं तैयारी इस बाज की विशेषता है।

इस घराने की शिष्य परम्परा में शंकर घोष, उमाशंकर मिश्र, गोपाल कृष्ण, निखिल बैनर्जी, जया बोस, हरिप्रसाद चौरसिया, बहादुर खाँ, लक्ष्मीनारायण गर्ग इत्यादि प्रमुख हैं।

4.5.3 गौरीपुर घराना :–

बरकतउल्ला खाँ के युग में इटावा के सितार वादकों में इमदाद खाँ और इनायत खाँ का जितना नाम हुआ था उतना किसी अन्य वादकों का नहीं हुआ। उस्ताद इमदाद खाँ ने सितार वादन में ऐसी वादन शैली का समावेश किया कि जिससे लोग उनके बाज को 'इमदादखानी बाज' के नाम से पुकारने लगे। इन्होंने सितार वादन में मींड, घसीट व झाले का सुत्रपात किया। आगे चल कर इनके पुत्र इनायत खाँ व वहीद खाँ हुए जो कि संगीत की दुनिया में अपना एक अलग नाम रखते थे। स्व. इनायत खाँ ने अपने बहुत से शिष्यों को इस बाज की तालीम दी। उस्ताद इनायत खाँ बहुत समय तक बंगाल की गौरीपुर रियासत में भी नियुक्त रहे जिससे लोग इन्हें गौरीपुर के इनायत खाँ के नाम से भी जानते हैं।

उस्ताद इनायत खाँ के अनेक शिष्य हुए जिन्होंने बहुत नाम कमाया लेकिन जितना नाम इनके अपने पुत्र उस्ताद विलायत खाँ साहब ने कमाया वह उल्लेखनीय है। बाल्यकाल में ही इनके पिता की मृत्यु हो गई जिससे

इन्होंने सितार की शिक्षा डी.टी. जोशी जो कि इनायत खाँ साहब के प्रमुख शिष्य थे से प्राप्त की। विलायत खाँ साहब ने कलकत्ता में अपने नाना बन्दे हसन से गायकी और सुरबहार की भी विधिवत शिक्षा प्राप्त की। इन्होंने इस घराने का बहुत प्रचार–प्रसार किया।

आगे चल कर इस घराने का प्रतिनिधित्व होनहार वादकों उस्ताद विलायत खाँ तथा इमरत खाँ साहिब के बेटे सुजात खाँ, निशाद खाँ तथा ईरशाद खाँ द्वारा किया गया।

गौरीपुर घराने की अपनी अलग यह विशेषता है कि इस बाज या घराने में आलाप, जोड़ तथा तिहाइयों का लाजवाब कार्य देखने को मिलता है। इस बाज की यह भी विशेषता है कि इसमें गायकी अंग को बड़ी सूक्ष्मता के साथ बजाया जाता है। इस घराने में छः तारों वाला सितार का वादन किया जाता है। इस घराने के कलाकार अपनी सितार में खरज का तार प्रायः नहीं लगाते। गंधार–पंचम की रीति से सितार में तारों को मिलाया जाता है। इस घराने की एक विशेषता यह भी है कि मिजराब के एक ही आघात में छः–सात स्वरों की मींड तथा ताल की एक मात्रा में छः–सात स्वरों का अतिशिघ्रता से सरलतापूर्वक प्रस्तुतिकरण करना है। इस घराने में गायकी अंग का वादन किया जाता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 सितार में घरानों को और किस नाम से जाना जाता है और उसकी क्या विशेषताएं रहती हैं ?

प्र0.2 अलाऊद्दीन खाँ के घराने या बाज के विषय में बताइए।

4.6 सारांश :–

भारतीय संगीत में घराना परम्परा का जन्म मध्यकाल से माना जाता है। अलग–अलग संगीतज्ञों ने गायन तथा वादन में अपनी कठिन साधना से मौलिक विशेषताएं उत्पन्न की और फिर उस मौलिकगत् विशेषताओं को स्थापित करने के लिए घरानों को जन्म दिया। इस प्रकार प्रत्येक शैली के अलग–अलग प्र्वतक हो गए। आगे चल कर धीरे–धीरे नई–नई शैलियों का विकास होता गया और नए–नए घरानों या बाज की उत्पत्ति एवं विकास होता गया।

4.7 शब्दकोष :–

1. सहृदयता – हृदय के साथ
2. ज्वारीदार – गूंजदार
3. विलक्षण – कठिन

4. वैचित्रय – विचित्र
5. अभ्यस्त – अभ्यास में पारंगत
6. सुत्रपात – प्रारम्भ
7. अक्षरसः – अक्षर की तरह
8. उद्गम – उत्पत्ति

4.8 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र01. घराने से आप क्या समझते हैं ?

उ0. 'घराना' शब्द संगीत से सम्बन्धित कोई पारिभाषिक महत्व नहीं रखता। सामाजिक दृष्टि से इसका अर्थ क्षेत्र बड़ा संकुचित प्रतीत होता है। घरानों का जन्म मध्यकाल से माना जाता है। मध्यकाल में मुसलमानों का शासन था। उस समय गायकी में आनन्द रूपता ने स्थान ले लिया था। संगीत के प्रति गायकों की रूचि में परिवर्तन हुआ और अनेक गायकों ने अपनी–अपनी रूचि के अनुसार संगीत की भिन्न–भिन्न शैलियों का निर्माण किया। इस प्रकार प्रत्येक शैली के अलग–अलग प्रर्वतक हो गए। इन प्रवर्तकों की अलग–अलग शिष्य परम्परा चल पड़ी। प्रत्येक शिष्य परम्परा में धीरे–धीरे नई–नई शैलियों का आविष्कार हुआ। जिससे गायन, वादन और नृत्य के अनेक घरानों की उत्पति एवं विकास हुआ।

घराने का अर्थ :–

मध्यकालीन राजदरबारों में गायकों का बड़ा आदर होता था। अतः अनेक मध्यकालीन संगीतज्ञों ने अपनी शिष्य परम्परा स्थापित करने तथा उसे जीवित रखने के लिए सह्रदयता के साथ शिष्यों को संगीत की शिक्षा देनी आरम्भ कर दी। इन गायकों ने ध्रुपद और धमार गायकी के स्थान पर ख्याल गायकी का आविष्कार किया । ख्याल गायकी के सर्वप्रथम प्रवर्तक अमीर खुसरो माने जाते हैं। इन्होंने सबसे पहले कव्वाली का आविष्कार किया तत्तपश्चात् कव्वाली की शैली का पुट लेकर उन्होंने छोटे ख्याल का आविष्कार किया। छोटे ख्याल का प्रचार होने के पश्चात् ही बड़े ख्याल का प्रचार प्रारम्भ हुआ था ऐसा हमारे पुराने संगीतज्ञों का मानना है। बड़े ख्याल के प्रचारक सुल्तान हुसैन शर्की माने जाते हैं।

पहले ध्रुपद गायन शैली और ख्याल गायन शैली एक साथ प्रचार में थी। किन्तु बाद में धीरे–धीरे ध्रुपद गायकी का प्रचार कम हो गया और ख्याल गायकी का प्रचार बढ़ गया। जब ख्याल गायकी का प्रचार बढ़ गया तब इसमें अपनी–अपनी शैली को लेकर अलग–अलग घरानों का उदय हुआ।

प्र0.2 दिल्ली घराने तथा आगरा घराने की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।

उ0. दिल्ली घराने की विशेषताएं निम्नलिखित हैं :–

1. इस घराने में गायकी की तैयारी पर विशेष बल दिया जाता है।
2. इस घराने में बोल आलापों की अपेक्षा बोल तानों पर विशष ध्यान दिया जाता है।
3. इस घराने में तान लेते समय स्वर विचित्रता और अलंकार विचित्रता पर विशेष ध्यान दिया जाता है।
4. इस घराने की बंदिशों में कलापक्ष की प्रधानता रहती है।

आगरा घराने की विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

1. इस घराने के गायक ज्वारीदार आवाज़ में गायन का प्रदर्शन करते हैं। ग्वालियर घराने के प्रभाव के कारण खुली आवाज़ में गाना इस घराने की विशेषता है।
2. इस घराने में पेचदार बंदिशे गाई जाती हैं। बंदिशों के मुखड़े विलक्षण होते हैं।
3. इस घराने में गायकों के आलाप लेने का ढंग निराला है। इस घराने के अधिकतर गायक अपने गायन में नोम्–तोम् का आलाप लेते हैं।
4. इस घराने में विशेष प्रकार की बोल तानों का प्रयोग किया जाता है।
5. इस घराने में जबड़े की तानों का भी विशेष प्रयोग किया जाता है।
6. इस घराने में लय और ताल की तैयारी पर अधिक बल दिया जाता है।
7. इस घराने में ध्रुपद, धमार और ख्याल के अतिरिक्त ठुमरी गायन का भी विशेष प्रचलन है।

प्र0.3 गायन के प्रथम घराने का वर्णन कीजिए।

उ0. गायन का प्रथम घराना **ग्वालियर घराना ––**

स्वर्गीय नत्थन पीरबक्श इस घराने के जन्मदाता माने जाते हैं। उनके दो पुत्र हुए –– कादरबक्श और पीरबक्श। इन दोनों में कादरबक्श ग्वालियर नरेश दौलत राव जी महाराज के यहाँ नियुक्त थे। इनके तीन पुत्र हुए –– हददू खां, हस्सु खां तथा नथ्थू खां। इन लोगों ने संगीत जगत में बहुत नाम कमाया।

नथ्थू खां को उनके चाचा पीरबक्श ने गोद ले लिया था और वहीं इन्होंने संगीत की शिक्षा भी प्राप्त की।

हस्सू खां के पुत्र गुलेइमाम खां हुए और आगे गुलेइमाम खां के पुत्र मेंहदी हुसैन खां थे जिन्होंने संगीत की शिक्षा अपने पिता और दादा से प्राप्त की। इस घराने की शिष्य परम्परा में सबसे पहले बालकृष्ण बुआ, वासुदेव जोशी, तथा बाबा दिक्षित हुए। आगे चल कर इन शिष्यों के भी आगे शिष्य हुए जैसे –– बालकृष्ण बुआ के शिष्य पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर हुए जिन्होंने संगीत के लिए और उसके प्रचार–प्रसार में अपना विशेष योगदान दिया। आगे चल कर इस घराने में विनायक राव पटवर्धन, नारायण राव व्यास, पं0 ओंकारनाथ ठाकुर, वी.एन. कशालकर, वी.एन. ठाकुर इत्यादि।

इसी घराने के हददू खां के दो पुत्र हुए ––रहमत खां तथा मुहम्मद खां। इनके शिष्यों में इन्दौर के रामभाऊ तथा विष्णु पंत छत्रे प्रमुख थे।

ग्वालियर घराने के ही नत्थू खां थे। इनके कोई पुत्र नहीं थे अतः इन्होंने अपने मित्र के पुत्र निसार हुसैन को गोद लिया और उन्हें संगीत की शिक्षा प्रदान की। निसार हुसैन ने संगीत जगत में बहुत नाम कमाया। निसार हुसैन की शिष्य परम्परा में शंकर राव पंडित, भाऊ राव जोशी, राजा भैय्या पूंछवाले तथा मुश्ताक हुसैन खां प्रमुख रहे।

आगे इसी घराने में शंकर राव पंडित के पुत्र कृष्ण राव पंडित तथा शिष्य राजाभैया पूंछवाले थे।

इस घराने की विशेषताएं इस प्रकार हैं —

1. खुली व ज़ोरदार आवाज़ में गाना।
2. ध्रुपद अंग के ख्याल गाना।
3. गमक का प्रयोग करना।
4. बहलाव के साथ विस्तार करना।
5. सीधी व सपाट तानों का प्रयोग करना।
6. गायकी की तैयारी पर अधिक बल दिया जाता है।
7. इस घराने में तराने की तैयारी पर विशेष बल दिया जाता है।

प्र0.4 पटियाला घराने के विषय में बताइए।

उ0. **पटियाला घराना :–**

पटियाला घराने के प्रर्वतक अलीबक्श माने जाते हैं। कहा जाता है कि इनके सहयोगी फतेह अली खाँ ने इस घराने के प्रचार और प्रसार में विशेष योगदान दिया। इस घराने के प्रमुख संगीतज्ञों में काले खाँ, कालू खाँ तथा बड़े गुलाम अली खाँ के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस घराने की विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

1. इस घराने की बंदिशें कलात्मक होती हैं लेकिन ख्यालों के गीत संक्षिप्त होते हैं।
2. इस घराने की एक विशेषता यह है कि इस घराने में गले की तैयारी पर विशेष बल दिया जाता है।
3. इस घराने में तानों को विशेष महत्व दिया जाता है।
4. इस घराने में अभ्यस्त तानों का अधिक प्रयोग किया जाता है। यहाँ अलंकारिक तथा वक्र तानों का अधिक प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त फिरत की तानों पर भी विशेष बल दिया जाता है।
5. इस घराने में पंजाबी ठुमरी गाने का भी विशेष नियम है।

प्र0.5 सितार में घरानों को और किस नाम से जाना जाता है और उसकी क्या विशेषताएं रहती हैं ?

उ0.	गायन के घरानों की तरह भारतीय वाद्य संगीत में भी घरानों का विशेष महत्व रहा है। वाद्य संगीत में वाद्य की बनावट, वादन क्रिया या बाज की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं के आधार पर भिन्न–भिन्न घरानों का जन्म समय–समय पर होता रहा है। वादन संगीत की कभी कोई घरानेदार शैली प्रचलित हुई तो कभी कोई दूसरी शैली। जैसे प्राचीन तन्त्रकारी के बाज की प्रतिष्ठा एवं विशेषता बीन, रबाब और सुरसिंगार से प्रेरित थी। दूसरी ओर वीणा की प्राचीन परम्परागत शैली, ध्रुपद शैली से सम्बन्धित थी। जबकि आधुनिक वाद्य संगीत की शैली आलाप और गतकारी पर आधारित हुई।

आज सितार , सरोद और वाइलिन जैसे साजों में गला–बजाना अर्थात् गायकी अंग में वादन करना कला और कलाकारी का चमत्कार माना जाता है। जबकि प्राचीन वाद्य संगीत की शैली में तंत्र के ही बाज में गले की हरकतों का प्रयोग करना वर्जित था। आज भी सेनिया घराने के वादक वाद्यों पर गला बजाना 'बाज' मर्यादा का अपमान मानते हुए गले की हरकतों का बहिष्कार करते हैं।

जब वाद्यों का स्वतंत्र रूप से वादन का प्रचार हुआ तब सितार, सरोद आदि वाद्यों की भी वादन शैलियाँ बन गई। शैली का अर्थ है 'वादन का एक विशेष प्रकार'। वादन संगीत में इसी शैली या वादन के विशेष प्रकार को 'बाज' कह कर पुकारा जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि घराना और बाज एक–दूसरे के पर्याय हैं। वादन संगीत में अलग–अलग वादन शैलियाँ या बाज अलग–अलग विशेषताओं पर निर्भर करते हैं जैसे –––

1. रागों का चुनाव
2. आलापचारी
3. स्वरों की बढ़त
4. लयकारी पर विशेष ध्यान
5. तोड़ों के प्रकार और उनका प्रस्तुतिकरण
6. वादन शैलियों में अलग–अलग गायन शैलियों का प्रभाव
7. मिजराब के बोलों को अलग ढंग से बजाना
8. वाद्यों का आकार–प्रकार

प्र0.6 अलाऊद्दीन खाँ के घराने या बाज के विषय में बताइए।

उ0. **अल्लाऊदीन खाँ का घराना :–**

इस घराने के प्रर्वतक सरोद वादक स्व. उस्ताद अल्लाऊदीन खाँ माने जाते हैं। इन्होंने संगीत की शिक्षा उस्ताद मुहम्मद बज़ीर खाँ साहब से प्राप्त की थी। अल्लाऊदीन खाँ ने अपनी पुत्री अन्नपूर्णा को चौदह वर्षों तक गायन तथा सितार की शिक्षा प्रदान की। ये स्वयं इतने बड़े वादक कलाकार थे कि इन्होंने अपने पुत्र उस्ताद अली अकबर खाँ को प्रथम श्रेणी का सरोद वादक बनाया।

इस घराने की शिष्य परम्परा में महान सितार वादक पं0 रवि शंकर भी रहे। जिन्होंने सितार का न केवल भारत में अपितु विदेशों में भी प्रचार–प्रसार किया।

इस घराने की विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

1. इस घराने के वादन में प्राचीन और आधुनिक शैलियों का सुन्दर सम्मिश्रण देखने को मिलता है।
2. इस बाज में उत्तर व दक्षिण भारतीय वीणा, तंत्रकारी व कत्थक नृत्य के छंदों इत्यादि का समावेश देखने को मिलता है।
3. इस घराने में अति मंद्र सप्तक के स्वरों के लिए खरज व लरज के तारों का प्रयोग किया जाता है।
4. इस बाज की आलापचारी में ध्रुपद अंग की गम्भीरता सुनने को मिलती है।
5. इस घराने या बाज में जहाँ एक ओर गमक व मींड का प्रदर्शन गम्भीरता का सूचक है वहीं दूसरी ओर कृन्तन, जमजमा आदि का प्रयोग चंचलता को दिखाता है।
6. वादन में मिठास, सफाई एवं तैयारी इस बाज की विशेषता है।

इस घराने की शिष्य परम्परा में शंकर घोष, उमाशंकर मिश्र, गोपाल कृष्ण, निखिल बैनर्जी, जया बोस, हरिप्रसाद चौरसिया, बहादुर खाँ, लक्ष्मीनारायण गर्ग इत्यादि प्रमुख हैं।

4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. भारतीय संगीत (एक ऐतिहासिक विश्लेषण), प्रो0 स्वतंत्र शर्मा, अभिनव पब्लिशिंग हॉउस, इलाहाबाद, 2014।
2. संगीत विशारद, बसंत, संगीत कार्यालय हाथरस, उ. प्र., जनवरी 1997, 21वाँ संस्करण।

4.10 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 गायन के घरानों को उनकी विशेषताओं के साथ वर्णित कीजिए।

प्र0.2 सितार के घरानों का वर्णन कीजिए।

:–:–:–:–:–:–:

LESSON - 5

Types of musical compositions :

Prabandh, Dhrupad, Dhamar

STRUCTURE :

5.1 भूमिका

5.2 उदेश्य

5.3 प्रबन्ध

5.3.1 प्रबन्ध का अर्थ

5.3.2 शास्त्रों में प्रबन्ध का उल्लेख

5.3.2.1 सूड प्रबन्ध

5.3.2.2 विप्रकीर्ण प्रबन्ध

5.3.2.3 आलीक्रम प्रबन्ध

5.3.3 प्रबन्ध के अंग

5.3.3.1 स्वर

5.3.3.2 विरूद

5.3.3.3 पद

5.3.3.4 तेनक

5.3.3.5 पाट

5.3.3.6 ताल

5.4 अंगो के आधार पर वर्गीकरण

5.4.1 मेदिनी जाति

5.4.2 आनन्दिनी जाति

5.4.3 दीपिनी जाति

5.4.4 भाविनी जाति

5.4.5 तरावली जाति

5.5 प्रबन्ध की धातु

5.5.1 उद्ग्राह

5.5.2 ध्रुव

5.5.3 मेलापक

5.5.4 आभोग

5.6 ध्रुपद

5.6.1 ध्रुपद में राग

5.6.2 ध्रुपद में ताल

5.7 धमार

5.8 सारांश

5.9 शब्दकोष

5.10 स्वयं परीक्षा प्रश्न–उत्तर

5.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.12 महत्वपूर्ण प्रश्न

5.1 भूमिका :–

भारतीय संगीत में कई प्रकार की गायन शैलियां प्रचलित हैं। जिनका अपना–अपना एक अलग स्थान है। ये गायन शैलियां हमारे संगीत को और अधिक आनन्ददायक बनाती हैं। हर गायन शैली की अपनी एक अलग गायन विधा है। जो कि स्वर, लय व ताल में अपना अलग स्थान रखतीं हैं।

5.2 उदेश्य :–

इस पाठ का उदेश्य अलग–अलग गायन शैलियों के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना है। जैसे इनका इतिहास क्या रहा है और ये गायन शैलियां कब प्रचार में आईं और कैसे इनका विकास हुआ।

5.3 प्रबन्ध :–

शास्त्रों का अध्ययन करने से पता चलता है कि प्राचीन काल में गायन के 'अनिबद्ध' और 'निबद्ध' दो भेद बताए गए हैं। जिसमें अनिबद्ध का अर्थ है –– 'ताल रहित' अर्थात् ऐसा गायन जो ताल से मुक्त हो, कहने का तात्पर्य यह है कि वह गायन जो ताल में बंधा हुआ न हो। जैसा कि आलाप की तरह का गायन जिसे मुक्त रूप से गाया जाता है , वह 'अनिबद्ध गान' कहलाता है। इसके विपरीत जो गायन ताल में बंधा हुआ होता है उसे 'निबद्ध गान' कहकर पुकारा जाता है। पद, स्वर और ताल ये तीन तत्व ऐसे हैं जिनका आपस में बंधा हुआ होना निबद्ध गान के लिए अनिवार्य है। शास्त्रों में निबद्ध गान के तीन प्रकार बताए गए हैं और ये तीन प्रकार हैं –– प्रबन्ध, वस्तु और रूपक। इनमें प्रबन्ध को सबसे अधिक प्रचलित माना गया है।

5.3.1 प्रबन्द्ध का अर्थ :–

प्रबन्ध का शाब्दिक अर्थ है –– 'प्र + बन्ध' या 'प्रकृष्ट रूपेण बन्धः' अर्थात् वह गेय रचना, जिसमें अंगों को भली–भान्ति, सुन्दर रूप से बाँधा गया हो, उसे 'प्रबन्ध' कहा जाता है। इस प्रकार प्रबन्ध में अंगों का एक अंग में बँधा होना ही इसका मुख्य अर्थ है। आधुनिक समय की 'बंदिश' या जिसे हम 'चीज़' कहकर भी पुकारते हैं, वह इसी के अन्तर्गत् आती है। स्पष्ट रूप से कहा जाए तो स्वर, ताल और शब्द से युक्त रचना ही 'प्रबन्ध' कहलाती है। प्रबन्ध शब्द अति प्राचीन है। जिस प्रकार संगीत की परिभाषाएं, अनेक राग, ताल, वाद्यों आदि की परिभाषाएं अति प्राचीन होकर भी आज अप्रचलित हो गई हैं, उसी प्रकार गायन का यह भेद 'प्रबन्ध' भी आज अप्रचलित हो गया है।

5.3.2 शास्त्रों में प्रबन्ध का उल्लेख :–

भरत मुनि ने अपने ग्रन्थ नाटय शास्त्र में प्रबन्ध का उल्लेख किया है। उन्होंने नृत्य से सम्बन्धित ध्रुव और गीत दो प्रकार के प्रबन्धों का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त मतंग ने बृहद्देशी में सर्वप्रथम प्रबन्धों के स्वरूप का उल्लेख किया है। उन्होंने अपने ग्रन्थ में 49 देशी प्रबन्धों का वर्णन किया है। पं0 शारंगदेव ने अपने ग्रन्थ संगीत रत्नाकर में 75 प्रबन्धों का उल्लेख किया है। इन ग्रन्थों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि 13वीं शताब्दी तक प्रबन्ध व्यापक रूप से प्रचलित एवं लोकप्रिय थे। मतंग मुनि ने अपने ग्रन्थ बृहद्देशी में प्रबन्धों का वर्णन करते हुए बताया है कि वे सभी प्रबन्धों को देशी प्रबन्ध के अन्तर्गत् मानते थे। वहीं दूसरी ओर शारंगदेव ने अपने प्रबन्धों का वर्गीकरण तीन भागों में किया है। ये तीन भाग हैं –––

1. सूड प्रबन्ध
2. विप्रकीर्ण प्रबन्ध
3. आलिक्रम प्रबन्ध

5.3.2.1 सूड प्रबन्ध :–

इस प्रबन्ध के आगे दो और भेद बताए गए हैं। 'शुद्ध सूड' और 'सालग सूड'। सूड प्रबन्ध में पूर्व में कही गई बातों से सम्बन्ध अनिवार्य रूप से होता है अर्थात् पूर्व में कही गई बातों का गान होता है।

5.3.2.2 विप्रकीर्ण प्रबन्ध :–

सूड प्रबन्ध के विपरीत विप्रकीर्ण प्रबन्ध पूर्व में कही गई बातों के सम्बन्ध से रहित होता है। ये प्रबन्ध स्वतंत्र रूप से गाए जाने का वैशिष्टय रखते हैं।

5.3.2.3 आलिक्रम प्रबन्ध :–

इस प्रबन्ध की स्थिति सूड प्रबन्ध और आलिक्रम प्रबन्ध के बीच की स्थिति मानी जाती है।

5.3.3 प्रबन्ध के अंग :–

अनेक विद्वानों ने प्रबन्ध, रूपक और वस्तु ये तीन नाम निबद्ध गान के अन्तर्गत् बताए हैं। जिस प्रकार प्रबन्ध एक प्रकार का निबद्ध गान है जिसका अर्थ है 'बांधना'। निबद्ध गान के अन्तर्गत् प्रबन्ध के छः अंग बताए गए हैं। जो कि इस प्रकार हैं ––

स्वर, विरूद, पद, तेनक, पाट और ताल।

5.3.3.1 स्वर :–

'सा रे ग म प ध नि' ये संगीत के 'स्वर' कहलाते हैं। इनके बिना संगीत की रचना नही हो सकती। अतः यह प्रबन्ध का पहला अंग माना जाता है।

5.3.3.2 विरूद :–

ये प्रबन्ध अंग नाटकों के समय में प्रचलित रहे क्योंकि नाटकों के अन्तर्गत् इनका प्रयोग होता था। उस समय इन प्रबन्ध गीतों में पात्र, संदर्भ तथा कभी–कभी देवताओं का वर्णन भी हुआ करता था। इसके अन्तर्गत् पात्रों का गुणगान भी किया जाता था। कहने का तातपर्य यह है कि इस अंग के अन्तर्गत् गीत में नायक के नाम, कुल इत्यादि का वर्णन करना 'विरूद' कहलाता था।

5.3.3.3 पद :–

'पद' का अर्थ है 'शब्द'। प्रबन्ध गान में जो शब्दों का प्रयोग किया जाता था वे 'पद' कहलाते थे। दूसरे शब्दों में नायक के शौर्य और गुणों का वर्णन करना 'पद' अंग कहलाता था।

5.3.3.4 तेनक :–

इस अंग में 'ओम् तत् सत्' , 'तत्वमसि' और 'तेन–तेन' जैसे मंगल वाक्यों का प्रयोग किया जाता था।

5.3.3.5 पाट :–

ताल के बोलों का जब रूद्र वीणा, शंख और कुछ विभिन्न प्रकार के ढोलों की ध्वनि के साथ उच्चारण किया जाता था, तब उसे 'पाट' कहा जाता था।

5.3.3.6 ताल :–

जैसा कि विदित ही है कि समय के माप को 'ताल' कहा जाता है। अतः प्रत्येक प्रबन्ध का, एक अंग ताल भी था।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 प्रबन्ध से आप क्या समझते हैं ?

प्र0.2 शारंगदेव ने प्रबन्ध का वर्गीकरण कितने भागों में किया ?

5.4 अंगों के आधार पर प्रबन्धों का वर्गीकरण :–

अंगों के आधार पर प्रबन्धों को निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया गया था ––

5.4.1 मेदिनी जाति :–

इस जाति के प्रबन्धों में सम्पूर्ण छः अंगों का होना आवश्यक माना जाता था।

5.4.2 आनन्दिनी जाति :–

इस जाति के प्रबन्धों में पांच अंग रहते थे।

5.4.3 दीपिनी जाति :–

इस जाति के प्रबन्धों में प्रथम चार अंग रहते थे।

5.4.4 भाविनी जाति :–

इस जाति के प्रबन्धों में ऊपर के तीन अंग अर्थात् प्रथम तीन अंग होते थे।

5.4.5 तारावली जाति :–

इस जाति के प्रबन्धों में केवल दो अंग ही रहते थे अर्थात् प्रथम दो अंगों का प्रयोग ही इस जाति के प्रबन्धों में होता था।

इन सभी प्रबन्धों की एक विशेष बात यह थी कि इन सभी जाति के प्रबन्धों में ताल अंग का होना आवश्यक होता था।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 अंगों के आधार पर प्रबन्धों को कितने भागों में वर्गीकृत किया गया है ?

5.5 प्रबन्ध की धातु :–

अंगों की तरह प्रबन्ध की चार धातु बताई गई हैं –– उदग्राह, ध्रुव, मेलापक तथा आभोग।

5.5.1 उद्ग्राह :–

प्राचीन प्रबन्धों का अध्ययन एवं विश्लेषण करने से यह पता चलता है कि उदग्राह और ध्रुव किसी सांगीतिक रचना के अनिवार्य अंग थे। ध्रुव को आधुनिक दृष्टि से स्थाई के समान समझा जा सकता है। आधुनिक समय में यदि हम देखें तो स्थाई से पूर्व कुछ नहीं गाया जाता। लेकिन प्राचीन समय में प्रबन्ध गान में ध्रुव से पहले एक बार उद्ग्राह गाया जाता था। आज समय परिवर्तन के साथ प्रबन्ध की यह धातु या भाग समाप्त हो गया है।

5.5.2 ध्रुव :–

जिस प्रकार आधुनिक प्रबन्धों में स्थाई अनिवार्य होती है उसी प्रकार प्राचीन प्रबन्धों में ध्रुव धातु की अनिवार्यता रहती थी। इसी अनिवार्यता के कारण इसका नाम 'ध्रुव' पड़ा अर्थात् 'अचल' रहने वाली धातु।

5.5.3 मेलापक :–

कभी–कभी उद्ग्राह और ध्रुव के मध्य भाग में 'अन्तर' या 'अन्तरा' नामक एक पाँचवीं धातु और होती थी। इस प्रकार प्रबन्ध का आरम्भिक भाग 'उद्ग्राह' था। इस पहले भाग या धातु को तृतीय धातु 'ध्रुव' से मिलाने वाला भाग या धातु होने के कारण इस द्वितीय भाग या धातु को 'मेलापक' कहा गया।

5.5.4 आभोग :–

प्रबन्ध की पूर्ति करने वाले भाग को 'आभोग' धातु कहा जाता था।

धातुओं की दृष्टि से भी प्रबन्ध चर्तुधातु, त्रिधातु और द्विधातु तीन प्रकार के थे। इनमें उद्ग्राह और ध्रुव अनिवार्य थे। त्रीधातु प्रबन्ध में मेलापक नही होता था। द्विधातु प्रबन्ध में उद्ग्राह और ध्रुव होते हैं या ध्रुव और आभोग अथवा उद्ग्राह और आभोग होते हैं। प्रबन्ध की रचना में कम से कम दो धातुओं का होना आवश्यक था।

आज भी हमें प्राचीन प्रबन्धों का परिवर्तित रूप देखने को मिलता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 प्रबन्ध की धातु मेलापक और आभोग से आप क्या समझते हैं ?

5.6 ध्रुपद :–

"ध्रुपद" भारतीय संगीत की प्राचीन गायन शैली है। ध्रुपद के उद्गम के विषय में कुछ निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि कब और किसने इस गायन शैली को जन्म दिया। संगीत विद्वानों ने ध्रुपद के उद्गम के बारे में अपने भिन्न–भिन्न मत दिए हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि यह उत्तर वैदिक काल की गान्धर्व शैली है। कुछ विद्वान ध्रुपद का जन्म "ध्रुवा" के द्वारा मानते हैं। भरत के नाट्य शास्त्र में ध्रुवा नामक गीत का उल्लेख मिलता है कि ध्रुवा एक प्रकार का विशेष नियमबद्ध गीत होता था जिससे विदित होता है कि हो सकता है कि "ध्रुवा" गीत में पाए जाने वाले पद को ही "ध्रुपद" कहा जाता रहा हो। कुछ का विचार है कि शारंगदेव द्वारा कथित शुद्ध गीति ही "ध्रुपद"कहलाती थी।

ध्रुपद गायकी का आविष्कारक कौन था इसके विषय में निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता परन्तु यह तो निर्विवाद है कि 15वीं शताब्दी में ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर के समय में धुपद शैली की परम्परा का विकास हुआ। इन्होंने विपदाकाल में अर्थात् विदेशी आक्रमण काल में इस कला की रक्षा की और इसे एक विकसित रूप प्रदान किया। राजा मानसिंह ध्रुपद के विशेषज्ञ थे। इन्होंने स्वयं भी कई ध्रुपद रचे। इनके समय में ध्रुपद गायकी की बड़ी उन्नति हुई और ध्रुपदों की रचना की गई। मानसिंह तोमर ने ध्रुपद गायकों को प्रोत्साहन देकर इस गायन शैली का अच्छा प्रचार करवाया। बैजू, गोपाल लाल, बक्शु और स्वयं राजा मानसिंह ने इस गायन शैली में परिवर्तन किए। गोपाल लाल ने नवीन रूपों की रचना की, राजा मानसिंह ने भावों और उसकी अभिव्यक्ति में नवीनता स्थापित की, बक्शु ने तुकों की व्यवस्था में परिवर्तन किया। इससे यह स्पष्ट है कि उस समय ध्रुपद गायन ज़ोरों पर था और उस समय बक्शु, भगवान, गोपाल नायक आदि प्रसिद्ध कलावन्त थे।

सम्राट अकबर के समय में अकबर के सभी दरबारी गायक ध्रुपद ही गाते थे। बाबा हरिदास, तानसेन, शेख बैजू ,सूरदास आदि ध्रुपद के सुप्रसिद्ध कलावन्त थे। इनके रचे ध्रुपद आज भी सुनने को मिलते हैं। मोहम्मद शाह रंगीले के दरबारी गायक अदारंग–सदारंग ध्रुपद ही गाते थे और उन्होंने अपने वंशजों को ध्रुपद गायन ही सिखाया।

ध्रुपद गायकी का विषय प्रायः भक्ति, ईश्वर स्तुति, राजाओं की प्रशंसा, मंगल उत्सवों का वर्णन, धर्मत्व, पुराण विषय, संगीत शास्त्रों की श्रुति, स्वर–ग्राम तथा मूर्च्छना आदि के लक्षण वर्णन आदि होते हैं। यह गायकी वीर रस द्वारा शक्ति का संचार कर उत्साह बढ़ाती है और भक्ति रस द्वारा ईश्वर के समीप ले जाती है और शान्त रस के द्वारा शान्ती का संचार करती है।

ध्रुपद हिन्दुस्तान का एक गम्भीर एवं ज़ोरदार गायन माना जाता है। कुछ लोगों का विचार है कि ध्रुपद एक गम्भीर गायन है। ध्रुपद गायन इतना मरदाना है कि स्त्रियों की कोमल आवाज़ के लिए यह गायन उपयुक्त नही माना जाता लेकिन फिर भी स्त्रियाँ इस गायन को करती व सीखती हैं। ध्रुपद एक कठिन गायकी है अतः इसके लिए उत्तम स्वर ज्ञान, अच्छा स्वर अभ्यास, लय का ज्ञान व राग का ज्ञान होना आवश्यक है। गीत का यह प्रकार मध्ययुग से आज तक बराबर प्रचलित है। इसमें स्वर, लय तथा साहित्य इन तीनों अंगों का समुचित समावेश है।

5.6.1 ध्रुपद में राग की शुद्धता :–

ध्रुपद गायन में राग की शुद्धता का विषेश महत्व होता है। राग के ठीक स्वरूप इत्यादि बातों का विशेष ध्यान रखा जाता है। जैसे कि यदि भैरवी में ही कोई ध्रुपद बंधा होगा तो उस ध्रुपद में सभी कोमल स्वर ही लगेंगे क्योंकि भैरवी राग का शुद्ध स्वरूप नही है। ध्रुपद के गीत अधिकतर हिन्दी, उर्दू व बृजभाषा में होते हैं। ध्रुपद में तानों का प्रयोग नही किया जाता अपितु गीत को ही दुगुन, चौगुन व आठगुन लय में गाया जाता है और गमक का अधिक काम दिखाया जाता है। इसलिए ध्रुपद गाने के लिए गला पूरी तरह तैयार होना चाहिए क्यों कि गले की तैयारी के बिना गमक लेना कठिन है। इस गायकी के लिए गायक के रोम–रोम में लय समाई होनी चाहिए।

5.6.2 ध्रुपद में ताल :–

ध्रुपद गायकी में चौताल, सूलताल, झंपा, तीव्रा, रूद्र, ब्रहम, लक्ष्मी आदि तालों का प्रयोग पखावज और तबला आदि वाद्यों द्वारा किया जाता है। पखावज इस गायकी के लिए उपयुक्त ताल वाद्य है। क्योंकि पखावज गम्भीर वाद्य होने के कारण इस गम्भीर प्रकृति की गायकी के लिए अधिक उपयुक्त है। तबले पर यह बोल खुले हाथों द्वारा बजाए जाते हैं। जिस मुक्त रूप से यह ताल बजाए जाते हैं, उसे ''थपिया बाज'' कहते हैं।

इस प्रकार धुपद एक मधुर, कठिन तथा गंभीर गायन शैली है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 4

प्र0.1 ध्रुपद में राग की शुद्धता का वर्णन कीजिए।

प्र0.2 ध्रुपद में कौन–कौन से ताल प्रयोग होते हैं ?

5.7 धमार :–

यह ध्रुपद शैली से गाया जाने वाले गीत का एक प्रकार है। यह चौदह मात्रा के धमार ताल में गाया जाता है। राधा और कृष्ण इस गीत के नायक होते हैं और होली के अवसर पर अबीर–गुलाल और कंचन की पिचकारियाँ तथा रंग से सनी चुनरियों का रंगारंग वर्णन इसमें होता है। फाग से सम्बन्धित होने के कारण इसे पक्की होरी भी कहते हैं। इसी विषयवस्तु को लेकर होरी नामक अन्य गीतों का भी प्रचलन है। जो दीपचन्दी और त्रीताल में गाए जाते हैं। प्राचीन काल के चरचरी नामक प्रबन्ध इसी प्रकार के थे। वे चरचरी नामक ताल में निबद्ध होते थे तथा होली जैसे प्रसंगो पर गाए जाते थे। चरचरी को आज चाचर या दीपचन्दी कहा जाता है।

धमार गीत ध्रुपद तथा ख्याल के बीच वाली स्थिति के निदर्शक है। इनकी रचना ख्याल के समान दो तुक वाली होती है, परन्तु गायन शैली ध्रुपद के समान होती है। इसके विषयों में ध्रुपद जैसी विविधता एवं अनेकरूपता नही रहती। ध्रुपद में सभी रस भावों की द्योतक कविताएं होती हैं परन्तु धमार में केवल श्रृंगार का ही रंगीन वर्णन होता है। ध्रुवपद शैली का उदेश्य शब्द तथा स्वर के माध्यम से गम्भीर वातावरण की सृष्टि करना है। इसलिए इसकी यर्थाथ शैली आलाप प्रधान है। धमार का उदेश्य गम्भीरता से हट कर रंगीन वातावरण पैदा करना है। इसलिए इसकी शैली लय प्रधान है। लयकारी का यह कार्य ''उपज अंग'' कहलाता है। इसके आधार पर ताल–परणों के आधार पर गीत के वर्णों को लेकर लय बाँट का अंग दिखाया जाता है। जैसे उदाहरण के लिए राग झिंझोटी का ''होरी खेलत नंदलाल री देखो'' धमार का उपज अंग इस प्रकार होगा :– हो, होरी, खेलत, होरी खेलत, नंद, लाल नंद, नंदलाल, री, देखो इत्यादि। इसके अन्तर्गत स्वरों का विस्तार विविध आलापों के माध्यम से किया जाता है। दोनों गीतों की संगति मृदंग अथवा पखावज के खुले बाज द्वारा की जाती है। दोनों की शैली मिलती–जुलती होने के कारण इनकी परम्परा हमेशा एक घराने में ही चलती रही है। इस शताब्दी के सर्वश्रेठ धमार गायकों में रामपुर घराने के उस्ताद वज़ीर खां एवं मुहम्मद अली खां तथा जयपुर घराने के बहराम खां एवं हैदर बक्श के नाम लिए जा सकते हैं। ख्याल गायकी के आगरा घराने में भी धमार कुछ अंशों में सुरक्षित है। स्वयं विलायत हुसैन खां तथा फैयाज़ खां इसके जाने माने कलाकार माने जाते हैं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 5

प्र0.1 धमार के विषय में आप क्या जानते हैं ?

5.8 सारांश :–

हमारे भारतीय संगीत में गायन–वादन की अनेक शैलियां प्रचलित हैं। जो कि अपनी–अपनी विशेषता रखतीं हैं। इनमें से सभी गायन शैलियां शास्त्रीय रूप में किसी दूसरी शैली से कम नहीं। हर प्रकार की गायन शैली की अपनी एक अलग शास्त्रीयता है। जैसे प्राचीन गायन शैली प्रबन्ध का एक अलग रूप का हमें पता चलता है, वहीं दूसरी और ध्रुपद गायन शैली एक कठिन गायन शैली होते हुए भी उसकी लोकप्रियता कितनी रही और आज उसकी क्या स्थिति है। इसी प्रकार धमार एक शास्त्रीय शैली होते हुए भी कितनी लोक शैली के समीप है। इन सभी गायन शैलियों का संगीत के क्षेत्र में अपना एक अनूठा स्थान है।

5.9 शब्दकोष :–

1. वैशिष्टय – विशेष
2. शौर्य – वीरता
3. विदित – ज्ञान, पता होना
4. अचल – जो चलायमान न हो, एक जगह टिका हुआ

5.10 स्वयं परीक्षा प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 प्रबन्ध से आप क्या समझते हैं ?

उ0. **प्रबन्ध :–**

शास्त्रों का अध्ययन करने से पता चलता है कि प्राचीन काल में गायन के 'अनिबद्ध' और 'निबद्ध' दो भेद बताए गए हैं। जिसमें अनिबद्ध का अर्थ है –– 'ताल रहित' अर्थात् ऐसा गायन जो ताल से मुक्त हो, कहने का तात्पर्य यह है कि वह गायन जो ताल में बंधा हुआ न हो। जैसा कि आलाप की तरह का गायन जिसे मुक्त रूप से गाया जाता है , वह 'अनिबद्ध गान' कहलाता है। इसके विपरीत जो गायन ताल में बंधा हुआ होता है उसे 'निबद्ध गान' कहकर पुकारा जाता है। पद, स्वर और ताल ये तीन तत्व ऐसे हैं जिनका आपस में बंधा हुआ होना निबद्ध गान के लिए अनिवार्य है। शास्त्रों में निबद्ध गान के तीन प्रकार बताए गए हैं और ये तीन प्रकार हैं –– प्रबन्ध, वस्तु और रूपक। इनमें प्रबन्ध को सबसे अधिक प्रचलित माना गया है।

प्रबन्ध का अर्थ :–

प्रबन्ध का शाब्दिक अर्थ है –– 'प्र + बन्ध' या 'प्रकृष्ट रूपेण बन्धः' अर्थात् वह गेय रचना, जिसमें अंगों को भली–भान्ति, सुन्दर रूप से बाँधा गया हो, उसे 'प्रबन्ध' कहा जाता है। इस प्रकार प्रबन्ध में अंगों का एक अंग

में बँधा होना ही इसका मुख्य अर्थ है। आधुनिक समय की 'बंदिश' या जिसे हम 'चीज़' कहकर भी पुकारते हैं, वह इसी के अन्तर्गत् आती है। स्पष्ट रूप से कहा जाए तो स्वर, ताल और शब्द से युक्त रचना ही 'प्रबन्ध' कहलाती है। प्रबन्ध शब्द अति प्राचीन है। जिस प्रकार संगीत की परिभाषाएं, अनेक राग, ताल, वाद्यों आदि की परिभाषाएं अति प्राचीन होकर भी आज अप्रचलित हो गई हैं, उसी प्रकार गायन का यह भेद 'प्रबन्ध' भी आज अप्रचलित हो गया है।

प्र0.2 शारंगदेव ने प्रबन्ध का वर्गीकरण कितने भागों में किया ?

उ0. शारंगदेव ने अपने प्रबन्धों का वर्गीकरण तीन भागों में किया है। ये तीन भाग हैं ———

1. सूड प्रबन्ध
2. विप्रकीर्ण प्रबन्ध
3. आलिक्रम प्रबन्ध

सूड प्रबन्ध :–

इस प्रबन्ध के आगे दो और भेद बताए गए हैं। 'शुद्ध सूड' और 'सालग सूड'। सूड प्रबन्ध में पूर्व में कही गई बातों से सम्बन्ध अनिवार्य रूप से होता है अर्थात् पूर्व में कही गई बातों का गान होता है।

विप्रकीर्ण प्रबन्ध :–

सूड प्रबन्ध के विपरीत विप्रकीर्ण प्रबन्ध पूर्व में कही गई बातों के सम्बन्ध से रहित होता है। ये प्रबन्ध स्वतंत्र रूप से गाए जाने का वैशिष्ट्य रखते हैं।

आलिक्रम प्रबन्ध :–

इस प्रबन्ध की स्थिति सूड प्रबन्ध और आलिक्रम प्रबन्ध के बीच की स्थिति मानी जाती है।

प्र0.3 अंगों के आधार पर प्रबन्धों को कितने भागों में वर्गीकृत किया गया है ?

उ0. **अंगों के आधार पर प्रबन्धों का वर्गीकरण :–**

अंगों के आधार पर प्रबन्धों को निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया गया था ——

मेदिनी जाति :–

इस जाति के प्रबन्धों में सम्पूर्ण छः अंगों का होना आवश्यक माना जाता था।

आनन्दिनी जाति :–

इस जाति के प्रबन्धों में पांच अंग रहते थे।

दीपिनी जाति :–

इस जाति के प्रबन्धों में प्रथम चार अंग रहते थे।

भाविनी जाति :–

इस जाति के प्रबन्धों में ऊपर के तीन अंग अर्थात् प्रथम तीन अंग होते थे।

तारावली जाति :–

इस जाति के प्रबन्धों में केवल दो अंग ही रहते थे अर्थात् प्रथम दो अंगों का प्रयोग ही इस जाति के प्रबन्धों में होता था।

प्र0.4 प्रबन्ध की धातु – मेलापक और आभोग से आप क्या समझते हैं ?

उ0. **मेलापक :–**

कभी–कभी उद्ग्राह और ध्रुव के मध्य भाग में 'अन्तर' या 'अन्तरा' नामक एक पाँचवीं धातु और होती थी। इस प्रकार प्रबन्ध का आरम्भिक भाग 'उद्ग्राह' था। इस पहले भाग या धातु को तृतीय धातु 'ध्रुव' से मिलाने वाला भाग या धातु होने के कारण इस द्वितीय भाग या धातु को 'मेलापक' कहा गया।

आभोग :–

प्रबन्ध की पूर्ति करने वाले भाग को 'आभोग' धातु कहा जाता था।

प्र0.5 ध्रुपद में राग की शुद्धता का वर्णन कीजिए।

उ0. **ध्रुपद में राग की शुद्धता :–**

ध्रुपद गायन में राग की शुद्धता का विषेश महत्व होता है। राग के ठीक स्वरूप इत्यादि बातों का विशेष ध्यान रखा जाता है। जैसे कि यदि भैरवी में ही कोई ध्रुपद बंधा होगा तो उस ध्रुपद में सभी कोमल स्वर ही लगेंगे क्योंकि भैरवी राग का शुद्ध स्वरूप नही है। ध्रुपद के गीत अधिकतर हिन्दी, उर्दू व बृजभाषा में होते हैं। ध्रुपद में तानों का प्रयोग नही किया जाता अपितु गीत को ही दुगुन, चौगुन व आठगुन लय में गाया जाता है और गमक का अधिक काम दिखाया जाता है। इसलिए ध्रुपद गाने के लिए गला पूरी तरह तैयार होना चाहिए क्यों कि गले की तैयारी के बिना गमक लेना कठिन है। इस गायकी के लिए गायक के रोम–रोम में लय समाई होनी चाहिए।

प्र0.6 ध्रुपद में कौन–कौन से ताल प्रयोग होते हैं ?

उ0. **ध्रुपद में प्रयोग होने वाले ताल :–**

ध्रुपद गायकी में चौताल, सूलताल, झंपा, तीव्रा, रूद्र, ब्रहम, लक्ष्मी आदि तालों का प्रयोग पखावज और तबला आदि वाद्यों द्वारा किया जाता है। पखावज इस गायकी के लिए उपयुक्त ताल वाद्य है। क्योंकि पखावज गम्भीर वाद्य होने के कारण इस गम्भीर प्रकृति की गायकी के लिए अधिक उपयुक्त है। तबले पर यह बोल खुले हाथों द्वारा बजाए जाते हैं। जिस मुक्त रूप से यह ताल बजाए जाते हैं, उसे ''थपिया बाज'' कहते हैं।

प्र0.7 धमार के विषय में आप क्या जानते हैं ?

उ0. **धमार :–**

यह ध्रुपद शैली से गाया जाने वाले गीत का एक प्रकार है। यह चौदह मात्रा के धमार ताल में गाया जाता है। राधा और कृष्ण इस गीत के नायक होते हैं और होली के अवसर पर अबीर–गुलाल और कंचन की पिचकारियाँ तथा रंग से सनी चुनरियों का रंगारंग वर्णन इसमें होता है। फाग से सम्बन्धित होने के कारण इसे पक्की होरी भी कहते हैं। इसी विषयवस्तु को लेकर होरी नामक अन्य गीतों का भी प्रचलन है। जो दीपचन्दी और त्रीताल में गाए जाते हैं। प्राचीन काल के चरचरी नामक प्रबन्ध इसी प्रकार के थे। वे चरचरी नामक ताल में निबद्ध होते थे तथा होली जैसे प्रसंगो पर गाए जाते थे। चरचरी को आज चाचर या दीपचन्दी कहा जाता है।

धमार गीत ध्रुपद तथा ख्याल के बीच वाली स्थिति के निदर्शक है। इनकी रचना ख्याल के समान दो तुक वाली होती है, परन्तु गायन शैली ध्रुपद के समान होती है। इसके विषयों में ध्रुपद जैसी विविधता एवं अनेकरूपता नही रहती। ध्रुपद में सभी रस भावों की द्योतक कविताएं होती हैं परन्तु धमार में केवल श्रृंगार का ही रंगीन वर्णन होता है। ध्रुवपद शैली का उदेश्य शब्द तथा स्वर के माध्यम से गम्भीर वातावरण की सृष्टि करना है। इसलिए इसकी यर्थाथ शैली आलाप प्रधान है। धमार का उदेश्य गम्भीरता से हट कर रंगीन वातावरण पैदा करना है। इसलिए इसकी शैली लय प्रधान है। लयकारी का यह कार्य ''उपज अंग'' कहलाता है। इसके आधार पर ताल–परणों के आधार पर गीत के वर्णों को लेकर लय बाँट का अंग दिखाया जाता है। जैसे उदाहरण के लिए राग झिंझोटी का ''होरी खेलत नंदलाल री देखो'' धमार का उपज अंग इस प्रकार होगा :– हो, होरी, खेलत, होरी खेलत, नंद, लाल नंद, नंदलाल, री, देखो इत्यादि। इसके अन्तर्गत स्वरों का विस्तार विविध आलापों के माध्यम से किया जाता है। दोनों गीतों की संगति मृदंग अथवा पखावज के खुले बाज द्वारा की जाती है। दोनों की शैली मिलती–जुलती होने के कारण इनकी परम्परा हमेशा एक घराने में ही चलती रही है। इस शताब्दी के सर्वश्रेठ धमार गायकों में रामपुर घराने के उस्ताद वज़ीर खां एवं मुहम्मद अली खां तथा जयपुर घराने के बहराम खां एवं हैदर बक्श के नाम लिए जा सकते हैं। ख्याल गायकी के आगरा घराने में भी धमार कुछ अंशों में सुरक्षित है। स्वयं विलायत हुसैन खां तथा फैयाज़ खां इसके जाने माने कलाकार माने जाते हैं।

5.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. भारतीय संगीत (एक ऐतिहासिक विश्लेषण), प्रो0 स्वतंत्र शर्मा, अभिनव पब्लिशिंग हॉउस, इलाहाबाद, 2014।
2. संगीत विशारद, बसंत, संगीत कार्यालय हाथरस, उ. प्र., जनवरी 1997, 21वाँ संस्करण।
3. संगीत शिक्षा, श्रीमती विजय अरोड़ा, ए.पी. पब्लिशर, जालन्धर।
4. संगीत निबन्ध माला

5.12 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 ध्रुपद गायन शैली के विषय में विस्तार से समझाइए।

प्र0.2 प्रबन्ध गायन शैली से आप क्या समझते हैं ?

:–:–:–:–:–:–:–:

LESSON - 6

Types of musical compositions :

Khayal, Trana, Chaturang, Trivat, Maseetkhani and Razakhani Gat

Structure:

6.1 भूमिका

6.2 उदेश्य

6.3 ख्याल

6.3.1 बड़ा ख्याल

6.3.2 छोटा ख्याल

6.4 तराना

6.5 चतुरंग

6.6 त्रीवट

6.7 मसीतखानी गत

6.8 रज़ाखानी गत

6.9 सारांश

6.10 शब्दकोष

6.11 स्वयं परीक्षा प्रश्न–उत्तर

6.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.13 महत्वपूर्ण प्रश्न

6.1 भूमिका :–

भारतीय संगीत में कई प्रकार की गायन –वादन शैलियां प्रचलित हैं। जिनका अपना–अपना एक अलग स्थान है। ये गायन–वादन शैलियां हमारे संगीत को और अधिक आनन्ददायक बनाती हैं। हर शैली की अपनी एक अलग गायन–वादन विधा है। जो कि स्वर, लय, ताल व बाज में अपना अलग स्थान रखतीं हैं।

6.2 उदेश्य :–

इस पाठ का उदेश्य अलग–अलग गायन व वादन शैलियों के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना है। जैसे इनका इतिहास क्या रहा है और ये गायन शैलियां कब प्रचार में आईं और कैसे इनका विकास हुआ। इन शैलियों का हमारे संगीत में क्या स्थान है।

6.3 ख्याल या ख्याल का परिचय :–

"ख्याल" एक फारसी शब्द है जिसका अर्थ है कल्पना, विचार, सरजना इत्यादि। जब कोई गायक किसी राग में बंधे हुए गीत को गाकर अपनी कल्पना और बुद्धि के अनुसार, राग के नियमों को ध्यान में रखते हुए, उसको आलाप तथा तान द्वारा भिन्न–भिन्न अलंकारों से सुशोभित करता है, तब उस गायकी को ख्याल के नाम से सम्बोधित किया जाता है। ख्याल भी एक तरह का गायन है। आजकल यह हिन्दुस्तान का एक ऊँचे दर्जे का गायन माना जाता है।

ख्याल शैली का आविष्कार किसने किया इसके विषय में विभिन्न मत हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि ख्याल का आविष्कार 16वीं शताब्दी के जौनपुर के सुल्तान हुसैन शर्की ने किया। इसके विपरीत कुछ विद्वानों का कहना है कि ख्याल का आविष्कार हुसैन शर्की ने नही किया अपितु वह केवल ख्याल का प्रेमी था तथा उसके समय में ख्याल का प्रचार अच्छा हुआ। श्री भातखण्डे जी का कहना है कि ख्याल की तरह गाने का प्रचलन पहले से ही समाज में चला आ रहा था परन्तु यह समाज में मान्य नहीं था। आगे चल कर सुलतान हुसैन शर्की ने इस गाने को पसन्द किया तथा उसने गायकों को प्रोत्साहन दिया और इस तरह उसका प्रचार बढ गया। इससे यह स्पष्ट होता है कि हुसैन शर्की ख्याल के आविष्कारक नही अपितु प्रचारक थे।

दूसरे मतानुसार, अमीर खुसरो ख्याल के आविष्कारक थे। ख्याल फारसी भाषा का शब्द है। अतः सम्भव है कि उन्होंने पहले से चली आ रही इस गायन शैली का नाम ख्याल रख दिया हो परन्तु यह कहना ठीक नही कि अमीर खुसरो ख्याल के आविष्कारक हैं परन्तु अमीर खुसरो ने कई ख्यालों की रचना अवश्य की है।

ख्याल गायन के दो प्रकार प्रचलित हैं। एक कलावती ख्याल और दूसरा कव्वाली ख्याल। विद्वानों के मतानुसार कव्वाली ख्याल का आविष्कार सबसे पहले 14वीं सदी में अलाऊदीन खिलजी के दरबार के प्रसिद्ध संगीतज्ञ, कवि और राजमन्त्री हज़रत अमीर खुसरो ने किया। अमीर खुसरो ने ख्याल ही नहीं अपितु कई नए राग, गीत प्रकार, वाद्यों और तालों को भी इजाद किया। 'कलावती या कलावंती' ख्याल का आविष्कार सबसे पहले 15वीं सदी में जौनपुर के बादशाह सुल्तान हुसैन शर्की (1458–1480) ने किया था। उन्होंने ख्याल ही नही अपितु कई नए रागों को भी इजाद किया ।

प्राचीन काल में ख्याल गायन का स्थान ऊँचा नही था। सभ्य समाज में भी ख्याल गायन का प्रवेश निषेद्ध माना जाता था। सभ्य समाज में बड़े–बड़े गायक ध्रुपद को गाते थे क्योंकि प्राचीन समय में ध्रुपद गायन का स्तर ऊँचा था और ख्याल गायन को नीचा स्तर प्राप्त था। उस समय न तो ख्याल गायन लोकप्रिय था और न ही उसका अधिक प्रचार था। यद्यपि ख्याल गायन का आविष्कार 14वीं और 15वीं शताब्दी में हो चुका था तब भी न तो 17वीं शताब्दी तक उसका प्रचार हुआ था और न ही वह लोकप्रिय था। ख्याल गायन का अधिकतर प्रचार 18वीं शताब्दी के आरम्भ में मुगल बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले के समय में आरम्भ हुआ। मुहम्मद शाह के दरबार में सदारंग और अदारंग दो प्रसिद्ध गायक थे जिन्होंने ख्याल गायन की बहुत उन्नति की। उन्होंने हज़ारों ख्याल रचे और अपने शिष्यों को सिखाए। मुहम्मद शाह के समय से ही ख्याल गायन भारत में ज़ोरों से प्रचलित और लोकप्रिय हुआ। उनके बाद उनके शिष्यों ने ख्याल गायन का प्रचार किया। आज समाज में ध्रुपद को ही नही अपितु ख्याल गायन को भी ऊँचा स्थान प्राप्त है। यहाँ तक की ख्याल गायन ध्रुपद से अधिक लोकप्रिय है।

गीत रचना तथा गायन शैली दोनों दृष्टि से ख्याल का अपना स्थान है। इसका गीत छोटा और केवल दो या तीन पंक्तियों का होता है परन्तु इसको गायक अपनी कल्पना से इतना अधिक सजा देता है कि यह गीत नवीन सौन्दर्य के साथ खिल उठता है। गायक की कल्पना की उड़ान जितनी ऊँची होगी उतना ही ख्याल पुराना होते हुए भी नवीन बन जाता है। किसी राग के भीतर सुन्दर–स्वर–विन्यास करना कलाकार की प्रतिभा पर निर्भर करता है। ख्याल के चरण को क्रमशः स्थाई और अन्तरा कहते हैं। जो ख्याल विलम्बित लय में बांधे जाते हैं उन्हें 'विलम्बित ख्याल' और जो द्रुत लय में बांधे जाते हैं उन्हें 'द्रुत ख्याल' कहते हैं। ख्याल गायन में स्वरों का उतना महत्व नही होता जितना स्वरों की सजावट का। गायक राग के अनुकूल विभिन्न स्वर–अलंकारों, गमकों तथा तानों से गीत को सजीव एवं सम्प्राण बना देता है।

ख्याल गाने से पूर्व राग वाचक शब्दों का थोड़ा सा आलाप किया जाता है और बंदिश गाने के बाद एक–दो स्वर लेकर बढ़त की जाती है। बढ़त में कण, मींड, आलाप, शब्दालाप, बहलावा, गमक आदि का प्रयोग होता है। तानों और बोलतानों के माध्यम से व्याकुल भावनाओं की अभिव्यक्ति की जाती है। तानों के अंत में सुन्दर तिहाई लगाते हैं।

ख्याल गायन हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के सभी रागों में गाया जाता है। एकताल, तीनताल, आड़ा चौताल, झूमरा, तिलवाड़ा आदि तालों का प्रयोग ख्याल गायन शैली में होता है। ताल के लिए तबले की संगति की जाती

है। ख्याल गायन में श्रृंगार रस प्रधान है। इसकी भाषा साधारण होती है तब भी यह सुन्दर, मधुर व मनोहर गायन है और आजकल यही लोकप्रिय भी है। इसके गीतों की भाषा हिन्दी, उर्दू और ब्रज होती है। ख्याल दो प्रकार का होता है :–

6.3.1 बड़ा ख्याल :–

बड़ा ख्याल अधिकतर एकताल, आड़ा चौताल, झूमरा, तिलवाड़ा आदि तालों में गाया जाता है। इसके स्थाई और अन्तरा दो भाग होते हैं। बड़े ख्याल की बंदिश ध्रुपद के समान होती है। इसकी लय विलम्बित होती है। कुछ लोग अति विलम्बित लय में भी ख्याल गाते हैं। इस गायन शैली में स्वर–आलाप, बोल–आलाप, तानों व गमकों आदि के साथ गायन किया जाता है। बड़े ख्याल की प्रकृति गम्भीर होती है और इसमें श्रृंगार, शान्त और करूण रस की प्रधानता रहती है।

6.3.2 छोटा ख्याल :–

छोटा ख्याल अधिकतर तीन ताल में गाया जाता है। यह चंचल प्रकृति की सुन्दर रचना होती है। इसकी गति में चंचलता पाई जाती है। इसके स्थाई व अन्तरा दो भाग होते है। इसकी लय द्रुत होती है लेकिन कुछ गायक मध्य लय में गाकर चौगुन की तानें लेते हैं और कुछ द्रुत लय में गाकर अतिद्रुत लय में ताने लेते हैं। बड़े ख्याल के बाद उसी राग का छोटा ख्याल गाया जाता है। इसमें भी तानों, बोलतानों इत्यादि का प्रयोग किया जाता है।

ख्याल शैली शास्त्रीय संगीत की सर्वाधिक मानी हुई शैली है। इसके विभिन्न घराने बने हैं जैसे – ग्वालियर घराने में नत्थन पीर बक्श, हद्दू खां, हस्सु खां, रहमत खां, निसार हुसैन खां, बझे बुआ, बाल कृष्ण बुआ, शंकर राव पंडित, पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर तथा ओंकार नाथ ठाकुर इत्यादि प्रसिद्ध गायक हुए। इसी प्रकार दिल्ली घराने में तानरस खां, अली बक्श, फतेह अली आदि श्रेष्ठ ख्याल गायक हुए। आगरा घराने के स्व. फैयाज़ खां तथा विलायत हुसैन अपनी रंगीली गायकी के लिए प्रसिद्ध हैं। जयपुर घराने के अल्लादियां खां, भूर्जी खां, केसर बाई केरकर, मोघुबाई कुर्डीकर प्रसिद्ध गायकों में से है। इसी प्रकार किराना घराना में अब्दुल करीम खां, वहीद खां, हीरा बाई बड़ोदकर तथा भीमसेन जोशी आदि प्रसिद्ध गायकों में से हुए हैं। पटियाला घराने के गायकों में स्व. आशिक अली, इमानत अली तथा बड़े गुलाम अली खां की जोड़ी इसी घराने की शिष्य परम्परा में हैं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 ख्याल शैली से आप क्या समझते हैं ?

प्र0.2 छोटे ख्याल का वर्णन कीजिए।

6.4 तराना :–

यह भी ख्याल के प्रकार की एक गायकी है। इसमें गीत के बोल ऐसे होते हैं, जिनका कोई अर्थ नही होता, जैसे – ता ना दा रे, तदारे, ओदानी दीम, तनोम इत्यादि। तराने में भी स्थाई और अन्तरा दो भाग होते हैं। तराना सभी रागों तथा ख्याल के सभी तालों में गाया जाता है। मध्य लय के तरानों की गति धीरे–धीरे बढ़ाई जाती है और फिर अधिकतम गति पर पहुँचकर इसे समाप्त किया जाता है। तानों का प्रयोग भी इसमें होता है। तराने का मुख्य उदेश्य तैयारी, लयकारी तथा उच्चारण अभ्यास है। द्रुत लय का तराना गाने से वाणी में सफाई आती है। छोटे ख्याल के बाद तराना गाया जाता है। तराने विलम्बित लय में भी पाए जाते हैं लेकिन बहुत कम। कुछ तरानों में कहीं–कहीं तबले व पखावज के बोल भी रहते हैं। तराने की गायकी ख्याल गायन के समान ही होती है। इसमें अरबी तथा फारसी के शब्द होते हैं।

कहा जाता है कि अमीर खुसरो जब हिन्दुस्तान आए, तो यहाँ की संस्कृत भाषा को देखकर वे घबराए। क्योंकि वह अरबी भाषा के विद्वान् थे, अतः उन्होंने निरर्थक शब्द गढ़कर तरह–तरह के हिन्दुस्तानी राग गाए। वे निरर्थक शब्द ही ''तराना'' नाम से प्रसिद्ध हुए। तराना में राग, ताल और लय का ही आनन्द है, शब्दों की ओर कोई ध्यान भी नही देता। तरानों का गायन हमारे देश में मनोरंजक माना जाता है। बहादुर हुसैन खां, तानरस खां, नत्थू खां इत्यादि के तराने विशेष प्रसिद्ध हैं। तराना भी काफी लोक प्रिय गायन शैली है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली –2

प्र0.1 तराना शैली का वर्णन कीजिए।

6.5 चतुरंग

''चतुरंग'' भी ख्याल गायन की तरह एक प्रकार का गायन है। चतुरंग का अर्थ है – चार अंग। ख्याल, तराना, सरगम, त्रिवट ऐसे चार अंग जिस गीत में सम्मिलित होते हैं, उसे ''चतुरंग'' कहते हैं। चतुरंग में जो चार अंग होते हैं, उसके पहले भाग में गीत के शब्द या बोल होते हैं, दूसरे भाग में तराने के शब्द होते हैं, तीसरे भाग में सरगम तथा चौथे भाग में पखावज या तबले के बोल होते हैं। यह ख्याल के समान ही गाया जाता है किन्तु इसमें तानों का प्रयोग ख्याल की अपेक्षा कम होता है। इस प्रकार चतुरंग में चार अंग होते हैं और चार वस्तुओं के मिश्रण को ही ''चतुरंग'' कहते हैं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 चतुरंग के कितने अंग होते हैं ?

प्र0.2 चतुरंग के चार अंग कौन–कौन से हैं ?

प्र0.3 चतुरंग किस गायन शैली की तरह गाया जाता है ?

6.6 त्रीवट :–

''त्रिवट'' भी लगभग चतुरंग के समान गाई जाने वाली गायन शैली है। त्रीवट का अर्थ है –– जिसके तीन भाग हों। त्रीवट में तीन चीज़ों का प्रयोग करके इस गायकी को गाया जाता है। ये तीन चीज़ें हैं – पद या शब्द, पखावज या मृदंग के बोल तथा सरगम। इन तीनों का संगम ही 'त्रीवट' या 'तिरवट' कहलाता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 4

प्र0.1 त्रीवट के कितने भाग होते हैं ?

प्र0.2 त्रीवट को और किस नाम से जाना जाता है ?

6.7 मसीतखानी गत :–

अमीर खुसरो की वंश परम्परा के मसीत खां ने इस नवीन गत का आविष्कार किया। इस गत का नामकरण इसके आविष्कारक के नाम पर हुआ है। मसीत खां के पिता फिरोज़ खां थे। कुछ विद्वान इसे मसीतखानी गत न कहकर फिरोज़खानी गत भी कहते हैं।

मसीतखानी गतें विलम्बित लय में होती है तथा खाली के तीन मात्राओं के बाद से अर्थात् बाहरवीं मात्रा से प्रारम्भ होती है। इसके बोल इस प्रकार होते हैं – दिर, दा, दिर, दा, रा, दा, दा, रा, दिर, दा दिर दा रा दा दा रा। ये बोल मसीतखानी गत में कभी नहीं बदलते। प्रायः किसी भी विलम्बित गत को मसीतखानी गत कह दिया जाता है, किन्तु यह गलत है। मसीतखानी गत के लिए पाँच मात्रा का मुखड़ा तथा उपरोक्त क्रमानुसार बोलों का होना आवश्यक है। इसमें मींड या गमक की अधिक गुंजाइश होती है। वास्तव में फिरोज़खानी गत मसीतखानी गत से भिन्न थी। फिरोज़खानी गत चारताल में होती थी तथा पखावज के साथ बजाई जाती थी क्योंकि उस समय तक तबले का जन्म नही हुआ था। वैसे तो यह सुनने में बहुत अजीब मालूम पड़ता है कि सितार जैसे मीठे वाद्य के साथ पखावज बजता था, किन्तु इसकी सत्यता के अनेक प्रमाण हैं। धीरे–धीरे मसीतखानी गत का इतना अधिक प्रचार हुआ होगा कि फिराज़खानी गत के बोल पूर्णतया भुला दिए गए। आज मसीतखानी गत पूर्ण रूप से प्रचलित है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 5

प्र0.1 मसीतखानी गत को पहले किस नाम से जाना जाता था ?

प्र0.2 मसीतखानी गत के बोल क्या हैं ?

प्र0.3 मसीतखानी गत को और किस नाम से पुकारा जाता है ?

6.8 रज़ाखानी गत :–

गत का यह प्रकार मसीतखानी गत के बिल्कुल विपरीत मध्य और द्रुत लय में बजाया जाता है। अतः यह मसीतखानी के समान गम्भीर न होकर चंचल प्रकृति की होती है। इसमें वादक को अपनी इच्छानुसार तान अथवा तोड़े बजाने की पूरी स्वतंत्रता रहती है। इसके बोल भी मसीतखानी गत के समान पूर्व निश्चित तथा अपरिवर्तनीय नही होते वरन् आवश्यकता अनुसार विभिन्न चाल के बोल प्रयोग किए जाते हैं। जैसे– दा दिर दारा, दिर दिर दार दा आदि। रज़ाखानी गत में वादक अपनी तैयारी दिखाता है तथा गत के अंत में झाला बजाया जाता है। रज़ाखानी गत को पूर्वी बाज और मसीतखानी गत को दिल्ली अथवा पश्चिमी बाज भी कहते हैं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 6

प्र0.1 रजाखानी गत के निर्माता कौन थे ?

प्र0.2 रज़ाखानी गत के बोल क्या हैं ?

6.9 सारांश :–

हमारे भारतीय संगीत में गायन–वादन की अनेक शैलियां प्रचलित हैं। जो कि अपनी–अपनी विशेषता रखतीं हैं। इनमें से सभी गायन शैलियां शास्त्रीय रूप में किसी दूसरी शैली से कम नहीं। हर प्रकार की गायन शैली की अपनी एक अलग शास्त्रीयता है। जैसे गायन शैली ख्याल के एक अलग रूप का हमें पता चलता है, वहीं दूसरी ओर तराना, चतुरंग और त्रीवट गायन शैली एक मधुर गायन शैली है। इसी प्रकार मसीतखानी और रज़ाखानी वादन शैलियाँ वादन संगीत में आज एक अलग ही महत्व रखती हैं। इन सभी गायन शैलियों का संगीत के क्षेत्र में अपना एक अनूठा स्थान है।

6.10 शब्दकोष :–

1. सरजना – सृजन करना
2. सम्प्राण – प्राण के साथ या आत्मा सहित
3. अभिव्यक्ति – अभिव्यक्त करना, प्रकट करना
4. शब्दालाप – शब्दों के साथ आलाप करना
5. निरर्थक – अर्थ हीन

6.11 स्वयं परीक्षा प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 ख्याल शैली से आप क्या समझते हैं ?

उ0. **"ख्याल"** एक फारसी शब्द है जिसका अर्थ है कल्पना, विचार, सरजना इत्यादि। जब कोई गायक किसी राग में बंधे हुए गीत को गाकर अपनी कल्पना और बुद्धि के अनुसार, राग के नियमों को ध्यान में रखते हुए, उसको आलाप तथा तान द्वारा भिन्न–भिन्न अलंकारों से सुशोभित करता है, तब उस गायकी को ख्याल के नाम से सम्बोधित किया जाता है। ख्याल भी एक तरह का गायन है। आजकल यह हिन्दुस्तान का एक ऊँचे दर्जे का गायन माना जाता है।

ख्याल शैली का आविष्कार किसने किया इसके विषय में विभिन्न मत हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि ख्याल का आविष्कार 16वीं शताब्दी के जौनपुर के सुल्तान हुसैन शर्की ने किया। इसके विपरीत कुछ विद्वानों का कहना है कि ख्याल का आविष्कार हुसैन शर्की ने नही किया अपितु वह केवल ख्याल का प्रेमी था तथा उसके समय में ख्याल का प्रचार अच्छा हुआ। श्री भातखण्डे जी का कहना है कि ख्याल की तरह गाने का प्रचलन पहले से ही समाज में चला आ रहा था परन्तु यह समाज में मान्य नहीं था। आगे चल कर सुलतान हुसैन शर्की ने इस गाने को पसन्द किया तथा उसने गायकों को प्रोत्साहन दिया और इस तरह उसका प्रचार बढ गया। इससे यह स्पष्ट होता है कि हुसैन शर्की ख्याल के आविष्कारक नही अपितु प्रचारक थे।

दूसरे मतानुसार, अमीर खुसरो ख्याल के आविष्कारक थे। ख्याल फारसी भाषा का शब्द है। अतः सम्भव है कि उन्होंने पहले से चली आ रही इस गायन शैली का नाम ख्याल रख दिया हो परन्तु यह कहना ठीक नही कि अमीर खुसरो ख्याल के आविष्कारक हैं परन्तु अमीर खुसरो ने कई ख्यालों की रचना अवश्य की है।

ख्याल गायन के दो प्रकार प्रचलित हैं। एक कलावती ख्याल और दूसरा कव्वाली ख्याल। विद्वानों के मतानुसार कव्वाली ख्याल का आविष्कार सबसे पहले 14वीं सदी में अलाऊदीन खिलजी के दरबार के प्रसिद्ध संगीतज्ञ, कवि और राजमन्त्री हज़रत अमीर खुसरो ने किया। अमीर खुसरो ने ख्याल ही नहीं अपितु कई नए राग, गीत प्रकार, वाद्यों और तालों को भी इजाद किया। 'कलावती या कलावंती' ख्याल का आविष्कार सबसे पहले 15वीं सदी में जौनपुर के बादशाह सुल्तान हुसैन शर्की (1458–1480) ने किया था। उन्होंने ख्याल ही नही अपितु कई नए रागों को भी इजाद किया ।

प्राचीन काल में ख्याल गायन का स्थान ऊँचा नही था। सभ्य समाज में भी ख्याल गायन का प्रवेश निषेद्ध माना जाता था। सभ्य समाज में बड़े–बड़े गायक ध्रुपद को गाते थे क्योंकि प्राचीन समय में ध्रुपद गायन का स्तर ऊँचा था और ख्याल गायन को नीचा स्तर प्राप्त था। उस समय न तो ख्याल गायन लोकप्रिय था और न ही उसका अधिक प्रचार था। यद्यपि ख्याल गायन का आविष्कार 14वीं और 15वीं शताब्दी में हो चुका था तब भी न तो 17वीं शताब्दी तक उसका प्रचार हुआ था और न ही वह लोकप्रिय था। ख्याल गायन का अधिकतर प्रचार 18वीं शताब्दी के आरम्भ में मुगल बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले के समय में आरम्भ हुआ। मुहम्मद शाह के दरबार

में सदारंग और अदारंग दो प्रसिद्ध गायक थे जिन्होंने ख्याल गायन की बहुत उन्नति की। उन्होंने हज़ारों ख्याल रचे और अपने शिष्यों को सिखाए। मुहम्मद शाह के समय से ही ख्याल गायन भारत में ज़ोरों से प्रचलित और लोकप्रिय हुआ। उनके बाद उनके शिष्यों ने ख्याल गायन का प्रचार किया। आज समाज में ध्रुपद को ही नही अपितु ख्याल गायन को भी ऊँचा स्थान प्राप्त है। यहाँ तक की ख्याल गायन ध्रुपद से अधिक लोकप्रिय है।

गीत रचना तथा गायन शैली दोनों दृष्टि से ख्याल का अपना स्थान है। इसका गीत छोटा और केवल दो या तीन पंक्तियों का होता है परन्तु इसको गायक अपनी कल्पना से इतना अधिक सजा देता है कि यह गीत नवीन सौन्दर्य के साथ खिल उठता है। गायक की कल्पना की उड़ान जितनी ऊँची होगी उतना ही ख्याल पुराना होते हुए भी नवीन बन जाता है। किसी राग के भीतर सुन्दर–स्वर–विन्यास करना कलाकार की प्रतिभा पर निर्भर करता है। ख्याल के चरण को क्रमशः स्थाई और अन्तरा कहते हैं। जो ख्याल विलम्बित लय में बांधे जाते हैं उन्हें 'विलम्बित ख्याल' और जो द्रुत लय में बांधे जाते हैं उन्हें 'द्रुत ख्याल' कहते हैं। ख्याल गायन में स्वरों का उतना महत्व नही होता जितना स्वरों की सजावट का। गायक राग के अनुकूल विभिन्न स्वर–अलंकारों, गमकों तथा तानों से गीत को सजीव एवं सम्प्राण बना देता है।

ख्याल गाने से पूर्व राग वाचक शब्दों का थोड़ा सा आलाप किया जाता है और बंदिश गाने के बाद एक–दो स्वर लेकर बढ़त की जाती है। बढ़त में कण, मींड, आलाप, शब्दालाप, बहलावा, गमक आदि का प्रयोग होता है। तानों और बोलतानों के माध्यम से व्याकुल भावनाओं की अभिव्यक्ति की जाती है। तानों के अंत में सुन्दर तिहाई लगाते हैं।

ख्याल गायन हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के सभी रागों में गाया जाता है। एकताल, तीनताल, आड़ा चौताल, झूमरा, तिलवाड़ा आदि तालों का प्रयोग ख्याल गायन शैली में होता है। ताल के लिए तबले की संगति की जाती है। ख्याल गायन में श्रृंगार रस प्रधान है। इसकी भाषा साधारण होती है तब भी यह सुन्दर, मधुर व मनोहर गायन है और आजकल यही लोकप्रिय भी है। इसके गीतों की भाषा हिन्दी, उर्दू और ब्रज होती है। ख्याल दो प्रकार का होता है – बड़ा ख्याल तथा छोटा ख्याल।

प्र0.2 छोटे ख्याल का वर्णन कीजिए।

उ0. छोटा ख्याल अधिकतर तीन ताल में गाया जाता है। यह चंचल प्रकृति की सुन्दर रचना होती है। इसकी गति में चंचलता पाई जाती है। इसके स्थाई व अन्तरा दो भाग होते है। इसकी लय द्रुत होती है लेकिन कुछ गायक मध्य लय में गाकर चौगुन की तानें लेते हैं और कुछ द्रुत लय में गाकर अतिद्रुत लय में ताने लेते हैं। बड़े ख्याल के बाद उसी राग का छोटा ख्याल गाया जाता है। इसमें भी तानों, बोलतानों इत्यादि का प्रयोग किया जाता है।

ख्याल शैली शास्त्रीय संगीत की सर्वाधिक मानी हुई शैली है। इसके विभिन्न घराने बने हैं जैसे – ग्वालियर घराने में नत्थन पीर बक्श, हद्दू खां, हस्सु खां, रहमत खां, निसार हुसैन खां, बझे बुआ, बाल कृष्ण

बुआ, शंकर राव पंडित, पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर तथा ओंकार नाथ ठाकुर इत्यादि प्रसिद्ध गायक हुए। इसी प्रकार दिल्ली घराने में तानरस खां, अली बक्श, फतेह अली आदि श्रेष्ठ ख्याल गायक हुए। आगरा घराने के स्व. फैयाज़ खां तथा विलायत हुसैन अपनी रंगीली गायकी के लिए प्रसिद्ध हैं। जयपुर घराने के अल्लादियां खां, भूर्जी खां, केसर बाई केरकर, मोघुबाई कुर्डीकर प्रसिद्ध गायकों में से है। इसी प्रकार किराना घराना में अब्दुल करीम खां, वहीद खां, हीरा बाई बड़ोदकर तथा भीमसेन जोशी आदि प्रसिद्ध गायकों में से हुए हैं। पटियाला घराने के गायकों में स्व. आशिक अली, इमानत अली तथा बड़े गुलाम अली खां की जोड़ी इसी घराने की शिष्य परम्परा में हैं।

प्र0.3 तराना शैली का वर्णन कीजिए।

उ0. यह ख्याल के प्रकार की एक गायकी है। इसमें गीत के बोल ऐसे होते हैं, जिनका कोई अर्थ नही होता, जैसे – ता ना दा रे, तदारे, ओदानी दीम, तनोम इत्यादि। तराने में भी स्थाई और अन्तरा दो भाग होते हैं। तराना सभी रागों तथा ख्याल के सभी तालों में गाया जाता है। मध्य लय के तरानों की गति धीरे–धीरे बढ़ाई जाती है और फिर अधिकतम गति पर पहुँचकर इसे समाप्त किया जाता है। तानों का प्रयोग भी इसमें होता है। तराने का मुख्य उदेश्य तैयारी, लयकारी तथा उच्चारण अभ्यास है। द्रुत लय का तराना गाने से वाणी में सफाई आती है। छोटे ख्याल के बाद तराना गाया जाता है। तराने विलम्बित लय में भी पाए जाते हैं लेकिन बहुत कम। कुछ तरानों में कहीं–कहीं तबले व पखावज के बोल भी रहते हैं। तराने की गायकी ख्याल गायन के समान ही होती है। इसमें अरबी तथा फारसी के शब्द होते हैं।

कहा जाता है कि अमीर खुसरो जब हिन्दुस्तान आए, तो यहाँ की संस्कृत भाषा को देखकर वे घबराए। क्योंकि वह अरबी भाषा के विद्वान् थे, अतः उन्होंने निरर्थक शब्द गढ़कर तरह–तरह के हिन्दुस्तानी राग गाए। वे निरर्थक शब्द ही ''तराना'' नाम से प्रसिद्ध हुए। तराना में राग, ताल और लय का ही आनन्द है, शब्दों की ओर कोई ध्यान भी नही देता। तरानों का गायन हमारे देश में मनोरंजक माना जाता है। बहादुर हुसैन खां, तानरस खां, नत्थू खां इत्यादि के तराने विशेष प्रसिद्ध हैं। तराना भी काफी लोक प्रिय गायन शैली है।

प्र0.4 चतुरंग के कितने अंग होते हैं ?

उ0. चार

प्र0.5 चतुरंग के चार अंग कौन–कौन से हैं ?

उ0. चतुरंग में जो चार अंग होते हैं, उसके पहले भाग में गीत के शब्द या बोल होते हैं, दूसरे भाग में तराने के शब्द होते हैं, तीसरे भाग में सरगम तथा चौथे भाग में पखावज या तबले के बोल होते हैं।

प्र0.6 चतुरंग किस गायन शैली की तरह गाया जाता है ?

उ0. यह ख्याल के समान ही गाया जाता है किन्तु इसमें तानों का प्रयोग ख्याल की अपेक्षा कम होता है।

प्र0.7 त्रीवट के कितने भाग होते हैं ?

उ0. तीन।

प्र0.8 त्रीवट को और किस नाम से जाना जाता है ?

उ0. तिरवट।

प्र0.9 मसीतखानी गत को पहले किस नाम से जाना जाता था ?

उ0. फिराज़खानी गत

प्र0.10 मसीतखानी गत के बोल क्या हैं ?

उ0. इसके बोल इस प्रकार होते हैं – दिर, दा, दिर, दा, रा, दा, दा, रा, दिर, दा दिर दा रा दा दा रा। ये बोल मसीतखानी गत में कभी नहीं बदलते।

प्र0.11 मसीतखानी गत को और किस नाम से पुकारा जाता है ?

उ0. विलम्बित गत।

प्र0.12 रज़ाखानी गत के बोल क्या हैं ?

उ0. इस गत के बोल इस प्रकार हैं – दा दिर दारा, दिर दिर दार दा आदि।

6.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. संगीत शिक्षा, श्रीमती विजया अरोड़ा, ए.पी. पब्लिशर, जालन्धर।
2. संगीत विशारद, बसंत, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ.प्र., जनवरी 1997, 21वाँ संस्करण।
3. संगीत चिंतामणी, आचार्य बृहस्पति, श्रीमती सुमित्रा कुमारी, श्रीमती सुलोचना बृहस्पति, बृहस्पति पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1987।

6.13 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 ख्याल गायन शैली के विषय में विस्तार से समझाइए।

प्र0.2 तराना गायन शैली से आप क्या समझते हैं ?

प्र0.3 मसीतखानी और रज़ाखानी गत के विषय में वर्णन कीजिए।

:–:–:–:–:–:–:

Unit – III

LESSON – 7

Classification of Indian Musical Instruments with special Historical Knowledge of the following Instruments:

Sitar and Sarod

STRUCTURE :

7.1 भूमिका

7.2 उदेश्य

7.3 वाद्य का इतिहास

7.4 वाद्य का शाब्दिक अर्थ एवं वाद्यों का वर्गीकरण

7.4.1 तत् वाद्य

7.4.1.1 तत् वाद्य

7.4.1.2 वितत् वाद्य

7.4.2 सुशिर वाद्य

7.4.3 अवनद् वाद्य

7.4.4 घन वाद्य

7.5 सितार वाद्य का ऐतिहासिक तथा अंगपूरक विवरण

7.6 सरोद

7.6.1 सरोद वाद्य का आकार–प्रकार

7.6.2 सरोद वाद्य के अन्य प्रकार

7.7 सारांश

7.8 शब्दकोष

7.9 स्वयं परीक्षा प्रश्न–उत्तर

7.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.11 महत्वपूर्ण प्रश्न

7.1 भूमिका :–

भारतीय समाज तथा संस्कृति धर्म प्रधान है। हम भारतीय संस्कृति के किसी भी पक्ष का अध्ययन करें, उसे धर्म से अनुप्राणित पाएंगे। संगीत भी भारतीय विचारधारा की इस विशेषता से प्रभावित हुए बिना नही रह सका है। यही कारण है कि संगीत के आदि विद्वानों व शास्त्रकर्ताओं ने उसे नाद वेद की संज्ञा देकर, उसकी उत्पत्ति सृष्टिकर्ता ब्रह्मा द्वारा बताई है।

आदिकाल से भारतीय संगीत में वाद्यों का अपना विशिष्ट स्थान रहा है। अजन्ता, ऐलोरा और ऐलिफैन्टा की चित्रकारी, मोहनजोदड़ो के अवशेष तथा आदिकालीन ग्रन्थ सामवेद इसके प्रमाण स्वरूप हैं। पाश्चात्य देशों की तुलना में भारतीय वाद्य उतने विकसित और प्रचलित नही हुए हैं। इसका कारण यह है कि पाश्चात्य संगीत जितना बल वाद्यों के वादन और प्रचार पर देता है उतना भारतीय संगीत नहीं।

7.2 उदेश्य :–

भारतीय संगीत गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों का सम्मिलित रूप है। भारतीय संगीत में जितना स्थान गायन–वादन शैलियों का है उतना ही इनके साथ ताल या लय के लिए प्रयोग होने वाले वाद्यों का भी है। वाद्य हमारे संगीत में प्राण फूंकने का कार्य करते हैं। यदि वाद्य न होते तो हमारा संगीत कहीं आत्मा रहित लगता। अतः इस पाठ का उदेश्य यही है कि हम यह जान पाएं कि वाद्य क्या हैं, इनका उद्‌गम कैसे हुआ, इनका इतिहास क्या है और ये किस प्रकार संगीत में प्रयोग किए जाते हैं तथा इनका आकार–प्रकार क्या है।

7.3 वाद्य का इतिहास :–

वैदिक युग भारतीय इतिहास का प्रचीनतम् युग है। इसमें प्राचीनकाल की संगीत सम्बन्धी उन्नति एवं वाद्य–वादन की क्रमिक परम्परा का यथार्थ चित्र प्राप्त होता है। इसी के प्रायः समकालीन सिन्धु सभ्यता में

तत्कालीन वाद्यों के सम्बन्ध में किंचित परिचय प्राप्त होता है। इसमें तत्कालीन सभ्यता के जो अवशेष पाए गए हैं, उनमें सींग अथवा शृंग जैसे फूंक से बजने वाले वाद्य हैं। जानवरों के सींग को फूंक कर बजाने की प्रथा सभी पुरातन सभ्यताओं में पाई जाती है। आदिम जाति के धार्मिक क्रियाकलापों में शृंग, शंख जैसे सुषिर वाद्यों का बड़ा महत्व रहा है। वैदिक युग में इस प्रकार के अनेक वाद्यों के प्रयोग का उल्लेख मिलता है।

प्रारम्भ से ही मानव विचारों एवं भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए प्रयत्न करता रहा है। सभी कलाओं का उदभव व विकास इन्हीं सतत् प्रयासों का परिणाम है। यह बात स्वाभाविक है कि मनुष्य अपने आन्तरिक विचारों को दूसरे के समक्ष प्रकट करने के लिए जागरूक रहता है, अतः ऐसी स्थिति में वह या तो वाणी का सहारा लेता है या मूक संकेतों को अपना साधन बनाता है या कभी–कभी दोनों को ही अर्थात् वाणी और संकेत दोनों को ही प्रयोग करता है। संगीत कला का उद्गम भी इसी तरह हुआ है।

संगीत मानव समाज की कलात्मक उपलब्धियों और सांगीतिक सांस्कृतिक परम्पराओं का मूर्तिमान प्रतीक है। संगीत वह कला है जिसमें स्वर, लय और ताल के माध्यम से संगीतज्ञ अपने मनोगत भावों को व्यक्त करता है। इसी तरह के भाव व्यक्त करने के लिए वाद्य भी एक साधन है। संगीतात्मक ध्वनि तथा गति प्रकट करने के उपकरण को 'वाद्य' कहा है। मानव कण्ठ–वाद्य ईश्वर निर्मित है, अतः मनीषियों ने मनुष्य निर्मित वाद्यों का भी अध्ययन एवं वर्णन किया है। आदि काल से मनुष्य किसी न किसी रूप में वाद्यों का प्रयोग करता रहा है। जैसे–जैसे मनुष्य सभ्य एवं सुसंस्कृत होता गया, उसके द्वारा प्रयुक्त वाद्य भी विकसित होते गए।

वाद्य संगीत में संगीत के मूल तत्व स्वर तथा लय के द्वारा बिना किसी अन्य कला की सहायता के श्रोताओं को गहरे ध्यान में ले जा कर उसमें घण्टों रमाए रखने की शक्ति है। वैदिक काल से ही वाद्यों का प्रयोग गायन, वादन तथा नृत्य की संगत के लिए होता रहा है अर्थात् जब से मानव ने बोलना सीखा तभी से उसे गाना भी आ गया, वह गाना चाहे किसी भी रूप में रहा होगा। उसके गायन की संगत के रूप में सम्भवतः वाद्य भी उसी समय प्रचलित हो गए होंगे। किवदन्तियों तथा जनश्रुतियों से ज्ञात होता है कि बहुत पहले मानव ज़मीन में एक गढ्ढा खोदकर उसके ऊपर खाल मढ़ लिया करता था और उसी से गायन तथा नृत्य की संगत किया करता था। उस समय के कई प्रचलित वाद्य इस प्रकार हैं:– दुंदभी, भेरी, मृदंग, पणव, भू–दुंदभी, डिमडिम, नगाड़ा इत्यादि।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0. वाद्य के इतिहास का वर्णन कीजिए।

7.4 वाद्य का शाब्दिक अर्थ एवं वाद्यों का वर्गीकरण :–

"वाद्य" का शाब्दिक अर्थ है **"वादनीय"** या बजाने योग्य यन्त्र विशेष। यह शब्द ''वद'' धातु से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है ''स्पष्ट उच्चारण''। ''वदतीती वाद्यम्'' अर्थात् जो बजाने से बोलता है वह वस्तुतः वाद्य है।

वाद्यों का वर्गीकरण :–

''अनाहत'' और ''आहत''– नाद के ये दो भेद हैं। आहत नाद, जिन को हम सुन सकते हैं, व्यवहार में ला सकते हैं, अपने पांच ध्वनि–रूपों में जिन्हें संगीतात्मक ध्वनियाँ कहते हैं। ये संगीतात्मक ध्वनियाँ नखज, वायुज, चर्मज, लोहज तथा शारीरज होती हैं। वीणा आदि वाद्य नखज हैं, वंशी आदि वाद्य वायुज हैं, मृदंग आदि वाद्य चर्मज, खड़ताल, मंजीरा आदि वाद्य लोहज हैं तथा कण्ठ ध्वनि शारीरज है। इन पांच प्रकार की ध्वनियों को उत्पन्न करने वाले वाद्यों को ''पंचमहावाद्यानि'' कहा गया है। इनमें से एक ईश्वर द्वारा निर्मित है जो नैसर्गिक है तथा अन्य चार प्रकार के वाद्य मानव द्वारा निर्मित हैं।

कुछ अन्य ग्रंथकारों द्वारा ये ध्वनियाँ चार अथवा तीन भी बताई गई हैं लेकिन ''कोहल''के मतानुसार ये ध्वनियाँ पांच ही हैं। महर्षि भरत व दत्तिल ने इनकी संख्या चार मानी हैं जो तत्, अवनद, घन तथा सुषिर हैं। भारतीय संगीत में जिन वाद्यों का प्रयोग होता है उनका वर्गीकरण तत्, अवनद, घन तथा सुशिर चार वर्गों में हमारे संगीताचार्यों ने किया है।

भारतीय संगीत में वाद्यों को – **''तत्'', ''अवनद'', ''सुशिर'', एवं ''घन''** इन चार वर्गों में विभाजित किया गया है। इन चार प्रकार के वाद्यों के सम्बन्ध में कहा गया है:–

ततं वाद्यां तु देवानां गंधर्वाणां च शौषिरम्।

आनद्धं राक्षसानांतु किन्नराणां घनं विदुः।

निजावतारे गोविन्दः सर्वमेवानयत क्षितौ।

अर्थात्– ''तत् वाद्य देवताओं से, सुषिर वाद्य गन्धर्वों से, अवनद वाद्य राक्षसों से तथा घन वाद्य किन्नरों से सम्बन्धित माने गए थे। जब श्री कृष्ण ने अवतार लिया, तब ये इन चारों प्रकार के वाद्यों को पृथ्वी पर ले आए।''

वाद्यों के पृथ्वी पर प्रादुर्भाव के सम्बन्ध में एक अन्य स्त्रोत के अनुसार– पूर्व काल में पृथ्वी पर दस प्रकार के कल्पवृक्ष थे। इनमें से एक का नाम ''तूर्यांग'' था। कहते हैं इसी वृक्ष ने मनुष्य को चार प्रकार के वाद्य प्रदान किए।

इसके अतिरिक्त कल्लिनाथ के मतानुसार, '' दक्ष–यज्ञ–विध्वंस से शिव को जो क्रोध उत्पन्न हुआ, उसको शान्त करने के लिए स्वाति और नारद आदि ऋषियों ने वाद्यों का निर्माण किया।

इसके अतिरिक्त वाद्यों के विषय में यह भी कहा जाता है कि उपरोक्त चार प्रकार के वाद्यों में तत् तथा सुषिर वाद्यों का निर्माण सर्वप्रथम हुआ होगा, ऐसी कल्पना की जा सकती है। वंशी, शृंग तथा डमरू आदिम मानव के प्रिय वाद्य रहे हैं। विश्व की किसी भी प्राचीन सभ्यता को लिजिए वंशी, सींग तथा डमरू जैसे वाद्य वहाँ अवश्य मिलेंगे। गोचारण अथवा चरवाह संस्कृति से भी इन वाद्यों का अभिन्न सम्बन्ध रहा है। भगवान श्री कृष्ण की वंशी

तथा श्रृंग इसी संस्कृति के परिचायक हैं। वन प्रदेशों तथा नदी के किनारे विचरण करने वाले लोगों को प्रकृति का संगीत सुनकर ऐसे ही वाद्यों को बनाने की प्रेरणा मिली होगी। वंशी का सम्बन्ध 'वंश' या बांस से माना गया है। वंशी के लिए 'वेणु' शब्द भी इसी बात की पुष्टि करता है। वृक्ष के खोहों में वायु के प्रवेश और संचार से होने वाली ध्वनि भी उनके लिए परिचित रही। इसी के अनुकरण पर उन्होंने वेणु अथवा सींग को फूंककर उस निनाद अर्थात् ध्वनि का अनुभव किया होगा। इसी के आधार पर पोले बांस में छिद्र बनाने एवं इन छिद्रों से स्वर निकालने की कल्पना की होगी।

चर्म वाद्य बनाने की कल्पना भी प्रकृति के सम्पर्क से ही सफुरित हुई। मृत शिकार का चर्म विभिन्न उपकरण बनाने के लिए काम में लाया गया। ताल देने के लिए उपयोगी चर्म वाद्य बनाने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाने लगा। चर्म को किसी पोली चीज़ पर तान कर उस पर आघात करने से गम्भीर ध्वनि निकलती है, इसका अनुभव मानव ने किया। इसी से दुन्दभि तथा भू–दुन्दभि जैसे वाद्यों की कल्पना मानव मन में स्फुरित हुई। शुरू में चर्म वाद्य दो प्रकार से बनाए गए। प्रथम में लकड़ी की खोल लेकर उस पर चमड़ा तान दिया जाता था और दूसरे में पोली भूमि या गढ्ढे पर चमड़ा मढ़ा जाता था। इस चमड़े को चारों ओर से बद्धियों से कसकर तनाव पैदा किया जाता था। डमरू, ढक्का तथा दुन्दभि पहले प्रकार के वाद्य हैं और भू–दुन्दभि दूसरे प्रकार का। इन वाद्यों को बजाने के लिए या तो हाथ का अथवा लकड़ी की छड़ी का प्रयोग किया जाता रहा।

इसके बाद की अवस्था तत् वाद्यों के विकास की है। धनुष की डोरी की टंकार मानव के लिए नित्य अनुभव की चीज़ रही। डोरी को अंगुली से छेड़ने पर ध्वनि निकलती है, इसका अनुभव मानव दैनिक जीवन में करता रहा। धनुष के आकार वाले तथा उसी के समान टंकार से बजने वाले वाद्य बनाने की प्रेरणा मानव को दैनिक जीवन से ही मिली। धनुष की डोरी टिकाऊपन तथा टंकार ध्वनि दोनों दृष्टियों से उपयोगी रही। इसी के आधार पर वीणा आदि वाद्य बनाए गए। इन धनुषाकार वाद्यों पर नाद उत्पन्न करने की तीन विधियाँ रहीं– 1. अंगुलियों से स्पर्श करने की। 2. कोण या काष्ठ खण्ड से छेड़ने की। 3. गज चलाने की। यह गज धनुषाकार होता था और इसमें जानवरों की आंत से बनी तांत लगाई जाती थी। ऐसे गज के लिए वैदिक काल में ''इशीका''नाम दिया गया। जो बेंत के टुकड़े से बनाया जाता था। इस गज को तन्त्री पर चलाकर स्वर निकाले जाते थे। धीरे–धीरे तांत का स्थान रूई तथा रेषम की डोरी ने ले लिया। आगे चल कर धातु का आविष्कार होने पर तन्त्री के लिए धातु के तार लगाने की परम्परा प्रारम्भ हुई। कोण या मिजराब से बजाए जाने वाले वाद्यों पर सारिकाएं या परदे स्थापित करने की प्रथा मध्यकाल से आरम्भ हुई। परदे वाले वाद्यों को बजाने के लिए उंगलियों की अपेक्षा कोण का प्रयोग होने लगा। प्राचीनकाल के सभी तंतु वाद्य इन्हीं सिद्धांतों पर बने पाए जाते हैं।

घन वाद्यों का निर्माण धातु के आविष्कार के बाद ही आरम्भ हुआ होगा। धातु तथा काष्ठ के खण्डों का एक–दूसरे पर आघात, अनुरणन या गूंज उत्पन्न करता है, जो संगीत को स्वर तथा लय देने में सहायक है। झांझ, घंटा, करताल आदि ऐसे ही घन वाद्य हैं।

वाद्यों को जिन चार वर्गों में बांटा गया है वे इस प्रकार हैं:–

1. तत् वाद्य
2. सुषिर वाद्य
3. अवनद वाद्य
4. घन वाद्य

7.4.1 तत् वाद्य :–

''तत्'' शब्द तनु धातु से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है ''विस्तार करना''। ''तनु'' धातु में ''त'' प्रत्यय लगाकर ''तनम्'' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है– ''जिसमें स्वर व्याप्त हो और उसका विस्तार किया जाए''।

जिन वाद्यों में तांत अथवा तार से ध्वनि उत्पन्न होती है वे वाद्य तत् वाद्य कहलाते हैं। जैसे तम्बूरा, सितार, गिटार, सारंगी, वायलिन इत्यादि। तत् वाद्यों की जननी वीणा मानी जाती है। तत् वाद्यों को आगे दो भागों में बाँटा गया है– तत् वाद्य तथा वितत् वाद्य

7.4.1.1 तत् वाद्य :–

वे वाद्य जिनकी तारें अंगुली या मिजराब के प्रहार द्वारा बजाई जाती हैं उन्हें तत् वाद्य कहते हैं। जैसे– तानपूरा, वीणा, सितार, सरोद इत्यादि।

7.4.1.2 वितत् वाद्य :–

जिन वाद्यों की तारों को गज, लकड़ी या कमानी द्वारा बजाया जाता है, उन्हें वितत् वाद्य कहते हैं। इन गज या कमानी आदि पर घोड़े के बाल लगे होते हैं जिन से वाद्यों की तारों पर घिसकर स्वरों की उत्पत्ति की जाती है। ये वाद्य गायन शैलियों का पूर्ण रूप से अनुकरण करते हैं। वितत् वाद्यों के अन्तर्गत सारंगी, दिलरूबा, वायलिन, इसराज जैसे वाद्य आते हैं।

इसके अतिरिक्त तत् वाद्यों के वर्ग में कुछ ऐसे वाद्य भी रखें गए हैं जो अंगुली, लकड़ी या छड़ी के प्रहार द्वारा स्वर उत्पन्न करते हैं, जैसे– संतूर, पियानो इत्यादि।

तत् वाद्य आघात द्वारा बजाए जाते हैं, जबकि वितत् वाद्य तार पर गज द्वारा घिसकर बजाए जाते हैं। घिस कर जो आवाज़ निकलती है वो आघात से उत्पन्न की गई आवाज़ की अपेक्षा अलग प्रकार की होती है, इसी लिए इस वाद्य वर्ग को तत् वाद्य के वर्ग से अलग भी मानते हैं।

प्राचीन संगीत ग्रंथों में वाद्य वर्गीकरण का जो विवेचन पाया जाता है उसमें तत्, धन, सुषिर तथा अवनद वाद्यों का जितना विस्तृत वर्णन पाया जाता है उतना वितत् वाद्य वर्ग के वाद्यों का नही पाया जाता। वैदिक काल तथा वेदों के पश्चात् के काल से भरत के काल तक कही भी वितत् वाद्यों का वर्णन नही मिलता। भरत के पश्चात् ''बृहदेशी'', ''संगीत मकरंद'' आदि जो ग्रन्थ हुए हैं उनमें भी वितत् वाद्यों का उल्लेख नहीं पाया जाता। कहने का तात्पर्य यह है कि अन्य वाद्यों की अपेक्षा वितत् वाद्यों का उल्लेख कम हुआ है।

7.4.2 सुषिर वाद्य :–

अगला वर्ग सुषिर वाद्य का है। ''शुषिः'' का अर्थ है ''छिद्र''। ''शुषिः'' में ''र'' प्रत्यय जोड़ कर ''सुषिर'' शब्द बनता है जिसका अर्थ है ''छिद्र वाला वाद्य''। जिन वाद्यों में स्वरों की उत्पत्ति वायु द्वारा होती है, वे सुषिर वाद्य कहलाते हैं। जैसे शंख, तुरही, शहनाई, कलारोनेन्ट, बाँसुरी, हारमोनियम इत्यादि। इन वाद्यों का निर्माण लोहे, लकड़ी, तांबा तथा पीतल आदि धातुओं से किया जाता है। इन वाद्यों के खोखले ढाँचों में मुख अथवा किसी अन्य प्रकार से हवा भर कर स्वरों की उत्पत्ति की जाती है। ये वाद्य एकल वादन के साथ–साथ गायन की शैलियों का पूर्ण रूप से अनुकरण करते हैं। सुषिर वाद्यों में वायु के दबाव को ही घटा–बढ़ा कर स्वर को ऊँचा–नीचा किया जाता है तथा उसमें तीनों सप्तकों की रचना भी की जाती है। सुषिर वाद्यों को भी वादन की दृष्टि से दो भागों में बांटा गया है।

क. इस वर्ग में वे सुषिर वाद्य आते हैं जिनमें पतली पत्ती अथवा रीड द्वारा स्वर उत्पन्न होते हैं। जैसे– हारमोनियम, शहनाई इत्यादि।

ख. दूसरे वर्ग में वे सुषिर वाद्य आते हैं जिनमें छिद्र द्वारा स्वर उत्पन्न किए जाते हैं। जैसे– बाँसुरी, बिगुल, शंख, रणसिंगा इत्यादि।

7.4.3 अवनद वाद्य :–

भारतीय वाद्यों का तीसरा वर्ग अवनद वाद्यों का है। अवनद का अर्थ है– **'' चारों ओर से बंधा हुआ''**। वे वाद्य जो भीतर से पोले तथा चमड़े से मढ़े हुए होते हैं और हाथ या किसी अन्य वस्तु के प्रहार से शब्द उत्पन्न करते हैं, वे अवनद वाद्य कहलाते हैं। इन्हें ताल वाद्य भी कहा जाता है। ये वाद्य मुख्य रूप से गायन अथवा वादन की संगति के लिए प्रयोग किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त इन वाद्यों को स्वतन्त्र वादन के रूप में भी स्वीकार किया गया है। डमरू, दुन्दभि, ढोलक, नगाड़ा, तबला, पखावज इत्यादि वाद्य अवनद वाद्यों की श्रेणी में आते हैं। वादन की दृष्टि से अवनद वाद्यों को भी दो भागों में बाँटा गया है ––

क. पहले वर्ग में वे अवनद वाद्य आते हैं जिनमें हाथ के प्रहार द्वारा शब्द उत्पन्न किए जाते हैं। जैसे– तबला, छोटी ढोल, पखावज, डफ इत्यादि।

ख. दूसरे वर्ग में वे अवनद वाद्य आते हैं जिनमें किसी बाहरी वस्तु अथवा छड़ी के प्रहार द्वारा शब्द उत्पन्न किए जाते हैं। जैसे– नगाड़ा, बड़ा ढोल इत्यादि।

अवनद वाद्य पशु के चमड़े अथवा खाल द्वारा बनाए जाते हैं। इन वाद्यों को ताल वाद्य भी कहा जाता है और इनका प्रयोग ताल देने के लिए किया जाता है। इन वाद्यों में स्वर का नही अपितु शब्द का स्थान रहता है। इसलिए इन वाद्यों में स्वर की अपेक्षा लय को प्रधानता दी जाती है। इसके साथ–साथ अवनद वाद्य किसी भी प्रकार के संगीत में रंजकता बढ़ाने का कार्य भी करते हैं।

7.4.4 घन वाद्यः–

चौथा वर्ग घन वाद्य का है। घन शब्द सघनता का प्रतीक है। जो वाद्य आपसी रगड़, लकड़ी अथवा धातु की छड़ी द्वारा बजाए जाते हैं ''घन वाद्य'' कहलाते हैं। इन वाद्यों को भी ताल वाद्य कहा जाता है क्योंकि ये वाद्य अधिकतर लय दर्शाने का कार्य करते हैं और अपने वादन से संगीत में और अधिक मधुरता घोल देते हैं। ये वाद्य प्रायः कांसा, पीतल या लकड़ी के बने होते हैं। इनमें से कांसे के बने वाद्यों में से सर्वश्रेष्ठ ध्वनि निकलती है। यदि सामूहिक रूप से लकड़ी के बने वाद्य बजाए जाएं तो उनमें से भी मधुर ध्वनि उत्पन्न होती है। मंजीरा, झांझ, करताल, चिमटा, घुंघरू, नालतरंग, काष्ठतरंग, जलतरंग आदि वाद्य घन वाद्यों की श्रेणी में आते हैं।

वादन की दृष्टि से घन वाद्यों को भी दो भागों में बांटा जा सकता है।

क. प्रथम भाग में वे वाद्य आते हैं जो आपसी रगड़ अथवा घर्षण द्वारा बजाए जाते हैं जैसे– झांझ, मंजीरा, चिमटा, करताल इत्यादि।

ख. दूसरे भाग में वे वाद्य आते हैं जो किसी बाहरी प्रहार अर्थात् छड़ी द्वारा बजाए जाते हैं। जैसे– जलतरंग, काष्ठतरंग, नलतरंग, बड़ा घण्टा इत्यादि।

अंत में हम ये कह सकते हैं कि वाद्यों का वर्गीकरण पूर्ण रूप से उनके आकार–प्रकार, उपयोग और उनके बजाने के ढंग पर आधारित है। प्रारम्भ में वाद्यों का जन्म नैसर्गिक ध्वनियों के अनुकरण तथा चेष्टाओं के परिणाम स्वरूप हुआ था लेकिन जब ये वाद्य प्रयोग किए जाने लगे, तो इन्ही वाद्यों के आधार पर नवीन वाद्यों का जन्म और विकास समय–समय पर होता रहा है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 वाद्य का शाब्दिक अर्थ क्या है ?

प्र0.2 वाद्यों के वर्गीकरण पर प्रकाश डालिए।

प्र0.3 तत् और वितत् वाद्य का वर्णन कीजिए।

प्र0.4 घन वाद्यों पर प्रकाश डालिए।

7.5 सितार वाद्य का ऐतिहासिक एवं अंगपूरक विवरण :–

भारतीय संगीत वाद्यों में सितार का स्थान आज के युग में सर्वोपरि है। आधुनिक युग में सर्वाधिक प्रसिद्ध तत् वाद्य सितार 18वीं शताब्दी से विकसित होता हुआ अपने वर्तमान रूप में पहुँचा है।

पहले तत् वाद्यों में वीणा ही प्रमुख वाद्य थी और आज सर्वाधिक लोकप्रिय वाद्य सितार भी वीणा का ही रूपान्तर है। प्राचीन काल में जो स्थान संगीत में वीणा वाद्य को प्राप्त था वही महत्व सितार वाद्य का इस काल में है। भारतीय संगीत को जो लोकप्रियता तथा सम्मान विदेशों में प्राप्त हुआ है उसका अधिकतम श्रेय सितार वाद्य को ही प्राप्त है। हमारे भारत के प्रमुख सितार वादको में पं0 रवि शंकर जी, उस्ताद विलायत खां ने इस वाद्य को लोकप्रिय वाद्य बना दिया है।

सितार भारतीय संगीत का एक महत्वपूर्ण वाद्य है। समय के परिवर्तन के अनुसार इस वाद्य में कई परिवर्तन आए और आज हमारे सामने यह विकसित रूप में है। इस वाद्य के आविष्कार के सम्बन्ध में अनेक मत पाए जाते हैं। पुराने समय में एक ऐसे वाद्य का वर्णन मिलता है जिसमें तुम्बे के स्थान पर बकरी की खाल मढ़ी जाने तथा सात तार होने का संकेत मिलता है। पहले इस वाद्य में तीन तारें प्रयुक्त होती थीं और इसे त्रिवेणी वीणा के रूप में जाना जाता था। अनेक विद्वानों का यह अनुमान रहा है कि प्राचीन त्रीतंत्री वीणा का परिवर्तित रूप ही सितार है। प्राचीन शिलालेखों के आधार पर आज यह निश्चित हो चुका है कि मुसलिम काल से पूर्व ही हमारे देश में सितार का प्रचलन हो चुका था। उनके मतानुसार गुप्तकाल जो संगीत का स्वर्ण काल माना जाता है, उस काल में सितार का प्रचार था। गुप्तकाल के समुद्र गुप्त जिन्हें राजा विक्रमादित्य के नाम से जाना जाता है स्वयं इस सितार जैसे वाद्य के कलाकार थे। उस समय के सिक्कों पर चित्रित ''समुद्रगुप्त'' को वीणा बजाते हुए दर्शाया गया है जो इस बात को प्रमाणित करता है कि वीणा अर्थात् आधुनिक सितार उस समय प्रचलित थी।

अरब का एक प्रसिद्ध गायक और कवि ''जरहम बिन्दोई'' लिखते हैं कि ''वे लोग धन्य हैं जो राजा विक्रमादित्य के दरबार में रहते हैं जो बड़ा दानी, धर्मात्मा, प्रजापालक और संगीत का ज्ञाता है। जिसकी सितार से दिल की कली खिल उठती है।'' राजा विक्रम की आज्ञा से कई गुणीजन अरब देश में धर्म, संगीत और सितार के प्रचार के लिए गए। यह कथन प्रमाणित करता है कि सितार आर्य लोगों का आविष्कृत वाद्य है।

अनेक विद्वानों का यह अनुमान है कि सितार ईरानी तथा पर्शियन वाद्य है जो मुसलमानों के आगमन के साथ यहाँ आया इसमें संदेह नही है कि ईरान में भी एकतारा, दुतारा, चौतार व सितार आदि वाद्यों का प्रचार रहा है किन्तु उनकी बनावट भारतीय वाद्यों की बनावट से मूलतः भिन्न होती है।

नवीन प्रयोगों से सितार के विस्तार क्षेत्र तथा उसकी महता में बड़ा परिवर्तन हुआ है और आज हमारे सामने यह अपने विकसित रूप में है। सितार के उद्भव अथार्त् आविष्कार के विषय में अनेक मत पाए जाते हैं।

प्रथम मत के अनुसार 13वीं शताब्दी में अमीर खुसरो ने इसका आविष्कार पर्शियन वाद्य **''उद''** के आधार पर किया है। यह वाद्य मुसलमानों के आगमन के साथ भारत में आया। इसका आकार–प्रकार ईरानी वाद्य ''तम्बूर''

और ''उद'' के समान है। कहते हैं कि 13वीं शताब्दी में अमीर खुसरो ने उक्त वाद्य में बकरी की खाल के स्थान पर 'अलाकू' अथवा 'तुम्बफल' अर्थात् तुम्बा लगाया। ''संगीत सुदर्शन'' के लेखक सुदर्शनाचार्य लिखते हैं, ''सितार को अमीर खुसरो ने निकाला, अमीर खुसरो की पीर की सिद्धि किसी फकीर ने चिड़ कर छीन ली थी। इस फकीर को प्रसन्न करने हेतु और अपने पीर की सिद्धि लौटाने के लिए इन्होंने सितार वाद्य निकाला''।

कुछ विद्वानों का कहना है कि सितार का आविष्कार अमीर खुसरो ने किया, ये मत तर्कसंगत प्रतीत नही होता। यह बात सही है कि अमीर खुसरो भारतीय तथा ईरानी संगीत का ज्ञाता था, लेकिन उसके पूरे साहित्य में सितार वाद्य का उल्लेख नही मिलता। समकालीन दरबारी संगीत का विस्तृत विवरण प्रसिद्ध इतिहासकार ''बर्नी'' ने अपने ग्रन्थ में किया है। इस ग्रन्थ में संगीतज्ञ मुहम्मदशाह द्वारा बजाए जाने वाले ''चंग'' वाद्य का वर्णन मिलता है। यदि सितार का नए वाद्य के रूप में उस समय आविष्कार हुआ होता तो बर्नी द्वारा अथवा तत्तकालीन साहित्य में अवश्य उसका वर्णन होता। अमीर खुसरो से बहुत पहले भारत में पर्देवाली वीणा का प्रचलन था। इसके अतिरिक्त उनके प्रायः समकालीन पं0 शारंगदेव के ग्रन्थ में वीणाओं का प्रचार प्रमाणित होता है। सम्भवतः तत्तकालीन ''त्रीतन्त्री'' वीणा में ही यथोचित परिवर्तन कर ''सितार'' का प्रचलन अमीर खुसरो ने किया हो तो यह कोई आश्चर्यजनक बात नही है। अतएव सितार का आविष्कार कर्ता मानने के स्थान पर उसका प्रचारकर्ता मानना अधिक श्रेयस्कर होगा। राजा मानसिंह तोमर द्वारा लिखे ग्रन्थ ''मानकौतुहल'' में भी उस समय के प्रचलित सभी वाद्यों का उल्लेख है परन्तु सितार का नाम नही है। उनके ग्रन्थ का फारसी अनुवाद करने वाला 'अल्लाह' औरंगजेब के समय में था तथा इससे यह प्रमाणित होता है कि औरंगजेब के समय तक भी सितार के नाम का पता नही था।

दूसरे मत के अनुसार प्राचीन भारत की त्रीतंत्री वीणा जो कि तीन तारों वाली थी उसका परिवर्तित रूप ही सितार है। कुछ लोगों का यह मत है कि मुहम्मदशाह रंगीले के दरबारी गायक सदारंग के भाई नेमत खाँ ने सबसे पहले तीन तार वाला वाद्य बनाया और इसे ''सहतार'' कहा। सहतार एक फारसी शब्द है। ''सितार'' शब्द ''सहतार'' शब्द का अपभ्रंश रूप है। फारसी भाषा में ''सह'' का अर्थ है ''तीन'' अर्थात् तीन तारों वाला वाद्य सहतार कहलाया।

कुछ विद्वानों का कहना है कि सितार का आविष्कार लगभग 17वीं शताब्दी में होना शुरू हुआ। सातवीं से तेहरवीं शताब्दी तक भारत में एकतन्त्री तथा किन्नरी वीणा का सर्वाधिक प्रचार था। एकतन्त्री सारिका रहित तथा सारिकायुक्त वीणा थी। कल्लीनाथ ने संगीत रत्नाकर की टीका करते हुए इसी वाद्य को 'जन्त्र' भी कहा है। प्राचीन युग में तन्त्री वाद्यों में तुम्बे का प्रयोग नही होता था। ''किन्नरी वीणा'' में सर्वप्रथम तुम्बे का प्रयोग किया गया। मध्य युग में जन्त्र पहला वाद्य था जिसमें कटे हुए तुम्बे का प्रयोग हुआ।

''आइने अकबरी'' में संगीत वाद्यों का वर्णन करते हुए इस जन्त्र नाम के वाद्य का वर्णन इस प्रकार किया गया है– इस वाद्य की डाण्ड प्रायः एक गज लम्बी है, ऊपर और नीचे दो कटे हुए तुम्बे लगाए जाते हैं। इसके

डाण्ड पर 16 परदे लगे रहते हैं, इसमें पांच तार लगाए जाते हैं। स्वरों को ऊँचा–नीचा करने के लिए परदों को सरकाया जा सकता है।

अठारवीं शताब्दी में सदारंग जैसे गायक–वादक ने भारतीय संगीत के इतिहास में एक नया मोड़ दिया। कुछ लोगों का कहना है कि इसी युग में सदारंग के छोटे भाई "खुसरो खाँ" ने सितार वाद्य का आविष्कार किया। जिस प्रकार सदारंग के वंशजों ने स्वयं ध्रुपद गाया और ख्याल की शिक्षा शिष्यों को दी, उसी प्रकार वे बीन तो स्वयं बजाते थे और सितार की शिक्षा शिष्यों को देते थे। पं0 बृहस्पति जैसे शास्त्रकार ने इतिहास के अनेक ग्रन्थों का गहन अध्ययन करने पर लिखा है कि सितार का आविष्कारक खुसरो खाँ को बताया जाना सत्य सिद्ध होता है। क्योकि इसके लिए उन्होंने ठोस प्रमाण भी दिए हैं।

कुछ विद्वानों का मत है कि तानसेन के वंशजों में दो भाइयों "अमृतसेन' तथा "निहाल सेन" ने सितार के विकास में विशेष योगदान दिया। इन्होंने इस वाद्य में दो तार और जोड कर तारों की संख्या पांच कर दी। जिन्हे क्रमशः म –सा – प –सा – सां से मिलाया जाता था। इन्होंने इस वाद्य में एक छोटे आकार का तुम्बा़ और लगा दिया, जिसका उदेश्य वाद्य–ध्वनि की गूंज को बढ़ाना तथा उसकी ध्वनि में माधुर्य उत्पन्न करना था। इनके समय में ही सितार की नई वादन शैली बनी जो "गत" के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस वाद्य के लिए उपयुक्त गत शैली का निर्माण सेनिया घराने की देन है। सितार में प्रयुक्त हो सकने वाली गतों के निर्माण कर्ताओं में निहाल सेन के पुत्र अमीर खाँ, मसीत खाँ व सेनी घराने के शिष्य गुलाम रज़ा खाँ मुख्य थे। ये सभी उस्ताद 18वीं शताब्दी के उतरार्द्ध से लेकर 19वीं शताब्दी के उतरार्द्ध तक हुए। इनके समय में सितार का एकाकी रूप में वादन किया जाने लगा। 19वीं शताब्दी में मसीत खाँ और रज़ाखाँ ने इस वाद्य का एकाकी वादन वाद्य के रूप में बड़ा विकास किया। इतना ही नहीं इनके नाम से मसीतखानी तथा रज़ाखानी गतें प्रचलित हुईं। इन्होंने सितार को अविस्मरणीय प्रतिष्ठा प्रदान की। इनके समय में 23 पर्दों का प्रयोग किया जाता था। जिससे सितार में एक अचल थाट का निर्माण हो चुका था।

इसके पश्चात् इमदाद खाँ ने नया शैलीगत विकास किया। इस महान कलाकार ने राग को प्रस्तुत करने में मींड के महत्व और गुण पर बल दिया। इन्होंने पर्दों की संख्या घटा कर 19 कर दी तथा एक से चार स्वरों तक की मींड का प्रदर्शन किया। इसके साथ ही इनका बड़ा योगदान तरब के तार जोड़ने का था। तरब के तारों की संख्या 11 थीं और उन्हें किसी विशिष्ट राग में प्रयुक्त स्वरों के अनुसार मिलाया जाता था। आगे चल कर इमदाद खाँ के पुत्र इनायत खाँ ने मुख्य तुम्बे को गोल बना कर तथा पुनः दूसरा तुम्बा जोड़ कर अपने वंश की अविष्कार परम्परा को आगे बढ़ाया। दूसरा तुम्बा सितार के दूसरे छोर पर लगाया गया। इस प्रकार वर्तमान सितार का आकार निर्धारित करने का श्रेय इन्हें ही जाता है।

आजकल सितार दो प्रकार के बनते हैं। एक "सादा सितार" तथा दूसरा "तरफदार सितार"। सादे सितार की अपेक्षा तरफदार सितार कुछ बड़ा होता है। इसमें ध्वनि अधिक, असरदार मींड तथा मुर्की आदि अधिक कर्णप्रिय

होती है। सितार अनेक भागों को मिलाकर बनाई जाती है। सितार के अनेक भाग होते हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है :–

1. **तुम्बा :–** यह सितार का वह भाग होता है जो अन्दर से पूरा खोखला होता है। यह भाग एक ओर से खुला होता है। तारों के द्वारा जो झंकार पैदा होती है, वह इस तुम्बे के कारण गूँजती रहती है।

2. **तबली :–** ये तुम्बे को आच्छादित अर्थात् ढकने के लिए होती है। यह सागवान की बनी होती है। इसे तुम्बे के खुले भाग पर लगाया जाता है।

3. **लंगोट या कील :–** ये सितार में लगे तुम्बे के पेंदे में लगी लकड़ी या हड्डी की बनी एक पट्टी होती है। जिसमें सितार की तारों को बाँधा जाता है। यहाँ से तारें शुरू होकर खूंटियों तक जाती हैं।

4. **घोड़ी :–** यह हाथी दांत, सींग या हड्डी की बनी चौकीनुमा वस्तु होती है। इसके ऊपर से सितार की तारें लंगोट में बाँधी जाती हैं।

5. **ज्वारी :–** घुड़च या घोड़ी की मुलायम सतह को ज्वारी कहते हैं। इसके ऊपर सितार के तार होते हैं।
6. **डॉंड :–** यह सागवान या तून की लकड़ी की बनी होती है। यह आकार में लम्बी और अन्दर से पोली होती है। इसमें सितार के पर्दे, तारें तथा खूंटियाँ आदि लगाई जाती हैं।

7. **गुलू :–** जहाँ पर डांड और तुम्बा एक दूसरे से जुड़े होते हैं उस स्थान को गुलू कहते हैं।
8. **मनका :–** लंगोट तथा घोड़ी के बीच की तार में हाथी दांत का जो मोती लगा होता है उसे मनका कहते हैं। आजकल हाथी दांत के बने मनकों के स्थान पर अन्य वस्तु से बने मनके प्रयोग किए जाते हैं। इससे तार की ध्वनि में जो थोड़ा सा अन्तर रह जाता है उसे ठीक रखने में सहायता मिलती है।

9. **परदा :–** सितार में स्वरों के निश्चित स्थानों पर पीतल अथवा लोहे के सलाइयों के आकार के टुकडे जो डांड के अगले भाग पर तांत से बंधे होते हैं उन्हें परदे कहते हैं। ये कुछ मुड़े हुए आकार के होते हैं। इन्हें ''सुन्दरी'' या ''सारिका'' भी कहते हैं।

10. **तारगहन :–** ये हाथी दांत या हड्डी की बनी हुई छोटी सी पट्टी होती है जिसमें छिद्र होते हैं। इन

छिद्रों में से तारें पिरोकर खूंटियों से बाँधी जाती हैं। इसीलिए इसे तारगहन कहते हैं। इसके अतिरिक्त इसे ''तारदान'' कहकर भी पुकारा जाता है।

11. **अटी :–** ये तारगहन जैसी ही एक बिना छिद्र वाली पट्टी होती है। जिसके ऊपर से तारें खूंटियों तक पहुँचती हैं।

12. **खूँटियां :–** ये लकड़ी से कुँजीनुमा आकार की बनी होती हैं। जो सितार की तार लपेटने के लिए लगी होती है। इसके घुमाने से तार को चढ़ाया–उतारा जाता है।

13. **तरब :–** सितार के पर्दों की संख्या के अनुसार कुछ छोटे तार सितार के पर्दों के नीचे लगाए जाते हैं जिन्हें ''तरब'' के तार कहते हैं। ये भिन्न–भिन्न स्वरों में मिले हुए होते हैं तथा सितार के सात तारों के अतिरिक्त होते हैं। जब सितार बजता है, तो उसकी झंकार से तरब की तारों में स्वतः झंकार उत्पन्न होती है।

14. **मिज़राब :–** यह पक्के लोहे के तार की अंगूठीनुमा वस्तु होती है। दाहिने हाथ की तर्जनी अँगुली में इसको पहन कर सितार के तारों पर आघात करने से सितार बजता है।

15. **तारे अथवा तंत्रियां :–** सितार में मुख्य रूप से सात तार होते हैं। जिनका वर्णन इस प्रकार है ––

पहला तार :–

यह लोहे (स्टील) का बना तार होता है। इसे ''बाज का तार'' या ''बोल तार'' कहते हैं। यह तार मन्द्र सप्तक के ''म़'' में मिलाया जाता है।

दूसरा तथा तीसरा तार :–

ये दोनों ''जोड़ी के तार'' कहलाते हैं। इन्हें मन्द्र सप्तक के षड़ज यानी ''सा़'' में मिलाते हैं। ये दोनों ही तार पीतल के होते हैं।

चौथा तार :–

यह स्टील का तार होता है और इसे ''पंचम का तार'' भी कहते हैं। यह मन्द्र सप्तक के पंचम यानी ''प़'' में मिलाया जाता है।

पंचम तार :–

यह पीतल का होता है और जोड़ी के तारों से लगभग दुगुना मोटा होता है। इसे अति मंद्र सप्तक के पंचम में मिलाया जाता है। इसे ''लरज की तार'' भी कहते हैं।

छठा तार :–

यह तार स्टील का बना होता है। यह तार मोटाई में चौथे तार से कुछ कम होता है। इसे मध्य सप्तक के षड़ज में मिलाते हैं। इसे ''चिकारी का तार'' भी कहते हैं।

सातवाँ तार :–

यह तार भी स्टील का होता है, किन्तु सितार के अन्य सब तारों से पतला होता है। इसे तार षड़ज ''सां'' में मिलाया जाता है। कभी–कभी मध्य सप्तक के ''प'' में मिलाते हैं। इसे ''चिकारी की तार'' या ''पपैया का तार'' भी कहते हैं।

इसके अतिरिक्त सितार में कुछ मुख्य बोल बजाए जाते हैं जो इस प्रकार हैं– दा, रा, दिर, द, दी, र, ड, दार, तथा द्रा।

इसके अतिरिक्त सितार पर जो चीज़ें बजाई जाती हैं वे निम्नलिखित हैं ––

गत – मसीतखानी गत, रज़ाखानी गत, जोड़–आलाप, जमजमा, झाला, मींड, सूत, आन्दोलन तथा गमक इत्यादि।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 सितार के किन्हीं चार अंगों का वर्णन कीजिए।

प्र0.2 सितार में कितनी तारें होती हैं ? वर्णन कीजिए।

7.6 सरोद :–

'सरोद' एक प्रकार से आधुनिक वाद्य माना जाता है। कहा जाता है कि यह वाद्य रबाव वाद्य के आधार पर बना है। यूँ तो कुछ लोग इसे शारदीय वीणा का अपभ्रंश रूप मानते हैं। वैसे यह वाद्य मध्यकाल तक कहीं प्रचार में नही था। इसलिए कुछ लोग इसें रबाव का परिवर्तित और आधुनिक रूप मानते हैं।

मध्यकाल में तानसेन परम्परा में बासत खां हुए, जिनकी शिष्य परम्परा में रबाव शैली प्रचलित रही। आगे चल कर इस वाद्य ने सरोद का रूप धारण कर लिया। इस वाद्य की गहरी व मधुर ध्वनि होती है। उत्तर भारत

में एक लोक रबाव वाद्य बजाया जाता था जिसमें सूत, रेशम, कपास या तांत के तार होते थे। इसे लकड़ी के पिक से ही बजाया जाता था। कहते हैं कि उस लोक रबाव का परिवर्तित रूप ही सरोद वाद्य माना जाता है।

कुछ विद्वानों का मत है कि यह वाद्य मध्य एशिया के अफगान वाद्य 'अफगान रूब' से बना है। हमारे कई महान संगीतज्ञ इस वाद्य को प्राचीन चित्रा वीणा, मध्यकालीन रबाव और आधुनिक सुरसिंगार वाद्य का मिलाजुला रूप मानते हैं।

कुछ विद्वान तो इस वाद्य को गुप्त काल से 2000 साल पहले का मानते हैं। कुछ विद्वान इस वाद्य को शारदीय वीणा से बना वाद्य मानते हैं। एक मत के अनुसार इस वाद्य को प्रचार में लाने का श्रेय हैदर अली खाँ को दिया जाता है। कहते हैं कि वे इस साज को काबुल से लाए थे। लेकिन पूर्व में ये साज रबाव की तरह ही था। पं0 लालमणी मिश्र ने अपनी पुस्तक 'भारतीय संगीत वाद्य' में सरोद को प्राचीन चित्रा वीणा, मध्यकालीन रबाब और आधुनिक सुरसिंगार का मिश्रित रूप बताया है।

कुछ विद्वान इस वाद्य के विषय में कहते हैं कि अमजद अली खाँ के पूर्वजों में मुहम्मद हाशिम खाँ बंगश हुए। वे 18 वीं शताब्दी में जब अफगान से भारत आए तो वे साथ में रबाव वाद्य को साथ लेकर आए थे। कहा जाता है कि वे घोड़े के व्यापारी थे और एक संगीतकार भी थे। जब वे भारत आए तब वे यहाँ आकर रीवा के महाराज के यहाँ दरबारी संगीतकार बन गए। कहा जाता है कि वहीं से इस वाद्य का आरम्भ हुआ। कहने का तात्पर्य यह है कि सरोद वाद्य रबाव का ही एक परिवर्तित रूप है।

इस वाद्य की ध्वनि मधुर एवं गहरी होती है। इस वाद्य का प्रयोग हर तरह के संगीत में होता है। चाहे वह शास्त्रीय संगीत हो या फिर किसी अन्य प्रकार का संगीत।

7.6.1 सरोद वाद्य का आकार–प्रकार :–

यह वाद्य नारियल के खोल, तून की लकड़ी तथा हाथी दाँत से बनता है। इस वाद्य को पोली लकड़ी से बनाया जाता है। इस वाद्य का निचला सिरा गोलाकार होता है, जिसमें दण्ड या डांड लगी होती है। इस वाद्य में जो दण्ड लगी होती है वह नीचे से चौड़ी होती है और ऊपर की और जाते हुए उसकी चौड़ाई कम होती जाती है। इसकी डांड पर धातु की पत्ती चढ़ाई जाती है।

सरोद में चार मुख्य तंत्रियाँ, चार सहायक तंत्रीयाँ तथा 12 तरब की तारें लगी होती हैं। इस वाद्य में तांत और लोहे के तारों का प्रयोग होता है। इसके आगे के हिस्से को चमड़े से मढ़ा जाता है। इस वाद्य को तिकोने लकड़ी के टुकड़े से बजाते हैं, जिसे 'जिवा' कहा जाता है।

7.6.2 सरोद वाद्य के अन्य भाग :–

1. **कील** :– इस भाग को 'टेल पीस' भी कहा जाता है। यह वाद्य के सबसे निचले हिस्से में लगे होते हैं। जहाँ पर तारों को बांधा जाता है।

2. **तुम्बा :–** यह इस वाद्य का निचला गोल भाग होता है जो बकरी के चमड़े से मढ़ा जाता है जिसे 'तुम्बा' कहा जाता है।
3. **डांड :–** यह लकड़ी का बना लम्बा व खोखला भाग होता है जिसकी ऊपर की ओर जाती चौड़ाई कम होती जाती है।
4. **गुलू :–** जहाँ पर निचला तुम्बा व डांड जुड़ते हैं उस स्थान को 'गुलू' कहा जाता है। इस जुड़े हुए स्थान के ऊपर हड्डी या आजकल पलास्टिक की एक पतली पट्टी लगाई जाती है।
5. **धातु की परत :–** इस वाद्य की डांड के ऊपर धातु की एक परत चढ़ाई जाती है जिसे 'फ्रैट प्लेट' भी कहा जाता है।
6. **डांड का ऊपरी हिस्सा** :– इस वाद्य की डांड से ऊपर जो पतला भाग होता है उसमें इस वाद्य की मुख्य चार तारों और चार सहायक तारों जिन्हें ज्वारी की तारें बोलते हैं की खूंटियाँ लगी रहती हैं।
7. **ज्वारी नट, अटी और तारगहन :–** जहाँ डांड और डांड का पतला हिस्सा जिसमें मुख्य खूंटियाँ लगी होती हैं उनके बीच में ज्वारी नट या पेच, अटी और तारगहन लगे होते हैं।
8. **छोटा तुम्बा :–** ज्वारी नट के ठीक पीछे की ओर एक छोटे आकार का तुम्बा लगा होता है जिससे इस वाद्य में गूँज उत्पन्न होती है। यह छोटा तुम्बा ब्रास धातु का बना होता है।
9. **खूँटी :–** ये चाबीनुमा भाग होता है जो कि सरोद वाद्य की डांड में लगी होती हैं। इनमें 12 से 15 तरब की तारों की खूंटियाँ और दो चिकारी की तारों की खूंटियाँ लगी रहती हैं।
10. **तारें या तंत्रियाँ** :– इस वाद्य में तांत या लोहे के तार लगे होते हैं।
11. **जिवा :–** इस सरोद वाद्य को लकड़ी के एक छोटे टुकड़े से बजाया जाता है, जिसे 'जिवा' कहा जाता है।

इस प्रकार पुराने रबाव वाद्य का परिवर्तित रूप सरोद वाद्य आधुनिक संगीत जगत का एक लोकप्रिय वाद्य माना जाता है। जिसका प्रयोग शास्त्रीय संगीत के साथ–साथ हर प्रकार के संगीत में किया जाता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 4

प्र0.1 सरोद के आकार–प्रकार का वर्णन कीजिए।

प्र0.2 सरोद के किन्हीं चार भागों या अंगों के विषय में बताइए।

7.7 सारांश :–

हमारे संगीत में अनेक प्रकार के वाद्यों का वर्णन मिलता है। जिनमें से कुछ वाद्य शास्त्रीय संगीत से सम्बन्धित हैं तथा कुछ लोक संगीत से सम्बन्धित माने जाते हैं। वाद्यों को वर्गीकरण की दृष्टि से चार भागों में बाँटा जाता है। सितार तथा सरोद वाद्य वर्गीकरण की दृष्टि से तत् वाद्यों की श्रेणी में आते हैं। दोनों वाद्यों का

प्रयोग शास्त्रीय संगीत के साथ–साथ अन्य प्रकार के संगीत में भी किया जाता है। दोनों ही वाद्य आज के संगीत जगत में लोकप्रिय वाद्य माने जाते हैं।

7.8 शब्दकोष :–

1. अनुप्राणित – प्रेरित
2. किंचित – कुछ या मात्र
3. उद्गम – उत्पन्न होना
4. किंवदन्ति – लोक अपवाद अफवाह
5. नैसर्गिक – प्राकृतिक या स्वभाविक
6. स्फुरित – अस्थिर
7. अनुकरण – अनुसरण या नकल
8. आच्छादित – ढका हुआ
9. अपभ्रंश – बिगड़ा हुआ

7.9 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 वाद्य के इतिहास का वर्णन कीजिए।

उ0. वाद्य का इतिहास :–

वैदिक युग भारतीय इतिहास का प्रचीनतम् युग है। इसमें प्राचीनकाल की संगीत सम्बन्धी उन्नति एवं वाद्य–वादन की क्रमिक परम्परा का यथार्थ चित्र प्राप्त होता है। इसी के प्रायः समकालीन सिन्धु सभ्यता में तत्कालीन वाद्यों के सम्बन्ध में किंचित परिचय प्राप्त होता है। इसमें तत्कालीन सभ्यता के जो अवशेष पाए गए हैं, उनमें सींग अथवा शृंग जैसे फूंक से बजने वाले वाद्य हैं। जानवरों के सींग को फूंक कर बजाने की प्रथा सभी पुरातन सभ्यताओं में पाई जाती है। आदिम जाति के धार्मिक क्रियाकलापों में शृंग, शंख जैसे सुषिर वाद्यों का बड़ा महत्व रहा है। वैदिक युग में इस प्रकार के अनेक वाद्यों के प्रयोग का उल्लेख मिलता है।

प्रारम्भ से ही मानव विचारों एवं भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए प्रयत्न करता रहा है। सभी कलाओं का उदभव व विकास इन्हीं सतत् प्रयासों का परिणाम है। यह बात स्वाभाविक है कि मनुष्य अपने आन्तरिक विचारों को दूसरे के समक्ष प्रकट करने के लिए जागरूक रहता है, अतः ऐसी स्थिति में वह या तो वाणी का सहारा लेता है या मूक संकेतों को अपना साधन बनाता है या कभी–कभी दोनों को ही अर्थात् वाणी और संकेत दोनों को ही प्रयोग करता है। संगीत कला का उद्गम भी इसी तरह हुआ है।

संगीत मानव समाज की कलात्मक उपलब्धियों और सांगीतिक सांस्कृतिक परम्पराओं का मूर्तिमान प्रतीक है। संगीत वह कला है जिसमें स्वर, लय और ताल के माध्यम से संगीतज्ञ अपने मनोगत भावों को व्यक्त करता है। इसी तरह के भाव व्यक्त करने के लिए वाद्य भी एक साधन है। संगीतात्मक ध्वनि तथा गति प्रकट करने के उपकरण को 'वाद्य' कहा है। मानव कण्ठ–वाद्य ईश्वर निर्मित है, अतः मनीषियों ने मनुष्य निर्मित वाद्यों का भी अध्ययन एवं वर्णन किया है। आदि काल से मनुष्य किसी न किसी रूप में वाद्यों का प्रयोग करता रहा है। जैसे–जैसे मनुष्य सभ्य एवं सुसंस्कृत होता गया, उसके द्वारा प्रयुक्त वाद्य भी विकसित होते गए।

वाद्य संगीत में संगीत के मूल तत्व स्वर तथा लय के द्वारा बिना किसी अन्य कला की सहायता के श्रोताओं को गहरे ध्यान में ले जा कर उसमें घण्टों रमाए रखने की शक्ति है। वैदिक काल से ही वाद्यों का प्रयोग गायन, वादन तथा नृत्य की संगत के लिए होता रहा है अर्थात् जब से मानव ने बोलना सीखा तभी से उसे गाना भी आ गया, वह गाना चाहे किसी भी रूप में रहा होगा। उसके गायन की संगत के रूप में सम्भवतः वाद्य भी उसी समय प्रचलित हो गए होंगे। किवदन्तियों तथा जनश्रुतियों से ज्ञात होता है कि बहुत पहले मानव ज़मीन में एक गढ्ढा खोदकर उसके ऊपर खाल मढ़ लिया करता था और उसी से गायन तथा नृत्य की संगत किया करता था। उस समय के कई प्रचलित वाद्य इस प्रकार हैंः– दुंदभी, भेरी, मृदंग, पणव, भू–दुंदभी, डिमडिम, नगाड़ा इत्यादि।

प्र0.2 वाद्य का शाब्दिक अर्थ क्या है ?

उ0. **"वाद्य"** का शाब्दिक अर्थ है **"वादनीय"** या बजाने योग्य यन्त्र विशेष। यह शब्द "वद" धातु से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है "स्पष्ट उच्चारण"। "वदतीती वाद्यम्" अर्थात् जो बजाने से बोलता है वह वस्तुतः वाद्य है।

प्र0.3 वाद्यों के वर्गीकरण पर प्रकाश डालिए।

उ0. **वाद्यों का वर्गीकरण :–**

"अनाहत" और "आहत"– नाद के ये दो भेद हैं। आहत नाद, जिन को हम सुन सकते हैं, व्यवहार में ला सकते हैं, अपने पांच ध्वनि–रूपों में जिन्हें संगीतात्मक ध्वनियाँ कहते हैं। ये संगीतात्मक ध्वनियाँ नखज, वायुज, चर्मज, लोहज तथा शारीरज होती हैं। वीणा आदि वाद्य नखज हैं, वंशी आदि वाद्य वायुज हैं, मृदंग आदि वाद्य चर्मज, खड़ताल, मंजीरा आदि वाद्य लोहज हैं तथा कण्ठ ध्वनि शारीरज है। इन पांच प्रकार की ध्वनियों को उत्पन्न करने वाले वाद्यों को "पंचमहावाद्यानि" कहा गया है। इनमें से एक ईश्वर द्वारा निर्मित है जो नैसर्गिक है तथा अन्य चार प्रकार के वाद्य मानव द्वारा निर्मित हैं।

कुछ अन्य ग्रंथकारों द्वारा ये ध्वनियाँ चार अथवा तीन भी बताई गई हैं लेकिन "कोहल"के मतानुसार ये ध्वनियाँ पांच ही हैं। महर्षि भरत व दत्तिल ने इनकी संख्या चार मानी हैं जो तत्, अवनद, घन तथा सुषिर हैं। भारतीय संगीत में जिन वाद्यों का प्रयोग होता है उनका वर्गीकरण तत्, अवनद, घन तथा सुशिर चार वर्गों में हमारे संगीताचार्यों ने किया है।

भारतीय संगीत में वाद्यों को – **"तत्", "अवनद", "सुशिर", एवं "घन"** इन चार वर्गों में विभाजित किया गया है। इन चार प्रकार के वाद्यों के सम्बन्ध में कहा गया हैः–

ततं वाद्यां तु देवानां गंधर्वाणां च शौषिरम्।

आनद्धं राक्षसानांतु किन्नराणां घनं विदुः।

निजावतारे गोविन्दः सर्वमेवानयत क्षितौ।

अर्थात्– "तत् वाद्य देवताओं से, सुषिर वाद्य गन्धर्वों से, अवनद वाद्य राक्षसों से तथा घन वाद्य किन्नरों से सम्बन्धित माने गए थे। जब श्री कृष्ण ने अवतार लिया, तब ये इन चारों प्रकार के वाद्यों को पृथ्वी पर ले आए।"

वाद्यों के पृथ्वी पर प्रादुर्भाव के सम्बन्ध में एक अन्य स्त्रोत के अनुसार– पूर्व काल में पृथ्वी पर दस प्रकार के कल्पवृक्ष थे। इनमें से एक का नाम "तूर्यांग" था। कहते हैं इसी वृक्ष ने मनुष्य को चार प्रकार के वाद्य प्रदान किए।

इसके अतिरिक्त कल्लिनाथ के मतानुसार, " दक्ष–यज्ञ–विध्वंस से शिव को जो क्रोध उत्पन्न हुआ, उसको शान्त करने के लिए स्वाति और नारद आदि ऋषियों ने वाद्यों का निर्माण किया।

इसके अतिरिक्त वाद्यों के विषय में यह भी कहा जाता है कि उपरोक्त चार प्रकार के वाद्यों में तत् तथा सुषिर वाद्यों का निर्माण सर्वप्रथम हुआ होगा, ऐसी कल्पना की जा सकती है। वंशी, शृंग तथा डमरू आदिम मानव के प्रिय वाद्य रहे हैं। विश्व की किसी भी प्राचीन सभ्यता को लिजिए वंशी, सींग तथा डमरू जैसे वाद्य वहाँ अवश्य मिलेंगे। गोचारण अथवा चरवाह संस्कृति से भी इन वाद्यों का अभिन्न सम्बन्ध रहा है। भगवान श्री कृष्ण की वंशी तथा श्रृंग इसी संस्कृति के परिचायक हैं। वन प्रदेशों तथा नदी के किनारे विचरण करने वाले लोगों को प्रकृति का संगीत सुनकर ऐसे ही वाद्यों को बनाने की प्रेरणा मिली होगी। वंशी का सम्बन्ध 'वंश' या बांस से माना गया है। वंशी के लिए 'वेणु' शब्द भी इसी बात की पुष्टि करता है। वृक्ष के खोहों में वायु के प्रवेश और संचार से होने वाली ध्वनि भी उनके लिए परिचित रही। इसी के अनुकरण पर उन्होंने वेणु अथवा सींग को फूंककर उस निनाद अर्थात् ध्वनि का अनुभव किया होगा। इसी के आधार पर पोले बांस में छिद्र बनाने एवं इन छिद्रों से स्वर निकालने की कल्पना की होगी।

चर्म वाद्य बनाने की कल्पना भी प्रकृति के सम्पर्क से ही सफुरित हुई। मृत शिकार का चर्म विभिन्न उपकरण बनाने के लिए काम में लाया गया। ताल देने के लिए उपयोगी चर्म वाद्य बनाने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाने लगा। चर्म को किसी पोली चीज़ पर तान कर उस पर आघात करने से गम्भीर ध्वनि निकलती है, इसका अनुभव मानव ने किया। इसी से दुन्दभि तथा भू–दुन्दभि जैसे वाद्यों की कल्पना मानव मन में स्फुरित हुई। शुरू में चर्म वाद्य दो प्रकार से बनाए गए। प्रथम में लकड़ी की खोल लेकर उस पर चमड़ा तान दिया जाता था और दूसरे में पोली भूमि या गढ्ढे पर चमड़ा मढ़ा जाता था। इस चमड़े को चारों ओर से बद्धियों से कसकर तनाव

पैदा किया जाता था। डमरू, ढक्का तथा दुन्दभि पहले प्रकार के वाद्य हैं और भू–दुन्दभि दूसरे प्रकार का। इन वाद्यों को बजाने के लिए या तो हाथ का अथवा लकड़ी की छड़ी का प्रयोग किया जाता रहा।

इसके बाद की अवस्था तत् वाद्यों के विकास की है। धनुष की डोरी की टंकार मानव के लिए नित्य अनुभव की चीज़ रही। डोरी को अंगुली से छेड़ने पर ध्वनि निकलती है, इसका अनुभव मानव दैनिक जीवन में करता रहा। धनुष के आकार वाले तथा उसी के समान टंकार से बजने वाले वाद्य बनाने की प्रेरणा मानव को दैनिक जीवन से ही मिली। धनुष की डोरी टिकाऊपन तथा टंकार ध्वनि दोनों दृष्टियों से उपयोगी रही। इसी के आधार पर वीणा आदि वाद्य बनाए गए। इन धनुषाकार वाद्यों पर नाद उत्पन्न करने की तीन विधियाँ रहीं– 1. अंगुलियों से स्पर्श करने की। 2. कोण या काष्ठ खण्ड से छेड़ने की। 3. गज चलाने की। यह गज धनुषाकार होता था और इसमें जानवरों की आंत से बनी तांत लगाई जाती थी। ऐसे गज के लिए वैदिक काल में ''इशीका''नाम दिया गया। जो बेंत के टुकड़े से बनाया जाता था। इस गज को तन्त्री पर चलाकर स्वर निकाले जाते थे। धीरे–धीरे तांत का स्थान रूई तथा रेषम की डोरी ने ले लिया। आगे चल कर धातु का आविष्कार होने पर तन्त्री के लिए धातु के तार लगाने की परम्परा प्रारम्भ हुई। कोण या मिजराब से बजाए जाने वाले वाद्यों पर सारिकाएं या परदे स्थापित करने की प्रथा मध्यकाल से आरम्भ हुई। परदे वाले वाद्यों को बजाने के लिए उंगलियों की अपेक्षा कोण का प्रयोग होने लगा। प्राचीनकाल के सभी तंतु वाद्य इन्हीं सिद्धांतों पर बने पाए जाते हैं।

घन वाद्यों का निर्माण धातु के आविष्कार के बाद ही आरम्भ हुआ होगा। धातु तथा काष्ठ के खण्डों का एक–दूसरे पर आघात, अनुरणन या गूंज उत्पन्न करता है, जो संगीत को स्वर तथा लय देने में सहायक है। झांझ, घंटा, करताल आदि ऐसे ही घन वाद्य हैं।

वाद्यों को जिन चार वर्गों में बांटा गया है वे इस प्रकार हैः–

1. तत् वाद्य
2. सुषिर वाद्य
3. अवनद वाद्य
4. घन वाद्य

प्र0.4 तत् और वितत् वाद्य का वर्णन कीजिए।

उ0. **तत् वाद्य :–**

''तत्'' शब्द तनु धातु से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है ''विस्तार करना''। ''तनु'' धातु में ''त'' प्रत्यय लगाकर ''तनम्'' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है– ''जिसमें स्वर व्याप्त हो और उसका विस्तार किया जाए''।

जिन वाद्यों में तांत अथवा तार से ध्वनि उत्पन्न होती है वे वाद्य तत् वाद्य कहलाते हैं। जैसे तम्बूरा, सितार, गिटार, सारंगी, वायलिन इत्यादि। तत् वाद्यों की जननी वीणा मानी जाती है। तत् वाद्यों को आगे दो भागों में बाँटा गया है– तत् वाद्य तथा वितत् वाद्य

तत् वाद्य :–

वे वाद्य जिनकी तारें अंगुली या मिजराब के प्रहार द्वारा बजाई जाती हैं उन्हें तत् वाद्य कहते हैं। जैसे– तानपूरा, वीणा, सितार, सरोद इत्यादि।

वितत् वाद्य :–

जिन वाद्यों की तारों को गज, लकड़ी या कमानी द्वारा बजाया जाता है, उन्हें वितत् वाद्य कहते हैं। इन गज या कमानी आदि पर घोड़े के बाल लगे होते हैं जिन से वाद्यों की तारों पर घिसकर स्वरों की उत्पत्ति की जाती है। ये वाद्य गायन शैलियों का पूर्ण रूप से अनुकरण करते हैं। वितत् वाद्यों के अन्तर्गत सारंगी, दिलरूबा, वायलिन, इसराज जैसे वाद्य आते हैं।

इसके अतिरिक्त तत् वाद्यों के वर्ग में कुछ ऐसे वाद्य भी रखें गए हैं जो अंगुली, लकड़ी या छड़ी के प्रहार द्वारा स्वर उत्पन्न करते हैं, जैसे– संतूर, पियानो इत्यादि।

तत् वाद्य आघात द्वारा बजाए जाते हैं, जबकि वितत् वाद्य तार पर गज द्वारा घिसकर बजाए जाते हैं। घिस कर जो आवाज़ निकलती है वो आघात से उत्पन्न की गई आवाज़ की अपेक्षा अलग प्रकार की होती है, इसी लिए इस वाद्य वर्ग को तत् वाद्य के वर्ग से अलग भी मानते हैं।

प्राचीन संगीत ग्रंथों में वाद्य वर्गीकरण का जो विवेचन पाया जाता है उसमें तत्, धन, सुषिर तथा अवनद वाद्यों का जितना विस्तृत वर्णन पाया जाता है उतना वितत् वाद्य वर्ग के वाद्यों का नही पाया जाता। वैदिक काल तथा वेदों के पश्चात् के काल से भरत के काल तक कही भी वितत् वाद्यों का वर्णन नही मिलता। भरत के पश्चात् ''बृहदेशी'', ''संगीत मकरंद'' आदि जो ग्रन्थ हुए हैं उनमें भी वितत् वाद्यों का उल्लेख नहीं पाया जाता। कहने का तात्पर्य यह है कि अन्य वाद्यों की अपेक्षा वितत् वाद्यों का उल्लेख कम हुआ है।

प्र0.5 घन वाद्यों पर प्रकाश डालिए।

उ0. **घन वाद्य :–**

चौथा वर्ग घन वाद्य का है। घन शब्द सघनता का प्रतीक है। जो वाद्य आपसी रगड़, लकड़ी अथवा धातु की छड़ी द्वारा बजाए जाते हैं ''घन वाद्य'' कहलाते हैं। इन वाद्यों को भी ताल वाद्य कहा जाता है क्योंकि ये वाद्य अधिकतर लय दर्शाने का कार्य करते हैं और अपने वादन से संगीत में और अधिक मधुरता घोल देते हैं। ये वाद्य प्रायः कांसा, पीतल या लकड़ी के बने होते हैं। इनमें से कांसे के बने वाद्यों में से सर्वश्रेष्ठ ध्वनि निकलती है। यदि

सामूहिक रूप से लकड़ी के बने वाद्य बजाए जाएं तो उनमें से भी मधुर ध्वनि उत्पन्न होती है। मंजीरा, झांझ, करताल, चिमटा, घुंघरू, नालतरंग, काष्ठतरंग, जलतरंग आदि वाद्य घन वाद्यों की श्रेणी में आते हैं।

वादन की दृष्टि से घन वाद्यों को भी दो भागों में बांटा जा सकता है।

क. प्रथम भाग में वे वाद्य आते हैं जो आपसी रगड़ अथवा घर्षण द्वारा बजाए जाते हैं जैसे– झांझ, मंजीरा, चिमटा, करताल इत्यादि।

ख. दूसरे भाग में वे वाद्य आते हैं जो किसी बाहरी प्रहार अर्थात् छड़ी द्वारा बजाए जाते हैं। जैसे– जलतरंग, काष्ठतरंग, नलतरंग, बड़ा घण्टा इत्यादि।

अंत में हम ये कह सकते हैं कि वाद्यों का वर्गीकरण पूर्ण रूप से उनके आकार–प्रकार, उपयोग और उनके बजाने के ढंग पर आधारित है। प्रारम्भ में वाद्यों का जन्म नैसर्गिक ध्वनियों के अनुकरण तथा चेष्टाओं के परिणाम स्वरूप हुआ था लेकिन जब ये वाद्य प्रयोग किए जाने लगे, तो इन्ही वाद्यों के आधार पर नवीन वाद्यों का जन्म और विकास समय–समय पर होता रहा है।

प्र0.6 सितार के किन्हीं चार अंगों का वर्णन कीजिए।

1. उ0. **तुम्बा :–** यह सितार का वह भाग होता है जो अन्दर से पूरा खोखला होता है। यह भाग एक ओर से

खुला होता है। तारों के द्वारा जो झंकार पैदा होती है, वह इस तुम्बे के कारण गूँजती रहती है।

2. **तबली :–** ये तुम्बे को आच्छादित अर्थात् ढकने के लिए होती है। यह सागवान की बनी होती है। इसे तुम्बे के खुले भाग पर लगाया जाता है।

3. **लंगोट या कील :–** ये सितार में लगे तुम्बे के पेंदे में लगी लकड़ी या हड्डी की बनी एक पट्टी होती है। जिसमें सितार की तारों को बाँधा जाता है। यहाँ से तारें शुरू होकर खूंटियों तक जाती हैं।

4. **घोड़ी :–** यह हाथी दांत, सींग या हड्डी की बनी चौकीनुमा वस्तु होती है। इसके ऊपर से सितार की तारें लंगोट में बाँधी जाती हैं।

प्र0.7 सितार में कितनी तारें होती हैं ? वर्णन कीजिए।

उ0. **तारे अथवा तंत्रियां :–** सितार में मुख्य रूप से सात तार होते हैं। जिनका वर्णन इस प्रकार है ––

पहला तार :–

यह लोहे (स्टील) का बना तार होता है। इसे ''बाज का तार'' या ''बोल तार'' कहते हैं। यह तार मन्द्र सप्तक के ''म़'' में मिलाया जाता है।

दूसरा तथा तीसरा तार :–

ये दोनों ''जोड़ी के तार'' कहलाते हैं। इन्हें मन्द्र सप्तक के षड़ज यानी ''सा़'' में मिलाते हैं। ये दोनों ही तार पीतल के होते हैं।

चौथा तार :–

यह स्टील का तार होता है और इसे ''पंचम का तार'' भी कहते हैं। यह मन्द्र सप्तक के पंचम यानी ''प़'' में मिलाया जाता है।

पंचम तार :–

यह पीतल का होता है और जोड़ी के तारों से लगभग दुगुना मोटा होता है। इसे अति मंद्र सप्तक के पंचम में मिलाया जाता है। इसे ''लरज की तार'' भी कहते हैं।

छठा तार :–

यह तार स्टील का बना होता है। यह तार मोटाई में चौथे तार से कुछ कम होता है। इसे मध्य सप्तक के षड़ज में मिलाते हैं। इसे ''चिकारी का तार'' भी कहते हैं।

सातवाँ तार :–

यह तार भी स्टील का होता है, किन्तु सितार के अन्य सब तारों से पतला होता है। इसे तार षड़ज ''सां'' में मिलाया जाता है। कभी–कभी मध्य सप्तक के ''प'' में मिलाते हैं। इसे ''चिकारी की तार'' या ''पपैया का तार'' भी कहते हैं।

प्र0.8 सरोद वाद्य के आकार–प्रकार का वर्णन कीजिए।

उ0 सरोद :–

इस वाद्य की ध्वनि मधुर एवं गहरी होती है। इस वाद्य का प्रयोग हर तरह के संगीत में होता है। चाहे वह शास्त्रीय संगीत हो या फिर किसी अन्य प्रकार का संगीत।

सरोद वाद्य का आकार–प्रकार :–

यह वाद्य नारियल के खोल, तून की लकड़ी तथा हाथी दाँत से बनता है। इस वाद्य को पोली लकड़ी से बनाया जाता है। इस वाद्य का निचला सिरा गोलाकार होता है, जिसमें दण्ड या डांड लगी होती है। इस वाद्य में जो दण्ड लगी होती है वह नीचे से चौड़ी होती है और ऊपर की और जाते हुए उसकी चौड़ाई कम होती जाती है। इसकी डांड पर धातु की पत्ती चढ़ाई जाती है।

सरोद में चार मुख्य तंत्रियाँ, चार सहायक तंत्रीयाँ तथा 12 तरब की तारें लगी होती हैं। इस वाद्य में तांत और लोहे के तारों का प्रयोग होता है। इसके आगे के हिस्से को चमड़े से मढ़ा जाता है। इस वाद्य को तिकोने लकड़ी के टुकड़े से बजाते हैं, जिसे 'जिवा' कहा जाता है।

प्र0.9 सरोद के किन्हीं चार भागों या अंगों के विषय में बताइए।

सरोद वाद्य के भाग :–

1. कील :– इस भाग को 'टेल पीस' भी कहा जाता है। यह वाद्य के सबसे निचले हिस्से में लगे होते हैं। जहाँ पर तारों को बांधा जाता है।
2. तुम्बा :– यह इस वाद्य का निचला गोल भाग होता है जो बकरी के चमड़े से मढ़ा जाता है जिसे 'तुम्बा' कहा जाता है।
3. डांड :– यह लकड़ी का बना लम्बा व खोखला भाग होता है जिसकी ऊपर की ओर जाती चौड़ाई कम होती जाती है।
4. गुलू :– जहाँ पर निचला तुम्बा व डांड जुड़ते हैं उस स्थान को 'गुलू' कहा जाता है। इस जुड़े हुए स्थान के ऊपर हड्डी या आजकल पलास्टिक की एक पतली पट्टी लगाई जाती है।

7.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. संगीत विशारद, बसंत, संगीत कार्यालय हाथरस, उ.प्र.
2. भारतीय संगीत का इतिहास, भगवत शरण शर्मा, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ.प्र.।
3. पं0 लालमणी मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य।

7.11 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 वाद्यों के वर्गीकरण से आप क्या समझते हैं ?

प्र0.2 सितार वाद्य का ऐतिहासिक विवेचन कीजिए।

प्र0.3 सितार में कितनी तारें होती हैं तथा उन्हें किन–किन स्वरों में मिलाया जाता है ?

:–:–:–:–:–:–:

LESSON – 8

Historical Knowledge of the following Instruments:

Surbahar, Tabla, Tanpura

STRUCTURE :

8.1 भूमिका

8.2 उदेश्य

8.3 सुरबहार

8.4 तबला

8.4.1 तबले की उत्पत्ति

8.4.2 तबले के अंग या भाग

8.5 तानपूरा

8.5.1 तानपूरे के भाग

8.5.2 तानपूरा छेड़ने की विधि

8.5.3 तानपूरा की बैठक

8.6 सारांश

8.7 शब्दकोष

8.8 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

8.10 महत्वपूर्ण प्रश्न

8.1 भूमिका :–

भारतीय समाज तथा संस्कृति धर्म प्रधान है। हम भारतीय संस्कृति के किसी भी पक्ष का अध्ययन करें, उसे धर्म से अनुप्राणित पाएंगे। संगीत भी भारतीय विचारधारा की इस विशेषता से प्रभावित हुए बिना नही रह सका है। यही कारण है कि संगीत के आदि विद्वानों व शास्त्रकर्ताओं ने उसे नाद वेद की संज्ञा देकर, उसकी उत्पत्ति सृष्टिकर्ता ब्रह्मा द्वारा बताई है।

आदिकाल से भारतीय संगीत में वाद्यों का अपना विशिष्ट स्थान रहा है। अजन्ता, ऐलोरा और ऐलिफैन्टा की चित्रकारी, मोहनजोदड़ो के अवशेष तथा आदिकालीन ग्रन्थ सामवेद इसके प्रमाण स्वरूप हैं। सुरबहार, तबला और तानपूरा हमारे संगीत में विशेष स्थान रखते हैं। इन वाद्यों का ऐतिहासिक वर्णन इस प्रकार है ––

8.2 उदेश्य

भारतीय संगीत गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों का सम्मिलित रूप है। भारतीय संगीत में जितना स्थान गायन–वादन शैलियों का है उतना ही इनके साथ ताल या लय के लिए प्रयोग होने वाले वाद्यों का भी है। वाद्य हमारे संगीत में प्राण फूंकने का कार्य करते हैं। यदि वाद्य न होते तो हमारा संगीत कहीं आत्मा रहित लगता। अतः इस पाठ का उदेश्य यही है कि हम यह जान पाएं कि वाद्यों का उद्‌गम कैसे हुआ, इनका इतिहास क्या है और ये किस प्रकार संगीत में प्रयोग किए जाते हैं तथा इनका आकार–प्रकार क्या है।

8.3 सुरबहार :–

'सुरबहार' वाद्य सितार वाद्य से मिलता–जुलता या अत्यन्त समीप का वाद्य माना जाता है। यह उत्तर भारत का तंत्री वाद्य माना जाता है। इसे 'बेस सितार' (Base Sitar) भी कहा जाता है। इस वाद्य के आविष्कार के विषय में भी अलग –अलग मत माने जाते हैं और कहा जाता है कि इस वाद्य का आविष्कार लगभग 1825 के आसपास हुआ।

एक मत के अनुसार इस वाद्य के आविष्कारक उमराऊ खान बीनकार माने जाते हैं। कुछ का मत है कि इस वाद्य की उत्पत्ति लखनऊ के उस्ताद गुलाम मुहम्मद द्वारा की गई, ये उमराऊ खान के शिष्य थे। कुछ विद्वान इस वाद्य की खोज का श्रेय उस्ताद साहबदाद खान को देते हैं।

सुरबहार वाद्य एक बड़े आकार के सितार की तरह का वाद्य लगता है और इसे सितार की तरह ही बजाया जाता है। इसमें एक चौड़ा और गोलाकार तुम्बा लगा होता है, जो कि आकार में बहुत बड़ा होता है। इस

तुम्बे को तबली से ढका जाता है। तुम्बे के साथ डांड लगी होती है। जिस पर 19 के लगभग सारिकाएं या पर्दे लगे होते हैं। जिन्हें रेशम के धागों से बांधा जाता है।

इस वाद्य में चार मुख्य तारें, तीन चिकारी की तारें, कुल मिलाकर सात तारें होती हैं जो कि तुम्बे के निचले छोर पर कील या लंगोट से बंधी होती हैं। यह लंगोट हाथी दाँत की बनी एक पट्टी होती है। इस वाद्य में ग्यारह इस्पात की तरब की तारें लगी होती हैं जो कि डांड पर छोटी खूँटियों से बंधे हुए होते हैं। ये तारें तबली के ऊपर एक छोटे घुड़च पर लगी होती हैं।

सुरबहार वाद्य तून या टीक वुड (लकड़ी) से बनाया जाता है। इस वाद्य की लम्बाई 51 इंच के लगभग होती है। यह वाद्य भार में सितार से भारी होता है। एक भारी तंत्री वाद्य होने के कारण इस वाद्य की ध्वनि गम्भीर होती है।

इस वाद्य की ध्वनि गम्भीर होने के कारण इसके साथ गम्भीर शैली का ही ताल वाद्य पखावज बजाया जाता है। इस वाद्य की गम्भीर प्रकृति के कारण इस पर ध्रुपद शैली भी बजाई जाती है।

इस वाद्य की पहली कलाकार श्री मति अन्नपूर्णा थीं। जो कि अलाऊदीन खाँ की बेटी तथा पं0 रवि शंकर की पत्नी थीं। इन्हें रोशनआरा खान के नाम से भी जाना जाता है। इनके अतिरिक्त उमराव खाँ, सज्जाद खाँ, बलराम पाठक तथा इनायत खाँ इत्यादि इस वाद्य के कलाकार रहे हैं।

एक भारी वाद्य होने के कारण इस वाद्य का वादन थोड़ा कठिन माना जाता है। यही कारण है कि यह वाद्य आज अधिक लोकप्रिय नहीं हो पाया।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 सुरबहार में कितनी तारें होती हैं ?

प्र0.2 सुरबहार के इतिहास पर प्रकाश डालिए।

8.4 तबला :–

कहा जाता है कि ''तबला'' स्वाति ऋषि द्वारा आविष्कृत वाद्य पुष्कर ही है। लेकिन कुछ लोग तबले को ''तबल'' नाम से पुकारते हैं और तबल को हिन्दी शब्द ही मानते हैं। कहते हैं कि मुगलकाल में तबल शब्द ही प्रचलित था। जो अंग्रेज़ी प्रभाव के कारण तबला हो गया। जैस कि प्रायः अंग्रेज़ी भाषा में होता रहा है कि राम को रामा तथा कृष्ण को कृष्णा कहा जाता रहा है। लेकिन यह धारणा पूरी तरह असंगत ठहरती है क्योंकि ''तबल'' और ''तबला'' दोनों में से कोई भी हिन्दी शब्द नही है। तबल एक अरबी शब्द है जिसका अर्थ है ''बड़ा ढोल या नक्कारा''। हमारे यहाँ इसके हिन्दी पर्याय दरामा, दुन्दभि इत्यादि हैं। वस्तुतः तबल पुराने अरबी समाज में प्रचलित

एक रण वाद्य है। जिसका प्रयोग युद्धरत सैनिको में जोश उत्पन्न करने के लिए किया जाता था। यह वाद्य आगे बढ़ती हुई फौज के पीछे–पीछे चलता था। इसी प्रकार के वाद्य को हिन्दी में ''धोंसा'' कहकर पुकारा जाता है जो युद्ध के अवसर पर पीटते हुए बजाया जाता था। अरबी, फारसी से होती हुई यह परम्परा उर्दू में भी आई। सम्राट अकबर के ''नौबत खाने'' में जो नौ तरह के वाद्य होते थे, बड़ा नक्कारा तथा तबल भी उनमें से एक हैं। यद्यपि आज कोई ठोस प्रमाण प्राप्त नही होता तथापि कहने–सुनने में यही आता है कि पखावज को तराश कर हज़रत अमीर खुसरो ने तबला इजाद किया। लेकिन अमीर खुसरो की पुस्तक में इसका वर्णन कहीं नहीं मिलता।

8.4.1 तबले की उत्पत्ति :–

तबले की उत्पत्ति और विकास के सम्बन्ध में कई मतों का प्रतिपादन किया गया है। एक मत के अनुसार भारत में पौराणिक काल में दो भिन्न ध्वनियों वाले नगाड़ों का वादन होता था, जिन्हें ''संबल'' कहते थे। इनमें से एक को नर तथा दूसरे को मादा कहा जाता था। बहुत सम्भव है कि तबले की जोड़ी की उत्पत्ति का आधार यही वाद्य रहा हो।

कुछ ग्रन्थकारों के मतानुसार दिल्ली के भगवान दास तथा सिद्धार खाँ दो पखावजी थे। उनमें आपस में स्पर्धा रहती थी। एक दिन क्रोध में सिद्धार खाँ ने पखावज को बीच से काट कर दो भाग कर दिए। कहते हैं इसी से तबला व डग्गा इन दो भागों के उपयोग की प्रणाली प्रारम्भ हुई। दाहिना भाग ''तबला'' तथा बाँया भाग ''डग्गा'' कहलाया। इस प्रकार तबले का आविष्कारक सिद्धार खाँ को माना गया।

तबला शब्द की उत्पत्ति फारसी के ''तब्ल'' शब्द से मानी जाती है, जिसका सामान्य अर्थ है– वह वाद्य जिसका मुख ऊपर की ओर हो तथा जिसका ऊपरी भाग सपाट हो।

तबला अवनद वाद्यों में से एक वाद्य है। बुद्ध काल में अनेक अवनद वाद्यों का उल्लेख मिलता है जिनमें डिमडिम, डमरू, दुर्दर, आदम्बर आदि अनेक अवनद वाद्य उस काल में प्रचलित थे। तबला वाद्य प्राचीन वाद्यों का ही परिवर्तित रूप है। संगीत में परिवर्तन के साथ–साथ अवनद वाद्यों में भी आवश्यकता अनुसार परिवर्तन होता गया। मध्यकाल में शास्त्रीय संगीत में ध्रुपद गीत–प्रबन्ध के साथ मृदंग अथवा पखावज जैसे अवनद वाद्यों के वादन का प्रचलन था। जब शास्त्रीय संगीत में ख्याल नामक गीत प्रकार प्रचलित हुआ तब तबला उस गीत प्रबन्ध के साथ बजाया जाने लगा। उक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि तबला व डग्गा का प्रचलन ख्याल नामक शास्त्रीय गीत प्रबन्ध के साथ–साथ प्रारम्भ हुआ। जिसका समय 11वीं शताब्दी माना जाता है।

इस वाद्य को केवल तबला कहा जाता है जबकि इसमें दो विभिन्न प्रकार के उपकरण तबला तथा डग्गा प्रयोग होते हैं। तबला व डग्गा को ''दाँयां'' तथा ''बाँयां'' कहकर भी पुकारा जाता है। उक्त दोनों भागों को सामने रखते समय तबला दाँयीं ओर तथा डग्गा बाँयीं ओर रखा जाता है। इसीलिए इसे ''दाँयां व बाँयां'' भी कहा जाता है। इन दोनों उपकरणों का समाविष्ट नाम **''तबला''** प्रचलित हो गया। इन दोनों भागों के आकार–प्रकार में भिन्नता पाई जाती है।

8.4.2 तबले के अंग या भाग :–

तबला या डग्गा अर्थात् तबले के विभिन्न भाग होते हैं। जो इस प्रकार हैं:–

1. **खोड :–** ये शीशम, बीजासार, खैंर, आम व बबूल आदि वृक्षों की लकड़ी से बनता है। इस भाग का घेरा नीचे से चौड़ा तथा ऊपर की ओर बढ़ता हुआ कम हो जाता है। इसका बाहर और अन्दर का भाग जितना मुलायम तथा अधिक साफ होता है, उतना ही इसे अधिक उपयुक्त माना जाता है।
2. **पूड़ी :–** यह चमड़े की बनी होती है। इसके लिए भिन्न–भिन्न पशुओं के चमड़े का प्रयोग किया जाता है। लेकिन इसमें अधिकतर बकरी के चमड़े का प्रयोग ही किया जाता है। पूड़ी खोड़ के ऊपरी हिस्से पर लगाई जाती है।
3. **स्याही :–** पूड़ी के मध्य भाग में काले गोलाकार भाग को ''स्याही'' कहते हैं। यह एक विशिष्ट प्रकार से तैयार किया हुआ मसाला होता है। इसे पूड़ी के ऊपर बीचों–बीच पक्का जमाया जाता है। इस स्याही के द्वारा ही तबले से उपयुक्त अक्षरों की नाद ध्वनि स्पष्ट और मधुर बजती है। यदि तबले की पूड़ी पर स्याही न लगी हो तो तबले में बजाए जाने वाले बोलों की ध्वनि उत्पन्न ही नहीं होगी।
4. **चाँटी :–** यह चमड़े की बनी एक पट्टी सी होती है जो पूड़ी के चारों ओर लगी होती है। इसे पूड़ी का ही एक भाग माना जाता है। तबले में बजाए जाने वाले कुछ विशेष बोल इसी चाँटी पर बजाए जाते हैं।
5. **लव :–** पूड़ी की ऊपरी सतह पर स्याही तथा चाँटी के बीच के भाग को ''लव'' कहते हैं। इस पर भी तबले के कुछ विशेष प्रकार के बोलों का वादन किया जाता है।
6. **गजरा :–** यह चमड़े का बना हुआ होता है। जिस प्रकार फूलों को बड़े ही सुन्दर ढंग से गूंथ कर गजरा तैयार किया जाता है उसी प्रकार चमड़े से बनी पट्टियों को भी आपस में गूंथ कर तबले का गजरा तैयार किया जाता है। इसे चाँटी के निचले सम्पूर्ण भाग में गोलाकार के रूप में चारों ओर लगाया जाता है।
7. **बद्दी :–** यह एक पतली चमड़े की पट्टी होती है। जिसका प्रयोग पूड़ी को गजरे के साथ कसने में किया जाता है। कभी–कभी बद्दी के स्थान पर सूत की रस्सी का भी प्रयोग किया जाता है।
8. **गुडरी :–** यह भी चमड़े की बनी पतली पट्टियाँ होती हैं जिन्हें गजरे के समान ही गूंथ कर तबले के आधार अर्थात् निचले भाग पर लगाया जाता है। इसको तबले के निचले भाग पर लगाने से तबले का खोड़ ज़मीन पर आसानी से टिका रहता है।
9. **गट्टे :–** यह लकड़ी के बने छोटे–छोटे टुकड़े होते हैं। जिन्हें बद्दी और खोड़ के बीच में फंसाया जाता है। इन गट्टों को हथोड़ी से ऊपर–नीचे करने से तबले की ध्वनि को घटाया–बढ़ाया जाता है अर्थात् इन गट्टों को नीचे–ऊपर करने से तबले को गायन–वादन के स्वर के अनुसार मिलाया जाता है।

इस प्रकार तबला प्राचीनकाल से धीरे–धीरे परिवर्तित होता हुआ आज विकसित रूप में हमारे सामने है। आज तबला हमारे भारतीय संगीत का अत्यन्त लोकप्रिय वाद्य है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 तबले की उत्पत्ति के विषय में बताइए।

प्र0.2 तबले के किन्हीं चार अंगों का वर्णन कीजिए।

8.5 तानपूरा :–

प्रचलित तानपूरा शब्द को तंबूरा शब्द का अपभ्रंश रूप कहा जा सकता है। कहते हैं कि तुमरू नामक गन्धर्व द्वारा इस वाद्य का आविष्कार किया गया था और इन्हीं तुमरू ऋषि के नाम पर इसे ''तम्मूरा'' या ''तम्बूरा'' कहा गया। पाणिनीय शिक्षा में ''अलाबू'' नामक द्वीतंत्री वीणा का उल्लेख मिलता है। अलाबू का अर्थ है ''तुम्बा''। अतः तुम्बे पर विशिष्ट रूप से आश्रित इस वाद्य को ''तम्बूरा'' कहना अधिक उचित है।

वैदिक काल में सामगान के साथ अविछिन्न स्वर–गुंजन होता रहे इसी कारण से वीणा का प्रयोग किया जाता था। यह सर्वविदित है कि सामगायन की चतुःस्वर योजना के लिए स्वराधार आवश्यक था। प्राचीनकाल में एकतन्त्री वीणा का विशेष प्रचलन था। परन्तु जैसे–जैसे भारतीय संगीत में स्वरों का व इन पर आधारित संगीत का क्रमशः विकास होता गया वैसे–वैसे स्वर–सम्वाद तथा स्वराधार की आवश्यकता अनुभव होने लगी। फलतः एकतन्त्री वीणा के स्थान पर द्वीतन्त्री, त्रीतन्त्री वीणा के प्रकारों का प्रचार होने लगा। आज हमें ''पाणिनीय शिक्षा'' में वर्णित ''अलाबू वीणा'' का परिवर्तित रूप चार तार वाला ''तम्बूरा'' दिखाई देता है।

यह एक महत्वपूर्ण तार वाद्य है। इसे आज ''तानपूरा'' कहकर भी पुकारा जाता है। इसका प्रयोग गूंज अर्थात् स्वर मेल के लिए किया जाता है। अपनी इस प्रभावित गूंज के कारण ही यह वाद्य गायन संगीत का आधारभूत वाद्य माना जाता है। गायक अपने गले के अनुसार इसमें अपना स्वर कायम कर लेता है और फिर इसकी झंकार के सहारे अपना गायन करता है। तानपूरे के साथ गायन करने से आवाज़ अपनी स्वभाविकता में रहती है। इसी कारण ही तानपूरे को गायन संगीत का मूलाधार माना गया है। उत्तर तथा दक्षिण दोनों संगीत पद्धतियों में तम्बूरे का प्रयोग गायन, वादन तथा नृत्य तीनों के साथ स्वर मेल के लिए किया जाता है।

इस वाद्य का उद्‌भव कब और कैसे हुआ, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। भारत के प्राचीन तथा मध्ययुगीन चित्रों तथा शिल्पों में कहीं भी इस वाद्य का चित्र प्राप्त नहीं होता। प्राचीन काल में गायक के साथ स्वर देने के लिए एकतन्त्री एवं द्वीतन्त्री जैसी वीणाओं की तन्त्रियों को निरन्तर छेड़ा जाता था जिससे गायक का ध्यान आरम्भिक स्वर पर सदा केन्द्रित रहे। प्रतीत होता है कि इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए संवाद–सिद्धांत के आधार पर चार तन्त्री वाला तम्बूरा प्रचार में आया होगा।

कुछ लोग इसे तुम्बरू की वीणा मानते हैं जो सही प्रतीत नही होता। क्योंकि तुम्बरू की वीणा का नाम ''कलावती'' था और इसमें 9 तारें होती थी। प्राचीन तथा अन्य संस्कृत ग्रन्थों में ''तुम्बी वीणा''या ''तुम्ब वीणा'' के नाम से वाद्यों का उल्लेख हुआ है जिससे तम्बूरे की उत्पत्ति की कल्पना की जा सकती है। परन्तु मध्य युग तक ऐसे तुम्ब वाद्य एक से लेकर अनेक तंत्रियों वाले रहे हैं और उनमें प्रायः सभी पर ''रबाव'' तथा ''सरोद'' की भान्ति गीतों का वादन किया जाता रहा है। अतः इन तुम्ब वीणाओं से तम्बूरे की उत्पत्ति मानना समुचित प्रतीत नही होता।

कहते हैं कि इस वाद्य में चार तारों को चढ़ाने का क्रमिक विकास हुआ। लेकिन आजकल कहीं 2, 5 तथा 6 तारों का तानपूरा भी प्रचलित है। तानपूरे में जो तारें प्रयोग की जाती हैं वे पीतल और स्टील की होती हैं। तानपूरे में अधिकतर चार तारें प्रयोग की जाती हैं। जिनमें से बीच की दो तारों को जोड़ा भी कहा जाता है। इन चारों तारों को षड़ज–पंचम भाव में मिलाया जाता है। जिन रागों में पंचम स्वर नही लगता उनमें इन तारों को षड़ज–मध्यम भाव में मिलाया जाता है। इसी प्रकार यदि राग में तीव्र मध्यम भी लग रहा हो जैसे कि राग पुरिया या मारवा इत्यादि, तो पंचम के तार को गान्धार या निषाद स्वर में इच्छानुसार मिला लिया जाता है।

8.5.1 तानपूरे के भाग :–

तानपूरा भी अनेक भागों को मिलाकर बनता है। इस वाद्य के विभिन्न भाग इस प्रकार हैं–

1. **तुम्बा :–** तानपूरे का यह भाग कद्दू या लौकी का बना होता है। यह अन्दर से खोखला होता है जिसे एक ओर से काट कर चपटा कर दिया जाता है। इस वाद्य के खोखलेपन पर इसकी गूंज निर्भर करती है। तानपूरे के तुम्बे की परिधि लगभग 90 सेंटीमीटर होती है।
2. **तबली :–** यह साधारणतया तून की लकड़ी की बनी होती है। इसे तुम्बे के ऊपरी चपटे भाग पर लगाया जाता है।
3. **ब्रिज या घुड़च :–** तबली पर टिकी हाथी दांत की बनी छोटी सी चौकी जिस पर तानपूरे के चारों तार स्थित रहते हैं, उसे ''घोड़ी'', ''घुड़च'' या ''ब्रिज'' कहा जाता है।
4. **डाँड :–** लकड़ी का खोखला लम्बा सा डण्डा जो तुम्बे के साथ जुड़ा रहता है तथा जिसमें तार व खूँटियाँ लगी होती हैं, उसे ''डांड'' कहते हैं। तानपूरे की कुल लम्बाई लगभग 150 सेंटीमीटर होती है।
5. **लंगोट :–** तुम्बे की पैंदी में लगी हुई फट्टीनुमा कील को ''लंगोट'' कहते हैं। इनसे तानपूरे के तार बंधे होते हैं। यहाँ से तार आरम्भ होकर खूंटियों तक पहुँचते हैं।
6. **अटी या तारगहन :–** खूंटियों की ओर हड्डी की दो पट्टियाँ लगी होती हैं जिनमें से तानपूरे के तार खूँटियों तक पहुँचते हैं। इन्हीं पट्टियों को अटी या तारगहन या तारदान कहा जाता है।
7. **सिरा या ग्रीवा :– "**अटी'' या ''तारगहन'' के बाद तानपूरे का ऊपरी भाग ''सिरा'', ''शिर'' या ''ग्रीवा'' कहलाता है। इसे ''मुख'' या ''मस्तक'' भी कहते हैं। इसी भाग में खूँटियां लगी रहती हैं।

8. **गुलू :–** जहाँ डांड और तुम्बा जुड़े होते हैं उस स्थान को ''गुलू'' कहते हैं।
9. **खूंटियाँ :–** जिनमें तानपूरे की तारें बाँधी जाती हैं उन्हें ''खूंटियाँ'' कहते हैं। ये लकड़ी की बनी छोटी–छोटी चाबीनुमा होती हैं जिनमें तारों को लपेटा जाता है। इन खूंटियों के द्वारा तानपूरे की तारों को कसा व ढीला किया जाता है।
10. **मनका या मणका :–** ब्रिज या घोड़ी और लंगोट के बीच के तारों में जो मोती पिरोए जाते हैं उन्हें ''मनका'' कहते हैं। इनसे तारों के सूक्ष्म स्वरान्तर को ठीक किया जाता है। ये हाथी दांत के बने होते हैं लेकिन आजकल ये कांच या प्लास्टिक के बने भी मिलते हैं।
11. **ज्वारी :–** चार तारों के नीचे तथा ब्रिज के ऊपर रेशम या सूत के चार धागे लगे होते हैं जिन्हें इधर–उधर खिसकाने से झंकार की खुली आवाज़ आती है अर्थात् तारों की गूंज में वृद्धि होती है, इसे ही ''ज्वारी'' कहते हैं।
12. **तार :–** तानपूरे में पर्दे नहीं होते केवल चार तार होते हैं जिनमें से पहले तीन तार स्टील के होते हैं और चौथा तार पीतल का होता है। कुछ लोग मर्दानी या भारी आवाज़ के लिए पहला तार पीतल या ताँबे का भी प्रयोग करते हैं। विविधता की दृष्टि से कुछ लोग तानपूरे में पांच या छः तार भी लगा लेते हैं। पहला तार मध्य पंचम, अगले दो जोड़ी के तार मध्य षड़ज और चौथा तार मंद्र षड़ज से मिला होता है। ध्यान से सुनने पर इन चार तारों के छिड़ने से सातों स्वरों की ध्वनि सुनाई देती है। तानपूरा को लिटाकर या सीधा खड़ा करके बजाया जाता है।

8.5.2 तानपूरा छेड़ने की विधि :–

तानपूरा बजाने को ही ''तानपूरा छेड़ना'' कहा जाता है। पहले तार को सीधे हाथ की मध्यमा उंगली से और शेष तीन तारों को तर्जनी उंगली के अगले हिस्से से कोमल टंकोर से छेड़ा जाता है। चारों तार एक साथ नहीं छेड़े जाते अपितु एक–एक तार को लयबद्ध ढंग से क्रमशः छेड़ा जाता है और चारों तारों को छेड़ने के बाद, स्थापित लय की एक मात्रा का विश्राम दिया जाता है जिससे पिछले स्वरों की गूंज से उत्पन्न संवाद करने वाले सूक्ष्म स्वरों को कान स्पष्ट रूप से सुन सकें और ध्वनि में कोई टकराहट न हो।

8.5.3 तानपूरा की बैठक :–

भिन्न–भिन्न गायक अपनी–अपनी आदत के अनुसार तानपूरा को रखते है। कोई एक घुटना नीचा और एक घुटना ऊँचा करके वीरासन में बैठकर तानपूरा छेड़ते हैं और कोई तानपूरे को ज़मीन पर लिटाकर या आड़ा रखकर छेड़ते हैं तो कोई उसे पालथी लगाकर अपनी गोद में रखकर छेड़ते हैं। यह सब सुविधा, शोभा, ज़रूरत तथा सांगीतिक वातावरण की अभिवृद्धि के लिए किया जाता है।

इस प्रकार इस वाद्य अर्थात् तानपूरे का रूप प्राचीनकाल से धीरे–धीरे परिवर्तित होता हुआ आज विकसित रूप में हमारे सामने है। अतः हम ये कह सकते हैं कि भारतीय शास्त्रीय संगीत में ''तानपूरा'' एक महत्वपूर्ण वाद्य है। शास्त्रीय गायन इसके बिना फीका सा लगता है। ''तानपूरा'' में कोई सरगम या गीत नहीं निकाला जाता, अपितु इसके तारों को झंकृत करके संगीतकार अपने राग की आधार भूमि के रूप में इसका प्रयोग करता है। यूँ तो तानपूरा आज एक लोकप्रिय वाद्य माना जाता है लेकिन आजकल छोटे ''बॉक्स तानपूरा'' तथा ''इलैक्ट्रॉनिक तानपूरा'' भी प्रचार में आ गए हैं, फिर भी परम्परागत तूम्बा वाले ''तानपूरा'' का महत्व कम नही हुआ है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 तानपूरे का ऐतिहासिक वर्णन कीजिए।

प्र0.2 तानपूरा छेड़ने की विधि का वर्णन कीजिए।

प्र0.3 तानपूरे के किन्हीं चार अंगों का वर्णन कीजिए।

8.6 सारांश :–

हमारे संगीत में अनेक प्रकार के वाद्यों का वर्णन मिलता है। जिनमें से कुछ वाद्य शास्त्रीय संगीत से सम्बन्धित हैं तथा कुछ लोक संगीत से सम्बन्धित माने जाते हैं। वाद्यों को वर्गीकरण की दृष्टि से चार भागों में बाँटा जाता है। सुरबहार तथा तानपूरा वाद्य वर्गीकरण की दृष्टि से तत् वाद्यों की श्रेणी में आते हैं जबकि तबला अवनद् वाद्य की श्रेणी में आता है। ये तीनों ही वाद्य शास्त्रीय संगीत के वाद्य तो हैं हीं साथ ही तबला और तानपूरा वाद्य को हर प्रकार के संगीत में प्रयोग किया जा सकता है। ये दोनों ही वाद्य आज के संगीत जगत में लोकप्रिय वाद्य माने जाते हैं लेकिन सुरबहार वाद्य आज के समय में इतना लोकप्रिय वाद्य नही है।

8.7 शब्दकोष :–

1. प्रतिपादन – अनुवाद या उच्चारण।
2. खोड़ – तबले का एक भाग जिसे शरीर भी कहते हैं।
3. स्वभाविकता – प्राकृतिकता।
4. उद्‌भव –उत्पत्ति।
5. टंकोर – टंकार या आघात।
6. अभिवृद्धि – सफलता या उन्नति।

7. अनुप्राणित – प्रेरित।
8. इजाद – आविष्कार।
9. स्पर्धा –प्रतियोगिता।
10. अविछिन्न – लगातार।

8.8 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 सुरबहार में कितनी तारें होती हैं ?

उ0. इस वाद्य में चार मुख्य तारें, तीन चिकारी की तारें, कुल मिलाकर सात तारें होती हैं जो कि तुम्बे के निचले छोर पर कील या लंगोट से बंधी होती हैं। यह लंगोट हाथी दाँत की बनी एक पट्टी होती है। इस वाद्य में ग्यारह इस्पात की तरब की तारें लगी होती हैं जो कि डांड पर छोटी खूँटियों से बंधे हुए होते हैं। ये तारें तबली के ऊपर एक छोटे घुड़च पर लगी होती हैं।

प्र0.2 सुरबहार के इतिहास पर प्रकाश डालिए।

उ0. 'सुरबहार' वाद्य सितार वाद्य से मिलता–जुलता या अत्यन्त समीप का वाद्य माना जाता है। यह उत्तर भारत का तंत्री वाद्य माना जाता है। इसे 'बेस सितार' (Base Sitar) भी कहा जाता है। इस वाद्य के आविष्कार के विषय में भी अलग –अलग मत माने जाते हैं और कहा जाता है कि इस वाद्य का आविष्कार लगभग 1825 के आसपास हुआ।

एक मत के अनुसार इस वाद्य के आविष्कारक उमराऊ खान बीनकार माने जाते हैं। कुछ का मत है कि इस वाद्य की उत्पत्ति लखनऊ के उस्ताद गुलाम मुहम्मद द्वारा की गई, ये उमराऊ खान के शिष्य थे। कुछ विद्वान इस वाद्य की खोज का श्रेय उस्ताद साहबदाद खान को देते हैं।

सुरबहार वाद्य एक बड़े आकार के सितार की तरह का वाद्य लगता है और इसे सितार की तरह ही बजाया जाता है। इसमें एक चौड़ा और गोलाकार तुम्बा लगा होता है, जो कि आकार में बहुत बड़ा होता है। इस तुम्बे को तबली से ढका जाता है। तुम्बे के साथ डांड लगी होती है। जिस पर 19 के लगभग सारिकाएं या पर्दे लगे होते हैं। जिन्हें रेशम के धागों से बांधा जाता है।

इस वाद्य में चार मुख्य तारें, तीन चिकारी की तारें, कुल मिलाकर सात तारें होती हैं जो कि तुम्बे के निचले छोर पर कील या लंगोट से बंधी होती हैं। यह लंगोट हाथी दाँत की बनी एक पट्टी होती है। इस वाद्य में ग्यारह इस्पात की तरब की तारें लगी होती हैं जो कि डांड पर छोटी खूँटियों से बंधे हुए होते हैं। ये तारें तबली के ऊपर एक छोटे घुड़च पर लगी होती हैं।

सुरबहार वाद्य तून या टीक वुड (लकड़ी) से बनाया जाता है। इस वाद्य की लम्बाई 51 इंच के लगभग होती है। यह वाद्य भार में सितार से भारी होता है। एक भारी तंत्री वाद्य होने के कारण इस वाद्य की ध्वनि गम्भीर होती है।

इस वाद्य की ध्वनि गम्भीर होने के कारण इसके साथ गम्भीर शैली का ही ताल वाद्य पखावज बजाया जाता है। इस वाद्य की गम्भीर प्रकृति के कारण इस पर ध्रुपद शैली भी बजाई जाती है।

इस वाद्य की पहली कलाकार श्री मति अन्नपूर्णा थीं। जो कि अलाऊदीन खाँ की बेटी तथा पं0 रवि शंकर की पत्नी थीं। इन्हें रोशनआरा खान के नाम से भी जाना जाता है। इनके अतिरिक्त उमराव खाँ, सज्जाद खाँ, बलराम पाठक तथा इनायत खाँ इत्यादि इस वाद्य के कलाकार रहे हैं।

एक भारी वाद्य होने के कारण इस वाद्य का वादन थोड़ा कठिन माना जाता है। यही कारण है कि यह वाद्य आज अधिक लोकप्रिय नहीं हो पाया।

प्र0.3 तबले की उत्पत्ति के विषय में बताइए।

उ0. **तबले की उत्पत्ति :–**

तबले की उत्पत्ति और विकास के सम्बन्ध में कई मतों का प्रतिपादन किया गया है। एक मत के अनुसार भारत में पौराणिक काल में दो भिन्न ध्वनियों वाले नगाड़ों का वादन होता था, जिन्हें ''संबल'' कहते थे। इनमें से एक को नर तथा दूसरे को मादा कहा जाता था। बहुत सम्भव है कि तबले की जोड़ी की उत्पत्ति का आधार यही वाद्य रहा हो।

कुछ ग्रन्थकारों के मतानुसार दिल्ली के भगवान दास तथा सिद्धार खाँ दो पखावजी थे। उनमें आपस में स्पर्धा रहती थी। एक दिन क्रोध में सिद्धार खाँ ने पखावज को बीच से काट कर दो भाग कर दिए। कहते हैं इसी से तबला व डग्गा इन दो भागों के उपयोग की प्रणाली प्रारम्भ हुई। दाहिना भाग ''तबला'' तथा बाँया भाग ''डग्गा'' कहलाया। इस प्रकार तबले का आविष्कारक सिद्धार खाँ को माना गया।

तबला शब्द की उत्पत्ति फारसी के ''तब्ल'' शब्द से मानी जाती है, जिसका सामान्य अर्थ है– वह वाद्य जिसका मुख ऊपर की ओर हो तथा जिसका ऊपरी भाग सपाट हो।

तबला अवनद वाद्यों में से एक वाद्य है। बुद्ध काल में अनेक अवनद वाद्यों का उल्लेख मिलता है जिनमें डिमडिम, डमरू, दुर्दर, आदम्बर आदि अनेक अवनद वाद्य उस काल में प्रचलित थे। तबला वाद्य प्राचीन वाद्यों का ही परिवर्तित रूप है। संगीत में परिवर्तन के साथ–साथ अवनद वाद्यों में भी आवश्यकता अनुसार परिवर्तन होता गया। मध्यकाल में शास्त्रीय संगीत में ध्रुपद गीत–प्रबन्ध के साथ मृदंग अथवा पखावज जैसे अवनद वाद्यों के वादन का प्रचलन था। जब शास्त्रीय संगीत में ख्याल नामक गीत प्रकार प्रचलित हुआ तब तबला उस गीत प्रबन्ध

के साथ बजाया जाने लगा। उक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि तबला व डग्गा का प्रचलन ख्याल नामक शास्त्रीय गीत प्रबन्ध के साथ–साथ प्रारम्भ हुआ। जिसका समय 11वीं शताब्दी माना जाता है।

इस वाद्य को केवल तबला कहा जाता है जबकि इसमें दो विभिन्न प्रकार के उपकरण तबला तथा डग्गा प्रयोग होते हैं। तबला व डग्गा को ''दाँयां'' तथा ''बाँयां'' कहकर भी पुकारा जाता है। उक्त दोनों भागों को सामने रखते समय तबला दाँयीं ओर तथा डग्गा बाँयीं ओर रखा जाता है। इसीलिए इसे ''दाँयां व बाँयां'' भी कहा जाता है। इन दोनों उपकरणों का समाविष्ट नाम **''तबला''** प्रचलित हो गया। इन दोनों भागों के आकार–प्रकार में भिन्नता पाई जाती है।

प्र0.4 तबले के किन्हीं चार अंगों का वर्णन कीजिए।

उ0. तबला व डग्गा को ''दाँयां'' तथा ''बाँयां'' कहकर भी पुकारा जाता है। उक्त दोनों भागों को सामने रखते समय तबला दाँयीं ओर तथा डग्गा बाँयीं ओर रखा जाता है। इसीलिए इसे ''दाँयां व बाँयां'' भी कहा जाता है। इन दोनों उपकरणों का समाविष्ट नाम **''तबला''** प्रचलित हो गया। इन दोनों भागों के आकार–प्रकार में भिन्नता पाई जाती है। तबले के अंग या भाग :–

1. **खोड :–** ये शीशम, बीजासार, खैंर, आम व बबूल आदि वृक्षों की लकड़ी से बनता है। इस भाग का घेरा नीचे से चौड़ा तथा ऊपर की ओर बढ़ता हुआ कम हो जाता है। इसका बाहर और अन्दर का भाग जितना मुलायम तथा अधिक साफ होता है, उतना ही इसे अधिक उपयुक्त माना जाता है।
2. **पूड़ी :–** यह चमड़े की बनी होती है। इसके लिए भिन्न–भिन्न पशुओं के चमड़े का प्रयोग किया जाता है। लेकिन इसमें अधिकतर बकरी के चमड़े का प्रयोग ही किया जाता है। पूड़ी खोड़ के ऊपरी हिस्से पर लगाई जाती है।
3. **स्याही :–** पूड़ी के मध्य भाग में काले गोलाकार भाग को ''स्याही'' कहते हैं। यह एक विशिष्ट प्रकार से तैयार किया हुआ मसाला होता है। इसे पूड़ी के ऊपर बीचों–बीच पक्का जमाया जाता है। इस स्याही के द्वारा ही तबले से उपयुक्त अक्षरों की नाद ध्वनि स्पष्ट और मधुर बजती है। यदि तबले की पूड़ी पर स्याही न लगी हो तो तबले में बजाए जाने वाले बोलों की ध्वनि उत्पन्न ही नहीं होगी।
4. **चाँटी :–** यह चमड़े की बनी एक पट्टी सी होती है जो पूड़ी के चारों ओर लगी होती है। इसे पूड़ी का ही एक भाग माना जाता है। तबले में बजाए जाने वाले कुछ विशेष बोल इसी चाँटी पर बजाए जाते हैं।

प्र0.5 तानपूरे का ऐतिहासिक वर्णन कीजिए।

उ0. **तानपूरा का ऐतिहासिक वर्णन :–**

प्रचलित तानपूरा शब्द को तंबूरा शब्द का अपभ्रंश रूप कहा जा सकता है। कहते हैं कि तुमरू नामक गन्धर्व द्वारा इस वाद्य का आविष्कार किया गया था और इन्हीं तुमरू ऋषि के नाम पर इसे ''तम्मूरा'' या ''तम्बूरा'' कहा

गया। पाणिनीय शिक्षा में ''अलाबू'' नामक द्वीतंत्री वीणा का उल्लेख मिलता है। अलाबू का अर्थ है ''तुम्बा''। अतः तुम्बे पर विशिष्ट रूप से आश्रित इस वाद्य को ''तम्बूरा'' कहना अधिक उचित है।

वैदिक काल में सामगान के साथ अविछिन्न स्वर–गुंजन होता रहे इसी कारण से वीणा का प्रयोग किया जाता था। यह सर्वविदित है कि सामगायन की चतुःस्वर योजना के लिए स्वराधार आवश्यक था। प्राचीनकाल में एकतन्त्री वीणा का विशेष प्रचलन था। परन्तु जैसे–जैसे भारतीय संगीत में स्वरों का व इन पर आधारित संगीत का क्रमशः विकास होता गया वैसे–वैसे स्वर–सम्वाद तथा स्वराधार की आवश्यकता अनुभव होने लगी। फलतः एकतन्त्री वीणा के स्थान पर द्वीतन्त्री, त्रीतन्त्री वीणा के प्रकारों का प्रचार होने लगा। आज हमें ''पाणिनीय शिक्षा'' में वर्णित ''अलाबू वीणा'' का परिवर्तित रूप चार तार वाला ''तम्बूरा'' दिखाई देता है।

यह एक महत्वपूर्ण तार वाद्य है। इसे आज ''तानपूरा'' कहकर भी पुकारा जाता है। इसका प्रयोग गूंज अर्थात् स्वर मेल के लिए किया जाता है। अपनी इस प्रभावित गूंज के कारण ही यह वाद्य गायन संगीत का आधारभूत वाद्य माना जाता है। गायक अपने गले के अनुसार इसमें अपना स्वर कायम कर लेता है और फिर इसकी झंकार के सहारे अपना गायन करता है। तानपूरे के साथ गायन करने से आवाज़ अपनी स्वभाविकता में रहती है। इसी कारण ही तानपूरे को गायन संगीत का मूलाधार माना गया है। उत्तर तथा दक्षिण दोनों संगीत पद्धतियों में तम्बूरे का प्रयोग गायन, वादन तथा नृत्य तीनों के साथ स्वर मेल के लिए किया जाता है।

इस वाद्य का उद्भव कब और कैसे हुआ, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। भारत के प्राचीन तथा मध्ययुगीन चित्रों तथा शिल्पों में कहीं भी इस वाद्य का चित्र प्राप्त नहीं होता। प्राचीन काल में गायक के साथ स्वर देने के लिए एकतन्त्री एवं द्वीतन्त्री जैसी वीणाओं की तन्त्रियों को निरन्तर छेड़ा जाता था जिससे गायक का ध्यान आरम्भिक स्वर पर सदा केन्द्रित रहे। प्रतीत होता है कि इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए संवाद–सिद्धांत के आधार पर चार तन्त्री वाला तम्बूरा प्रचार में आया होगा।

कुछ लोग इसे तुम्बरू की वीणा मानते हैं जो सही प्रतीत नही होता। क्योंकि तुम्बरू की वीणा का नाम ''कलावती'' था और इसमें 9 तारें होती थी। प्राचीन तथा अन्य संस्कृत ग्रन्थों में ''तुम्बी वीणा''या ''तुम्ब वीणा'' के नाम से वाद्यों का उल्लेख हुआ है जिससे तम्बूरे की उत्पत्ति की कल्पना की जा सकती है। परन्तु मध्य युग तक ऐसे तुम्ब वाद्य एक से लेकर अनेक तंत्रियों वाले रहे हैं और उनमें प्रायः सभी पर ''रबाव'' तथा ''सरोद'' की भान्ति गीतों का वादन किया जाता रहा है। अतः इन तुम्ब वीणाओं से तम्बूरे की उत्पत्ति मानना समुचित प्रतीत नही होता।

कहते हैं कि इस वाद्य में चार तारों को चढ़ाने का क्रमिक विकास हुआ। लेकिन आजकल कहीं 2, 5 तथा 6 तारों का तानपूरा भी प्रचलित है। तानपूरे में जो तारें प्रयोग की जाती हैं वे पीतल और स्टील की होती हैं। तानपूरे में अधिकतर चार तारें प्रयोग की जाती हैं। जिनमें से बीच की दो तारों को जोड़ा भी कहा जाता है। इन चारों तारों को षड़ज–पंचम भाव में मिलाया जाता है। जिन रागों में पंचम स्वर नही लगता उनमें इन तारों को

षड़ज–मध्यम भाव में मिलाया जाता है। इसी प्रकार यदि राग में तीव्र मध्यम भी लग रहा हो जैसे कि राग पुरिया या मारवा इत्यादि, तो पंचम के तार को गान्धार या निषाद स्वर में इच्छानुसार मिला लिया जाता है।

प्र0.6 तानपूरा छेड़ने की विधि का वर्णन कीजिए।

उ0. **तानपूरा छेड़ने की विधि :–**

तानपूरा बजाने को ही ''तानपूरा छेड़ना'' कहा जाता है। पहले तार को सीधे हाथ की मध्यमा उंगली से और शेष तीन तारों को तर्जनी उंगली के अगले हिस्से से कोमल टंकोर से छेड़ा जाता है। चारों तार एक साथ नहीं छेड़े जाते अपितु एक–एक तार को लयबद्ध ढंग से क्रमशः छेड़ा जाता है और चारों तारों को छेड़ने के बाद, स्थापित लय की एक मात्रा का विश्राम दिया जाता है जिससे पिछले स्वरों की गूंज से उत्पन्न संवाद करने वाले सूक्ष्म स्वरों को कान स्पष्ट रूप से सुन सकें और ध्वनि में कोई टकराहट न हो।

प्र0.7 तानपूरे के किन्हीं चार अंगों का वर्णन कीजिए।

उ0.

1. **खूंटियाँ :–** जिनमें तानपूरे की तारें बाँधी जाती हैं उन्हें ''खूंटियाँ'' कहते हैं। ये लकड़ी की बनी छोटी–छोटी चाबीनुमा होती हैं जिनमें तारों को लपेटा जाता है। इन खूंटियों के द्वारा तानपूरे की तारों को कसा व ढीला किया जाता है।

2 मनका या मणका :– ब्रिज या घोड़ी और लंगोट के बीच के तारों में जो मोती पिरोए जाते हैं उन्हें ''मनका'' कहते हैं। इनसे तारों के सूक्ष्म स्वरान्तर को ठीक किया जाता है। ये हाथी दांत के बने होते हैं लेकिन आजकल ये कांच या प्लास्टिक के बने भी मिलते हैं।

3 ज्वारी :– चार तारों के नीचे तथा ब्रिज के ऊपर रेशम या सूत के चार धागे लगे होते हैं जिन्हें इधर–उधर खिसकाने से झंकार की खुली आवाज़ आती है अर्थात् तारों की गूंज में वृद्धि होती है, इसे ही ''ज्वारी'' कहते हैं।

4 तार :– तानपूरे में पर्दे नहीं होते केवल चार तार होते हैं जिनमें से पहले तीन तार स्टील के होते हैं और चौथा तार पीतल का होता है। कुछ लोग मर्दानी या भारी आवाज़ के लिए पहला तार पीतल या ताँबे का भी प्रयोग करते हैं। विविधता की दृष्टि से कुछ लोग तानपूरे में पांच या छः तार भी लगा लेते हैं। पहला तार मध्य पंचम, अगले दो जोड़ी के तार मध्य षड़ज और चौथा तार मंद्र षड़ज से मिला होता है। ध्यान से सुनने पर इन चार तारों के छिड़ने से सातों स्वरों की ध्वनि सुनाई देती है। तानपूरा को लिटाकर या सीधा खड़ा करके बजाया जाता है।

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. संगीत विशारद, बसंत, संगीत कार्यालय हाथरस, उ.प्र.।

2. भारतीय संगीत का इतिहास, भगवत शरण शर्मा, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ.प्र.।

3. पं0 लालमणी मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य।

4. भारतीय संगीत (एक ऐतिहासिक विश्लेषण), प्रो0 स्वतंत्र शर्मा, अभिनव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद, 2014।

8.10 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 तबला वाद्य की उत्पत्ति तथा आकार–प्रकार का वर्णन कीजिए ।

प्र0.2 सुरबहार वाद्य का ऐतिहासिक विवेचन कीजिए।

प्र0.3 तानपूरा की उत्पत्ति कब और कैसे हुई ? तानपूरा की वादन विधि और महत्व का वर्णन कीजिए।

:–:–:–:–:–:–:

LESSON – 9

Historical Knowledge of the following Instruments:

Violin, Shahnai, Bansuri, Pakhawaj

STRUCTURE :

9.1 भूमिका

9.2 उदेश्य

9.3 वायलिन

9.3.1 वायलिन या बेला के भाग

9.3.2 वायलिन की तंत्रियां

9.4 शहनाई

9.4.1 आकार–प्रकार

9.5 बाँसुरी

9.5.1 भरत के अनुसार सात स्वरों को बाँसुरी पर बजाने की विधि

9.5.1.1 वक्रमुक्तांगली

9.5.1.2 कम्पमान अंगुली

9.5.1.3 अर्ध मुक्तांगली

9.6 पखावज

9.6.1 पखावज की उत्पत्ति तथा ऐतिहासिक विकास

9.6.2 प्राचीन इतिहास के अनुसार

9.7 सारांश

9.8 शब्दकोष

9.9 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

9.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

9.11 महत्वपूर्ण प्रश्न

9.1 भूमिका :–

भारतीय समाज तथा संस्कृति धर्म प्रधान है। हम भारतीय संस्कृति के किसी भी पक्ष का अध्ययन करें, उसे धर्म से अनुप्राणित पाएंगे। संगीत भी भारतीय विचारधारा की इस विशेषता से प्रभावित हुए बिना नही रह सका है। यही कारण है कि संगीत के आदि विद्वानों व शास्त्रकर्ताओं ने उसे नाद वेद की संज्ञा देकर, उसकी उत्पत्ति सृष्टिकर्ता ब्रह्मा द्वारा बताई है।

आदिकाल से भारतीय संगीत में वाद्यों का अपना विशिष्ट स्थान रहा है। अजन्ता, ऐलोरा और ऐलिफैन्टा की चित्रकारी, मोहनजोदड़ो के अवशेष तथा आदिकालीन ग्रन्थ सामवेद इसके प्रमाण स्वरूप हैं। सुरबहार, तबला और तानपूरा हमारे संगीत में विशेष स्थान रखते हैं। इन वाद्यों का ऐतिहासिक वर्णन इस प्रकार है ––

9.2 उदेश्य

भारतीय संगीत गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों का सम्मिलित रूप है। भारतीय संगीत में जितना स्थान गायन–वादन शैलियों का है उतना ही इनके साथ ताल या लय के लिए प्रयोग होने वाले वाद्यों का भी है। वाद्य हमारे संगीत में प्राण फूंकने का कार्य करते हैं। यदि वाद्य न होते तो हमारा संगीत कहीं आत्मा रहित लगता। अतः इस पाठ का उदेश्य यही है कि हम यह जान पाएं कि वाद्यों का उद्‌गम कैसे हुआ, इनका इतिहास क्या है और ये किस प्रकार संगीत में प्रयोग किए जाते हैं तथा इनका आकार–प्रकार क्या है।

9.3 वायलिन :–

वायलिन एक विदेशी वाद्य है। जिसे भारत में बेला कह कर भी पुकारा जाता है। गज से बजने वाले समस्त वाद्यों में आज इस वाद्य को प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता है। इस यन्त्र की उत्पत्ति और आविष्कार के विषय में विभिन्न मत पाए जाते हैं।

वायलिन वाद्य को कुछ मतानुसार विदेशी वाद्य माना जाता है। उनके मतानुसार इस वाद्य का आविष्कार यूरोप में 16वीं शताब्दी के मध्य में हुआ और तभी से यह प्रचार में है।

कुछ लोगों का मत यह है कि वायलिन एक भारतीय वाद्य है और इसे भारत में 'बेला' कह कर पुकारा जाता है। इस मत के अनुयायियों का कहना है कि लंकापति रावण ने एक तार वाला एक वाद्य बनाया था, जिसे गज जैसी चीज़ से बजाया जाता था। इस वाद्य को 'रावणास्त्रम्' या 'रावण हत्था' कह कर पुकारा जाता था। इसके पश्चात् 11वीं शताब्दी के अंत में यह वाद्य भारत हो कर परशिया, अरेबिया तथा स्पेन होता हुआ यूरोप पहुँचा। कहा जाता है कि यहाँ पर इस वाद्य में परिवर्तन करके वर्तमान वायलिन के रूप में इसका विकास किया गया।

एक पाश्चात्य विद्वान के अनुसार लगभग 400 वर्ष पूर्व यूरोप में 'वायोला' नामक एक वाद्य यंत्र का आविष्कार हुआ, जिसका प्रचार 16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक रहा। कहा जाता है कि बाद में इसी वायोला वाद्य के आधार पर वायलिन बनाया गया।

एक और मत के अनुसार 1563 ई0 में वेनिस नगर के एक ग्रामीण 'लीनारोनी' ने 'टेनर वायलिन' का आविष्कार किया था। उसी के आधार पर इटली के दो कलाकारों ने इसमें कुछ और विशेषताएं सम्मिलित करके इसे एक नवीन रूप दिया। कुछ विद्वान इस वाद्य को जर्मनी का आविष्कार भी बताते हैं। इस प्रकार बेला अर्थात् वायलिन के आविष्कार के सम्बन्ध में अनेक धारणाएं पाई जाती हैं और अधिकतर लोगों का यही मानना है कि यह एक विदेशी वाद्य है कुछ भी कहा जाए लेकिन आज यह वायलिन विदेशी वाद्य होते हुए भी पूर्ण रूप से भारतीय लगता है। भारत में आज यह वाद्य पूर्ण रूप से अपना स्थान बना चुका है और दिनों–दिन इसका प्रचार–प्रसार बढ़ता जा रहा है। आज भारत में अनेक महान और अच्छे वायलिन वादक हैं जो इस वाद्य को आज एकल और सामूहिक वादन वाद्य के रूप में आगे बढ़ा रहे हैं।

9.3.1 वायलिन या बेला के विभिन्न भाग :–

बॉडी (Body) :–

इसे वायलिन का शरीर भी कहा जाता है। यह भाग अन्दर से खोखला होने के कारण इसमें आवाज़ गूँजती है। वायलिन के इस भाग को 'बेली' भी कहा जाता है।

रिब्ज़ :–

शरीर या बॉडी के चारों ओर प्लाईवुड के अनेक पतले टुकड़ों से बेली व रिब्ज़ का जोड़ करके अर्न्तभाग को खोखला बनाया जाता है।

गर्दन :–

यह लकड़ी की पतली तथा लम्बी सी डांड होती है। जिसके ऊपर से तारें बेली की ओर जाती दिखाई देती हैं। इसे नैक (NECK)भी कहते हैं।

घुड़च :–

यह हाथी दांत या लकड़ी की बनी होती है। जिसे बेली पर स्थिर किया जाता है।

टेल पीस :–

यह लकड़ी की एक छोटी सी पट्टी होती है जो कि बेली या शरीर के निचले हिस्से पर लगी होती है, जिससे इस वाद्य के चार तार बांधे जाते हैं।

अडजैस्टर :–

टेलपीस के चार छिद्रों में जो चार तार बांधे होते हैं उनमें से प्रत्येक तार पर एक पेच होता है जिनका प्रयोग तार की ध्वनि को नियन्त्रित करने हेतु प्रयोग किया जाता है।

बटन :–

यह लकड़ी के गोलाकार बटन जैसी वस्तु होती है जिसमें टैली पीस को ताँत द्वारा बांधा जाता है।

साऊंड होल्ज़ :–

बेली पर घोड़ी या घुड़च के दोनों ओर 'एफ' अक्षर के समान दो छिद्र होते हैं जिन्हें 'साऊंड होल्ज़' कहा जाता है।

साऊंड पोस्ट :–

घोड़ी के नीचे डेढ इंच की एक गोलाकार लकड़ी लगी होती है जो साऊंड होल्ज़ में से देखी जाती है, इसे ही 'साऊंड पोस्ट' कहा जाता है।

चिन रेस्ट :–

यह लकड़ी या धातु का एक टुकड़ा होता है जिसे बेली से सटा कर कसा जाता है। जिस पर कभी–कभी ठोड़ी को रख कर कलाकार वादन करता है।

फिंगर बोर्ड :–

यह लकड़ी की बनी हुई 4–5'' लम्बी डांड होती है। जिस पर उंगलियों के द्वारा तारों को दबाकर स्वर उत्पन्न किए जाते हैं।

पेग बाक्स :–

खूंटियाँ स्थिर करने का यह स्थान अन्दर से पोला होता है, इसी स्थान को 'पेग बाक्स' कहा जाता है।

खूंटियाँ :–

पेग बाक्स के दोनों ओर खूंटियां लगाई जाती हैं। खूंटी में एक–एक छेद होता है जिसमें से तार पिरोकर बटन से बांधी जाती है।

तार या तंत्री :–

इसमें चार तारों का प्रयोग होता है। ये तारे सिल्वर या ऐल्युमिनियम की बनी होती हैं।

गज :–

यह लकड़ी की बनी एक लम्बी छड़ी होती है। जिसमें घोड़े की पूंछ के बाल बंधे होते हैं। इसमें एक ओर एक पेच लगा होता है, जिससे बालों को आवश्यकता अनुसार कसा या ढीला किया जा सकता है।

9.3.2 वायलिन की तंत्रियां :–

वायलिन में चार तार लगे होते हैं। जिन्हें तीन प्रकार से मिलाया जाता है –––

1. ' प़ सा, प सां ' क्रम से चार स्वरों में चारों तार।
2. ' म़ सा, प रें 'क्रम से चारों तार।
3. ' सा़ प, सा प ' क्रम से चार स्वरों में चारों तार।

इस प्रकार वायलिन एक मधुर और लोकप्रिय वाद्य है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 वायलिन की तंत्रियों का वर्णन कीजिए।

प्र0.2 वायलिन के किन्हीं चार भागों का वर्णन कीजिए।

9.4 शहनाई :–

'शहनाई' एक मधुर तथा लोकप्रिय वाद्य है। जिसका प्रयोग लोक संगीत से लेकर शास्त्रीय संगीत तक होता है। इस वाद्य का प्रयोग मन्दिरों, देवी–देवताओं के उत्सवों, मेले– त्यौहारों तथा विवाह आदि के अवसरों पर विशेष रूप से किया जाता है। इस वाद्य की ध्वनि को शुभ और पवित्र माना जाता है।

हमारे सम्पूर्ण भारत देश में शहनाई वाद्य किसी न किसी रूप में प्रचलित है। दक्षिण भारत में इस वाद्य को 'नाद स्वरम्' कह कर पुकारा जाता है। इस नाद स्वरम् वाद्य के दक्षिण भारत में कई छोटे–बड़े प्रकार होते हैं।

शहनाई की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों के अलग–अलग मत पाए जाते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि यह वाद्य पुंगी वाद्य के आधार पर बना है। कुछ विद्वानों का मानना है कि इस वाद्य को शहनाई से पहले 'सुरनाल' कहकर पुकारा जाता था, जिसका अर्थ था ऐसी नली जिससे स्वर उत्पन्न हों। य146ंता सुरनाल शब्द कई भारतीय वाद्यों के लिए प्रयोग किया जाता था जो कि फूंक द्वारा बजाए जाते थे। पहले समय में इन फूंक वाले वाद्यों को सुरना, ज़र्ना आदि कहकर भी पुकारा जाता था।

कुछ विद्वानों का मानना है कि इस वाद्य का प्रचार 16वीं शताब्दी से हुआ। लेकिन कुछ विद्वान बताते हैं कि 13वीं शताब्दी के 'संगीत रत्नाकर' नामक ग्रन्थ में भी एक शहनाई जैसे वाद्य का वर्णन मिलता है जिसे 'मधुकरी' कहकर पुकारा जाता है। यह मधुकरी वाद्य 28 अंगुल लम्बा होता था। जिसमें सात छिद्र ऊपर की ओर तथा एक छिद्र नीचे की ओर होता था। कहा जाता है कि नीचे का छिद्र केवल मधुरता लाने के लिए होता था। यह वाद्य धतुरे के फूल के आकार जैसा होता था। इस वाद्य के पिछले हिस्से पर चार अंगुल लम्बी ताँबे की नली होती थी। इस नली में ताड़ पत्र या काँसा धातु की पत्ती दूध में भिगोकर लगाई जाती थी ओर फिर इस पत्ती के साथ पिछले सिरे से फूंक भर कर इस वाद्य को बजाया जाता था।

इसी वाद्य से मिलता–जुलता एक और वाद्य भी मिलता है जिसें 'सुनादि' नाम से पुकारा जाता था। जो कि 17वीं शताब्दी का प्रचलित वाद्य माना जाता है। इस वाद्य का वर्णन हमें पं0 अहोबल के ग्रन्थ में मिलता है।

शहनाई की उत्पत्ति के विषय में यह भी कहा जाता है कि इस वाद्य का नाम 'शाह+नाई' से बना। जिसमें शाह का अर्थ है 'रॉयल या विशेष'। इसलिए इसके अर्थ की दुष्टि से यह कहा जाता है कि यह वाद्य पहली बार शाह के कक्षों में बजाया जाता था और इसे नाई द्वारा बजाया जाता था। कहते हैं कि इसी कारण इस वाद्य का नाम शहनाई पड़ा।

इस प्रकार इस वाद्य का आविष्कारक कौन है इसके विषय में मतभेद ही पाए जाते हैं। लेकिन जो भी हो आज शहनाई वाद्य एक प्रचलित लोकप्रिय वाद्य माना जाता है। लोक संगीत में तो यह वाद्य बहुत ही पुराने समय

से प्रयोग होता आ रहा है। मंदिरों और मांगलिक अवसरों पर जो लोग शहनाई बजाते थे उन्हें 'बजंत्री' कहकर पुकारा जाता था।

पुराने समय से ही यह वाद्य प्रचार में रहा है। इस वाद्य का प्रयोग राज–दरबारों और शाही दरबारों में अधिक होता था। यहाँ तक की अकबर के नौबत–खाने में तो यह वाद्य अपनी एक अलग ही विशेषता रखता था।

पहले समय में तो यह वाद्य केवल मंदिरों, मांगलिक अवसरों पर ही बजाया जाता था। कहने का तात्पर्य यह है कि यह केवल एक लोक वाद्य के रूप में ही जाना जाता था। आगे चल कर यह वाद्य शास्त्रीय संगीत का भी एक मुख्य वाद्य बन गया। जिसका पूरा श्रेय उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ को जाता है। इन्हीं के प्रयत्न से यह वाद्य आज भारत के अन्य वाद्यों के साथ–साथ शास्त्रीय संगीत के प्रमुख वाद्यों में से एक है।

9.4.1 आकार–प्रकार :–

इस वाद्य के तीन भाग होते हैं ––– नली या नलिका, मुख नलिका और छिद्र।

इस वाद्य का निर्माण ध्वनि के उन्हीं सिद्धांतों पर हुआ है जिन पर बाँसुरी का। लेकिन इस वाद्य का शरीर या नली बाँसुरी से भिन्न होती है। इसकी नली गोलाकार होती है जो कि लकड़ी से बनी होती है। यह आगे से फूल के आकार की तथा चौड़ी होती है और पीछे की ओर जाते यह चौड़ाई कम होती जाती है। इसकी लम्बाई लगभग 22 इंच लम्बी होती थी लेकिन अब धीरे–धीरे कम होकर यह 16 इंच ही रह गई है। इसकी गोलाई लगभग 30 से 52 सेंटीमीटर होती है। इसमें सात छिद्र होते हैं।

इस वाद्य को फूंक भर कर बजाया जाता है। इसमें फूंक भरने के लिए मुखनलिका का प्रयोग किया जाता है जो कि शहनाई का पीछे का भाग होता है। इस मुख नलिका में धातु की पत्ती लगाकर फूंक भरी जाती है। जिससे इस वाद्य के खोखले हिस्से से वायु प्रवाहित होकर छिद्रों के माध्यम से स्वर रूप में प्रकट होते हैं। इस प्रकार नलिका, मुख नलिका और छिद्रों इन तीनों भागों के मिलन से यह वाद्य बनता है।

शहनाई वाद्य जब बजाया जाता है तो इसके साथ एक दूसरे वाद्य से निरन्तर आधार स्वर दिया जाता है। जिस शहनाई जैसे वाद्य से यह आधार स्वर दिया जाता है उसे 'सूर' कहते हैं। यह शहनाई की तरह ही दिखता है। जिसमें चार से छः तक छिद्र होते हैं। इसमें जिस स्वर का आधार देना होता है उसे खुला रखा जाता है ओर शेष छिद्रों को रूई से बंद कर दिया जाता है।

शहनाई वाद्य के मुख्य वादकों में बिस्मिल्ला खाँ, अनन्त लालू, अली अहमद हुसैन खाँ, लोकेश आनन्द, एस. बालेश, पं0 बसव राज बजंत्री, नन्द लाल देवलंकर, गणपत राव वसईकर तथा सिद्ध राम जाधव आदि प्रमुख हैं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 शहनाई की उत्पत्ति के विषय में आप क्या जानते हैं ?

प्र0.2 शहनाई के अंगों का वर्णन कीजिए।

9.5 बाँसुरी :–

महाकवि कालिदास ने 'कुमारसम्भव' में वंशी के जन्म के विषय में एक सुन्दर कल्पना की है। उनके अनुसार भंवरों द्वारा छिद्रित वंश नलिका में वायु प्रवेश के कारण उत्पन्न ध्वनि को सुन कर किन्नर इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उस छिद्रित वंश नलिका को वंश वृक्ष से अलग कर अपने मुख की वायु द्वारा उसका वादन किया और फिर उसे एक वाद्य के रूप में प्रचलित किया। वंशी का उद्‌भव चाहे किसी भी प्रकार से हुआ हो लेकिन यह वाद्य अत्यन्त प्राचीन वाद्य माना जाता है। बाँसुरी नाद उत्पन्न करने वाली वंश नलिका होने के कारण आरम्भ में इसे 'नादी' नाम से पुकारा जाता था। इस नादी नामक वंशी में कितने छिद्र होते थे इसके विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती और यह वंशी वाद्य कब प्रचार में आया इसके विषय में भी निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता लेकिन इतना अवश्य निश्चित है कि जब से सामगान का प्रारम्भ हुआ तथा सात स्वरों का विकास हुआ तभी से इस प्रकार की वंशी बन चुकी थी जिसमें सप्तक में प्रयोग होने वाले सभी स्वर उत्पन्न हो सकते थे। भरत के नाट्य शास्त्र 148 ंतो इस वाद्य का वर्णन मिलता ही है, साथ ही महाभारत महा पुराण तथा श्रीमद् भगवत आदि ग्रन्थों में भी इस वाद्य का वर्णन मिलता है जिससे यह स्पष्ट होता है कि यह वंशी वाद्य पुराने समय से हमारे संगीत में प्रचलित रहा है।

तत्, अवनद्, घन तथा सुषिर इन चार प्रकार के वाद्यों में से बाँसुरी एक सुषिर वाद्य माना जाता है। 'सुषिर' अर्थात् वायु के माध्यम से वांछित स्वरों का निर्माण किया जाना। वे वाद्य जिनमें फूंक या वायु के द्वारा स्वरों की उत्पत्ति की जाती है, उसे 'सुषिर वाद्य' कहते हैं। बाँसुरी सुषिर वाद्यों में सबसे प्राचीनतम्, मधुर तथा लोकप्रिय वाद्य रहा है। द्वापर युग के महाभारत काल में श्री कृष्ण के द्वारा बाँसुरी वाद्य का कुशलता पूर्वक प्रयोग किया गया था, ऐसा अनेक पुराणों में कहा गया है। वैदिक काल में सामगायन के साथ वेणु वादन का वर्णन मिलता है। वेणु तथा वीणा सबसे प्राचीन वाद्य माने जाते हैं। प्राचीन वैदिक ग्रन्थों 148 ंतो यहाँ तक वर्णन मिलता है कि वंशी के स्वरों के आधार पर ही वीणा के तार स्वरों में मिलाए जाते थे अर्थात् वेणु के स्वर ही गायक तथा वैणिक के लिए प्रमाणिक स्वर माने जाते थे।

वंशी वादन की परम्परा ई0 पूर्व शताब्दियों से रही है। प्राचीन चित्रों, शिल्पों एवं ग्रन्थों में इस वाद्य का उल्लेख ये स्पष्ट करता है कि यह वाद्य प्राचीनकाल से लोकप्रिय रहा है। लोक संगीत के अन्तर्गत् पहले वंशी

तीन या चार स्वरों की रही है। वहाँ से लेकर सात स्वरों वाली वंशी तक का विकास हमारी संस्कृति के विकास का द्योतक है। द्वापर युग के महाभारत काल में श्री कृष्ण द्वारा इस वाद्य का अत्यन्त कुशलता पूर्वक प्रयोग किया गया, ऐसा अनेक पुराणों व ग्रन्थों में कहा गया है। इसके वेणु, वंशी, बाँसुरी, मुरली आदि अनेक पर्याय पाए जाते हैं। कहा जाता है कि श्री कृष्ण द्वारा इस वाद्य का बहुत अधिक प्रयोग किया जाता था। इसी लिए उन्हें मुरलीधर, वंशीधर, मनमोहन वंशी वाले आदि नामों से पुकारा जाता था। भरत के नाट्य शास्त्र में भी बाँसुरी के इन अन्य नामों का उल्लेख मिलता है।

वंशी संज्ञा 'वंश' अर्थात् 'बाँस' से बनी होने के कारण सार्थक प्रतीत होती है। वंशी का ही अपभ्रष्ट रूप 'बाँसुरी' है। बाँसुरी बाँस के पोले तथा बिना गाँठ के टुकड़े से बनाई जाती है। आजकल बाँस के सीान पर लकड़ी, लोहे तथा पीतल आदि धातुओं से भी इस वाद्य का निर्माण किया जाता है। लोहे से बनी बाँसुरी जैसे वाद्य को 'अलगूजा' कहा जाता है। जिसका प्रयोग महाराष्ट्र तथा मध्य प्रदेश के कीर्तनकारों में होता है। बाँसुरी वाद्य में छः छिद्र होते हैं। मन्द्र, मध्य तथा तार, तीनों सप्तकों के सभी 12 स्वर इन्हीं छः छिद्रों से सृजित किए जाते हैं।

भरत के नाटयशास्त्र में इस सुषिर वाद्य के वादन के सम्बन्ध में बताया गया है कि मुख से बाँसुरी के मुख में हल्की या ज़ोरदार फूंक के द्वारा स्वर ध्वनियों में परिवर्तन किया जाता है। इसी प्रकार उंगलियों से छिद्रों को आधा बंद या आधा खोल कर फूंक पर नियन्त्रण कर स्वर ध्वनियों में परिवर्तन किया जाता है। भरत मुनि ने चतुःश्रुतिक 'स म प', त्रीश्रुतिक 'रे ध' तथा द्वी–श्रुतिक 'ग नि', सम्पूर्ण सात स्वरों को बाँसुरी पर बजाए जाने की विधि का भी वर्णन किया है।

9.5.1 **भरत के अनुसार सात शुद्ध स्वरों को बजाने की विधि :–**

9.5.1.1 वक्र मुक्तांग्ली :–

मुक्त उंगलियों से छिद्रों को सम्पूर्ण रूप से खोलने पर उचित फूंक के द्वारा चतुःश्रुति 'सा म प' स्वर ध्वनियां निर्मित की जाती हैं।

9.5.1.2 कम्पमान उंगली :–

उचित फूंक के द्वारा छिद्रों पर कम्पित उंगलियों से त्रीश्रुतिक 'रे ध' स्वर ध्वनियों का निर्माण किया जाता है।

9.5.1.3 अर्ध मुक्तांग्ली :–

बाँसुरी के छिद्रों को उंगलियों के द्वारा आधा बंद या आधा खोलकर उचित फूंक के द्वारा द्वीश्रुतिक 'ग नि' स्वरों का निर्माण किया जाता है।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है 150 ंतणु या बाँसुरी वादन को प्राचीन आधार प्राप्त है। मध्यकालीन संगीत ग्रन्थों में जो बाँसुरी के विषय में विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है वह भरत के नाटय शास्त्र में प्राप्त नहीं होता।

बाँसुरी एक सुषिर वाद्य है अतः इसकी सम्पूर्ण वादन क्रिया फूंक या वायु पर निर्भर करती है। जिस प्रकार कुछ तंत्री वाद्यों में पर्दे लगे होते हैं और उनमें स्वरों की उत्पत्ति उन पर्दों की सहायता से की जाती है तथा उन वाद्यों में मन्द्र, मध्य तथा तार तीनों सप्तकों का स्पष्ट संकेत रहता है। लेकिन बाँसुरी में ऐसा नही होता। इसमें केवल छः छिद्रों, उचित फूंक तथा उंगलियों के उचित रख–रखाव से सभी सात स्वरों, विकृत स्वरों तथा तीनों सप्तकों का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार अन्य वाद्यों की अपेक्षा बाँसुरी वादन एक कठिन वाद्य वादन शैली है। अतः बाँसुरी या वंशी वादन के लिए वादक को वादन क्रिया एवं सूक्ष्म स्वर ज्ञान का होना अत्यन्त आवश्यक है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 बाँसुरी में सात शुद्ध स्वरों का वादन भरत के अनुसार बताइए।

9.6 पखावज :–

पखावज एक प्राचीन भारतीय ताल वाद्ययंत्र है, जिसका व्यापक तथा एक गौरवशाली इतिहास रहा है। यह वाद्य भारतीय संगीत की ध्रुपद गायन परम्परा का महत्वपूर्ण भाग है। इस वाद्य को एक प्रतिष्ठित और महत्वपूर्ण वाद्य के रूप में जाना जाता है। कहा जाता है कि इस वाद्य का इतिहास हज़ारों वर्षों से अधिक पुराना है और आज भी यह भारतीय शास्त्रीय संगीत का महत्वपूर्ण वाद्य माना जाता है।

9.6.1 पखावज की उत्पत्ति तथा ऐतिहासिक विकास :–

पखावज की उत्पत्ति भारतीय संगीत के प्रारम्भिक समय में मानी गई है। इस वाद्य का प्रथम उल्लेख महाभारत काल में मिलता हैं, जहाँ इस वाद्य को ''मृगधम'' नाम से पुकारा जाता था। पखावज का वर्णन मतस्य पुराण में भी मिलता हैं, जहाँ इसे ''दम्बर'' नाम से जाना जाता है।

पखावज का विकास मुख्य रूप से वृन्दावन और मथुरा क्षेत्र में हुआ है। यहाँ श्रीकृष्ण और गोपियों के सांगीतिक आदर्शों ने पखावज के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

आधुनिक इतिहास के अनुसार –– ''पखावज'' पर्शियन शब्द 'पख– आवाज़' से उत्पन्न हुआ है। जिसका अर्थ है –– मध्यम ध्वनि उत्पन्न करने वाला। दूसरी ओर पख का एक और अर्थ भी बताया जाता है 'हाथों का क्षेत्र' अर्थात् अगुलियों से कोहनियों तक का क्षेत्र। अतः 'पख' का अर्थ पखावज के लिए सही बैठता है क्योंकि पखावज के वादन के लिए मज़बूत हाथ का होना यानि हाथ से लेकर कोहनियों तक का ज़ोर होना आवश्यक है।

पखावज का नाम मुगल सम्राट अकबर के समय में सामान्य प्रयोग में आया। सूरदास, नंददास आदि कई ब्रजभाषा के कवियों ने अपनी रचनाओं में इसे पखावज और मृदंग नाम से पुकारा है।

9.6.2 प्राचीन इतिहास के अनुसार :–

'पखावज' मूल प्राकृत शब्द है, जिसे संस्कृत में 'पक्षवाद्य' कहा जाता है। जो 'पक्ष' तथा वाद्य शब्द के मिलन से बना है। कहते हैं कि दोनों पक्षों से बजने के कारण मृदंग का नाम पक्षवाद्य हुआ और कालान्तर में इसे 'पखबाज' कहा जाने लगा और समय परिवर्तन के साथ आज इसें पखावज कह कर पुकारा जाता है। कहा जाता है कि 14वीं शताब्दी के समय में महान मृदंग वादकों ने मृदंग निर्माण में प्रयोग की गई सामग्री में परिवर्तन किया और अंततः मूल मिट्टी के स्थान पर मुख्य शरीर के लिए लकड़ी का प्रयोग करना शुरू किया और इस प्रकार एक नया वाद्य रूप तथ एक नया नाम पखावज प्रकट हुआ, लेकिन पखावज नाम प्रयोग होने से पुराना मृदंग नाम भी समाप्त नहीं हुआ अपितु इस वाद्य को दोनों नामों से पुकारा जाने लगा अर्थात् मृदंग और पखावज। लेकिन यह वाद्य मृदंग से कुछ छोटा होता है।

यह पारम्परिक वाद्य यंत्र उत्तर भारत के अनेक भागों में पाया जाता है। पखावज लकड़ी, चर्मपत्र , चमड़े और काले लेप से बना यह एक ताल वाद्य है। इस वाद्य का वादन ध्रुपद, धमार जैसी गायन शैलियों तथा वीणा, रबाब तथा सुरबहार आदि वाद्यों के साथ किया जाता है। नृत्य के साथ भी इस वाद्य का वादन किया जाता है। इसके अतिरिक्त पखावज को एकल वाद्य के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।

पखावज वाद्य 2 से 3 फुट लम्बा होता है जो कि खदीर, नीम तथा रक्त चन्दन आदि की लकड़ी से बनाया जाता है। इसका भीतरी भाग खोखला होता है। इसके दोनों मुखों का व्यास चार से सात इंच तक होता है। इसका दाहिना मुख अपेक्षाकृत छोटा होता है। इसके दोनों मुख चमड़े से मढ़े जाते हैं जिनके चारों ओर चमड़े की पट्टियों से गूंथ कर गजरा बनाया जाता है। इनके मुख को जो चमड़े से मढ़ा जाता है उस चमड़े को पूड़ी कहा जाता है। इस पूड़ी को चमड़े की बद्दी से कसा जाता है। इन चमड़े की पट्टियों के नीचे तथा शरीर या खोल के ऊपर आठ लकड़ी के गुटके लगाए जाते हैं, जिनका द्वारा इस वाद्य को सुर में किया जाता है। इस

वाद्य की दाहिनी पूड़ी के मध्य में एक ओर स्याही लगी होती है तथा दूसरी ओर बांए मुख पर वादन के समय ही आटे या मैदे का लेप लगाया जाता है। इस वाद्य को कलाकार लो अपनी गोद में रख कर बजाते हैं। इस वाद्य पर बजाए जाने वाले बोलों को वर्ण कहा जाता है। ये वर्ण हैं —– त, ता, दी, थुन, न, घड़, द्धे, दिग, खिड़, झे, थे तथा किट इत्यादि।

इसके प्रसिद्ध वादकों में भवानी प्रसाद सिंह जी थे जिन्हें पं0 भातखण्डे जी ने अप्रतिम पखावजी कह कर पुकारा था। इनके अतिरिक्त मुख्य कलाकारों में कुदऊ महाराज, राम शंकर पागलदास, नाना पानसे, मक्खन जी, घनश्य152 ंत, पंडित मदन मोहन, पंडित भोलानाथ पाठक, पंडित अमरनाथ मिश्र इत्यादि हैं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 4

प्र0.1 पखावज की उत्पत्ति प्राचीन इतिहास के अनुसार बताइए।

प्र0.2 पखावज की उत्पत्ति आधुनिक इतिहास के अनुसार बताइए।

9.7 सारांश :–

हमारे संगीत में अनेक प्रकार के वाद्यों का वर्णन मिलता है। वाद्यों को वर्गीकरण की दृष्टि से चार भागों में बाँटा गया है। तत्, अवनद्, घन तथा सुषिर। उपरोक्त पाठ में वर्णित वाद्य वायलिन तत वाद्य की श्रेणी में आता है। शहनाई तथा बाँसुरी सुषिर वाद्य की श्रेणी में आते हैं जबकि पखावज वाद्य अवनद् वाद्य की श्रेणी में आने वाला वाद्य है। ये चारों ही वाद्य शास्त्रीय संगीत के वाद्य तो हैं हीं साथ ही इनमें से शहनाई तथा बाँसुरी लोक वाद्य की श्रेणी में भी आते हैं। इन दोनो प्रकार के वाद्यों का प्रयोग लोक गायन–वादन शैली में भी होता है। ये सभी वाद्य शास्त्रीय संगीत में भी अपना एक अलग स्थान रखते हैं और अत्यन्त लोकप्रिय वाद्य हैं।

9.8 शब्दकोष :–

1. अनुयायियों – अनुसरण करने वाले
2. मांगलिक – शुभ या मंगलकारी
3. एकल – अकेले
4. प्रवाहित – बहता हुआ या बहना
5. कक्ष – कमरा

6. छिद्रित – जिसमें छिद्र हों
7. वैणिक – वीणा वादक
8. सृजित – रचा या बनाया गया

9.9 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 वायलिन की तंत्रियों का वर्णन कीजिए।

उ0. इसमें चार तारों का प्रयोग होता है। ये तारे सिल्वर या ऐल्युमिनियम की बनी होती हैं। वायलिन में चार तार लगे होते हैं। जिन्हें तीन प्रकार से मिलाया जाता है –––

1. ' प़ सा, प सां ' क्रम से चार स्वरों में चारों तार।
2. ' म़ सा, प रें 'क्रम से चारों तार।
3. ' सा़ प, सा प ' क्रम से चार स्वरों में चारों तार।

प्र0.2 वायलिन के किन्हीं चार भागों का वर्णन कीजिए।

उ0. **वायलिन या बेला के विभिन्न भाग :–**

बॉडी (Body) :–

इसे वायलिन का शरीर भी कहा जाता है। यह भाग अन्दर से खोखला होने के कारण इसमें आवाज़ गूँजती है। वायलिन के इस भाग को 'बेली' भी कहा जाता है।

रिब्ज़ :–

शरीर या बॉडी के चारों ओर प्लाईवुड के अनेक पतले टुकड़ों से बेली व रिब्ज़ का जोड़ करके अर्न्तभाग को खोखला बनाया जाता है।

गर्दन :–

यह लकड़ी की पतली तथा लम्बी सी डांड होती है। जिसके ऊपर से तारें बेली की ओर जाती दिखाई देती हैं। इसे नैक (NECK)भी कहते हैं।

घुड़च :–

यह हाथी दांत या लकड़ी की बनी होती है। जिसे बेली पर स्थिर किया जाता है।

प्र0.3 शहनाई की उत्पत्ति के विषय में आप क्या जानते हैं ?

उ0. शहनाई की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों के अलग–अलग मत पाए जाते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि यह वाद्य पुंगी वाद्य के आधार पर बना है। कुछ विद्वानों का मानना है कि इस वाद्य को शहनाई से पहले 'सुरनाल' कहकर पुकारा जाता था, जिसका अर्थ था ऐसी नली जिससे स्वर उत्पन्न हों। य154 ंता सुरनाल शब्द कई भारतीय वाद्यों के लिए प्रयोग किया जाता था जो कि फूंक द्वारा बजाए जाते थे। पहले समय में इन फूंक वाले वाद्यों को सुरना, ज़र्ना आदि कहकर भी पुकारा जाता था।

कुछ विद्वानों का मानना है कि इस वाद्य का प्रचार 16वीं शताब्दी से हुआ। लेकिन कुछ विद्वान बताते हैं कि 13वीं शताब्दी के 'संगीत रत्नाकर' नामक ग्रन्थ में भी एक शहनाई जैसे वाद्य का वर्णन मिलता है जिसे 'मधुकरी' कहकर पुकारा जाता है। यह मधुकरी वाद्य 28 अंगुल लम्बा होता था। जिसमें सात छिद्र ऊपर की ओर तथा एक छिद्र नीचे की ओर होता था। कहा जाता है कि नीचे का छिद्र केवल मधुरता लाने के लिए होता था। यह वाद्य धतुरे के फूल के आकार जैसा होता था। इस वाद्य के पिछले हिस्से पर चार अंगुल लम्बी ताँबे की नली होती थी। इस नली में ताड़ पत्र या काँसा धातु की पत्ती दूध में भिगोकर लगाई जाती थी ओर फिर इस पत्ती के साथ पिछले सिरे से फूंक भर कर इस वाद्य को बजाया जाता था।

इसी वाद्य से मिलता–जुलता एक और वाद्य भी मिलता है जिसें 'सुनादि' नाम से पुकारा जाता था। जो कि 17वीं शताब्दी का प्रचलित वाद्य माना जाता है। इस वाद्य का वर्णन हमें पं0 अहोबल के ग्रन्थ में मिलता है।

शहनाई की उत्पत्ति के विषय में यह भी कहा जाता है कि इस वाद्य का नाम 'शाह+नाई' से बना। जिसमें शाह का अर्थ है 'रॉयल या विशेष'। इसलिए इसके अर्थ की दुष्टि से यह कहा जाता है कि यह वाद्य पहली बार शाह के कक्षों में बजाया जाता था और इसे नाई द्वारा बजाया जाता था। कहते हैं कि इसी कारण इस वाद्य का नाम शहनाई पड़ा।

इस प्रकार इस वाद्य का आविष्कारक कौन है इसके विषय में मतभेद ही पाए जाते हैं। लेकिन जो भी हो आज शहनाई वाद्य एक प्रचलित लोकप्रिय वाद्य माना जाता है। लोक संगीत 154 ंतो यह वाद्य बहुत ही पुराने समय से प्रयोग होता आ रहा है। मंदिरों और मांगलिक अवसरों पर जो लोग शहनाई बजाते थे उन्हें 'बजंत्री' कहकर पुकारा जाता था।

पुराने समय से ही यह वाद्य प्रचार में रहा है। इस वाद्य का प्रयोग राज–दरबारों और शाही दरबारों में अधिक होता था। यहाँ तक की अकबर के नौबत–खाने 154 ंतो यह वाद्य अपनी एक अलग ही विशेषता रखता था।

पहले समय 155 ेतो यह वाद्य केवल मंदिरों, मांगलिक अवसरों पर ही बजाया जाता था। कहने का तात्पर्य यह है कि यह केवल एक लोक वाद्य के रूप में ही जाना जाता था। आगे चल कर यह वाद्य शास्त्रीय संगीत का भी एक मुख्य वाद्य बन गया। जिसका पूरा श्रेय उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ को जाता है। इन्हीं के प्रयत्न से यह वाद्य आज भारत के अन्य वाद्यों के साथ–साथ शास्त्रीय संगीत के प्रमुख वाद्यों में से एक है।

प्र0.4 शहनाई के अंगों का वर्णन कीजिए।

उ0. उ0. इस वाद्य के तीन भाग होते हैं ––– नली या नलिका, मुख नलिका और छिद्र।

इस वाद्य का निर्माण ध्वनि के उन्हीं सिद्धांतों पर हुआ है जिन पर बाँसुरी का। लेकिन इस वाद्य का शरीर या नली बाँसुरी से भिन्न होती है। इसकी नली गोलाकार होती है जो कि लकड़ी से बनी होती है। यह आगे से फूल के आकार की तथा चौड़ी होती है और पीछे की ओर जाते यह चौड़ाई कम होती जाती है। इसकी लम्बाई लगभग 22 इंच लम्बी होती थी लेकिन अब धीरे–धीरे कम होकर यह 16 इंच ही रह गई है। इसकी गोलाई लगभग 30 से 52 सेंटीमीटर होती है। इसमें सात छिद्र होते हैं।

इस वाद्य को फूंक भर कर बजाया जाता है। इसमें फूंक भरने के लिए मुखनलिका का प्रयोग किया जाता है जो कि शहनाई का पीछे का भाग होता है। इस मुख नलिका में धातु की पत्ती लगाकर फूंक भरी जाती है। जिससे इस वाद्य के खोखले हिस्से से वायु प्रवाहित होकर छिद्रों के माध्यम से स्वर रूप में प्रकट होते हैं। इस प्रकार नलिका, मुख नलिका और छिद्रों इन तीनों भागों के मिलन से यह वाद्य बनता है।

शहनाई वाद्य जब बजाया जाता है तो इसके साथ एक दूसरे वाद्य से निरन्तर आधार स्वर दिया जाता है। जिस शहनाई जैसे वाद्य से यह आधार स्वर दिया जाता है उसे 'सूर' कहते हैं। यह शहनाई की तरह ही दिखता है। जिसमें चार से छः तक छिद्र होते हैं। इसमें जिस स्वर का आधार देना होता है उसे खुला रखा जाता है ओर शेष छिद्रों को रूई से बंद कर दिया जाता है।

शहनाई वाद्य के मुख्य वादकों में बिस्मिल्ला खाँ, अनन्त लालू, अली अहमद हुसैन खाँ, लोकेश आनन्द, एस. बालेश, पं0 बसव राज बजंत्री, नन्द लाल देवलंकर, गणपत राव वसईकर तथा सिद्ध राम जाधव आदि प्रमुख हैं।

प्र0.5 बाँसुरी में सात शुद्ध स्वरों का वादन भरत के अनुसार बताइए।

उ0. **भरत के अनुसार सात शुद्ध स्वरों को बजाने की विधि :–**

वक्र मुक्तांग्ली :–

मुक्त उंगलियों से छिद्रों को सम्पूर्ण रूप से खोलने पर उचित फूंक के द्वारा चतुःश्रुति 'सा म प' स्वर ध्वनियां निर्मित की जाती हैं।

कम्पमान उंगली :–

उचित फूंक के द्वारा छिद्रों पर कम्पित उंगलियों से त्रीश्रुतिक 'रे ध' स्वर ध्वनियों का निर्माण किया जाता है।

अर्ध मुक्तांग्ली :–

बाँसुरी के छिद्रों को उंगलियों के द्वारा आधा बंद या आधा खोलकर उचित फूंक के द्वारा द्वीश्रुतिक 'ग नि' स्वरों का निर्माण किया जाता है।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि वेणु या बाँसुरी वादन को प्राचीन आधार प्राप्त है। मध्यकालीन संगीत ग्रन्थों में जो बाँसुरी के विषय में विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है वह भरत के नाटय शास्त्र में प्राप्त नहीं होता।

प्र0.6 पखावज की उत्पत्ति प्राचीन इतिहास के अनुसार बताइए।

उ0. **प्राचीन इतिहास के अनुसार :–**

'पखावज' मूल प्राकृत शब्द है, जिसे संस्कृत में 'पक्षवाद्य' कहा जाता है। जो 'पक्ष' तथा वाद्य शब्द के मिलन से बना है। कहते हैं कि दोनों पक्षों से बजने के कारण मृदंग का नाम पक्षवाद्य हुआ और कालान्तर में इसे 'पखबाज' कहा जाने लगा और समय परिवर्तन के साथ आज इसें पखावज कह कर पुकारा जाता है। कहा जाता है कि 14वीं शताब्दी के समय में महान मृदंग वादकों ने मृदंग निर्माण में प्रयोग की गई सामग्री में परिवर्तन किया और अंततः मूल मिट्टी के स्थान पर मुख्य शरीर के लिए लकड़ी का प्रयोग करना शुरू किया और इस प्रकार एक नया वाद्य रूप तथ एक नया नाम पखावज प्रकट हुआ, लेकिन पखावज नाम प्रयोग होने से पुराना मृदंग नाम भी समाप्त नहीं हुआ अपितु इस वाद्य को दोनों नामों से पुकारा जाने लगा अर्थात् मृदंग और पखावज। लेकिन यह वाद्य मृदंग से कुछ छोटा होता है।

यह पारम्परिक वाद्य यंत्र उत्तर भारत के अनेक भागों में पाया जाता है। पखावज लकड़ी, चर्मपत्र , चमड़े और काले लेप से बना यह एक ताल वाद्य है। इस वाद्य का वादन ध्रुपद, धमार जैसी गायन शैलियों तथा वीणा, रबाब तथा सुरबहार आदि वाद्यों के साथ किया जाता है। नृत्य के साथ भी इस वाद्य का वादन किया जाता है। इसके अतिरिक्त पखावज को एकल वाद्य के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।

प्र0.7 पखावज की उत्पत्ति आधुनिक इतिहास के अनुसार बताइए।

उ0. आधुनिक इतिहास के अनुसार –– ''पखावज'' पर्शियन शब्द 'पख– आवाज़' से उत्पन्न हुआ है। जिसका अर्थ है –– मध्यम ध्वनि उत्पन्न करने वाला। दूसरी ओर पख का एक और अर्थ भी बताया जाता है 'हाथों का क्षेत्र' अर्थात् अगुलियों से कोहनियों तक का क्षेत्र। अतः 'पख' का अर्थ पखावज के लिए सही बैठता है क्योंकि पखावज के वादन के लिए मज़बूत हाथ का होना यानि हाथ से लेकर कोहनियों तक का ज़ोर होना आवश्यक है।

पखावज का नाम मुगल सम्राट अकबर के समय में सामान्य प्रयोग में आया। सूरदास, नंददास आदि कई ब्रजभाषा के कवियों ने अपनी रचनाओं में इसे पखावज और मृदंग नाम से पुकारा है।

9.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. संगीत विशारद, बसंत, संगीत कार्यालय हाथरस, उ.प्र.
2. भारतीय संगीत का इतिहास, भगवत शरण शर्मा, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ.प्र.।
3. पं0 लालमणी मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य।
4. भारतीय संगीत (एक ऐतिहासिक विश्लेषण), प्रो0 स्वतंत्र शर्मा, अभिनव पब्लिशिंग हाउसश इलाहाबाद, 2014।

9.11 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 वायलिन वाद्य की उत्पत्ति तथा आकार–प्रकार का वर्णन कीजिए ।

प्र0.2 पखावज वाद्य का ऐतिहासिक विवेचन कीजिए।

प्र0.3 बाँसुरी की उत्पत्ति कब और कैसे हुई तथा इसकी वादन विधि का वर्णन कीजिए।

:–:–:–:–:–:–:

LESSON -10

A study of the following Talas & ability to write them in Dugun, Tigun & Chaugun Layakaries

Teental, Roopak, Adachautal

तालों का शास्त्रोक्त अध्ययन

STRUCTURE :

10.1 भूमिका

10.2 उदेश्य

10.3 तीनताल

10.3.1 ताल का पूर्ण परिचय

10.3.2 ताललिपि एकगुन

10.3.3 ताललिपि दुगुन

10.3.4 ताललिपि तिगुन

10.3.5 ताललिपि चौगुन

10.4 आड़ाचारताल

10.4.1 ताल का पूर्ण परिचय

10.4.2 ताललिपि एकगुन

10.4.3 ताललिपि दुगुन

10.4.4 ताललिपि तिगुन

10.4.5 ताललिपि चौगुन

10.5 ताल रूपक

10.5.1 ताल का पूर्ण परिचय

10.5.2 താललिपि एकगुन

10.5.3 താललिपि दुगुन

10.5.4 താललिपि तिगुन

10.5.5 താललिपि चौगुन

10.6 सारांश

10.7 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

10.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

10.1 भूमिका :–

ताल संगीत का एक आवश्यक अंग है। संगीत में ताल परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है। ताल को संगीत में लय के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। संगीत में जितने भी ताल हैं उन्हें गायन–वादन की शैली अनुसार प्रयोग किया जाता है। हमारे संगीत में अलग–अलग प्रकार की लय का प्रयोग किया जाता है। प्रथम तीन लय दुगुन, तिगुन और चारगुन कहलाती हैं। जिनका वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

10.2 उदेश्य :–

इस पाठ का उदेश्य विद्यार्थी को तालों और लय के विषय में विस्तृत जानकारी देना है। इससे हम यह जान पाएंगे कि साधारणतया लय कितने प्रकार की होती है और तालों को अलग–अलग लय में किस प्रकार लिखा जाता है।

10.3 तीनताल :–

तीनताल तबले की ताल है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में तीनताल का अत्यधिक महत्व है। यह ताल भारतीय संगीत की एक बहुप्रचलित ताल है। यह 16 मात्रा की ताल है। जिसके चार–चार मात्राओं के चार विभाग होते हैं। इस ताल में तीन ताली और एक खाली मात्रा होती है। इसमें ताली एक, पाँच और तेहरवीं मात्रा पर

होती है जबकि खाली नौंवीं मात्रा पर रहती है। इस ताल में विलम्बित गत, द्रुत गत, तोड़े, झाला, तथा छोटा ख्याल आदि गाते–बजाते हैं।

10.3.1 ताल का पूर्ण परिचय :–

मात्रा – 16

विभाग – 4

ताली – 3

खाली – 1

तीनताल 16 मात्राओं का ताल है। इस ताल के चार विभाग होते हैं जिनमें चार–चार मात्राएं होती हैं। इन चार विभागों में से तीन विभाग भरी ताल के हैं तथा एक विभाग खाली ताल का है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस ताल में तीन ताली तथा एक खाली होती है। इस ताल की पहली मात्रा पर सम, पाँचवीं मात्रा पर दूसरी ताली तथा 13वीं मात्रा पर तीसरी ताली होती है। इस ताल की नौवीं मात्रा खाली रहती हैं। इस ताल का प्रयोग शास्त्रीय संगीत, उप–शास्त्रीय संगीत, गीत तथा भजन इत्यादि के साथ किया जाता है। शास्त्रीय संगीत गायन में छोटे–बड़े ख्यालों में तथा शास्त्रीय वादन संगीत में रज़ाखानी गतें इसी ताल में बजाई जाती हैं। तीनताल को विलम्बित करके मसीतखानी गतें, बड़े ख्याल, ठुमरी तथा विलम्बित काफियाँ आदि गाए–बजाए जाते हैं। फिल्म संगीत में भी इस ताल का बहुत प्रयोग होता आ रहा है। यह एक ऐसा ताल है जिसे संगीत जगत में बहुत लोकप्रियता प्राप्त है। संगीत सीखने वाले विद्यार्थियों को तो यह ताल अधिक सरल तथा लोकप्रिय ताल लगता है।

10.3.2 इस ताल कीताललिपि इस प्रकार है :–

एकगुण :–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
धा	धीं	धीं	धा	धा	धीं	धीं	धा	धा	तीं	तीं	ता	ता	धीं	धीं	धा
×				2				0				3			

10.3.3 दुगुन :–

धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	|	धातिं	तिंता	ताधिं	धिंधा
×					2			
धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	|	धातिं	तिंता	ताधिं	धिंधा
0					3			

10.3.4 तिगुन :–

धाधिंधिं	धाधाधिं	धिंधाधा	तिंतिंता	|	ताधिंधिं	धाधाधिं	धिंधाधा	धिंधिंधा
×					2			
धातिंतिं	ताताधिं	धिंधाधा	धिंधिंधा	|	धाधिंधिं	धाधातिं	तिंताता	धिंधिंधा
0					3			

10.3.5 चौगुन :–

धाधिंधिंधा	धाधिंधिंधा	धातिंतिंता	ताधिंधिंधा	|	धाधिंधिंधा	धाधिंधिंधा	धातिंतिंता	ताधिंधिंधा
×					2			
धाधिंधिंधा	धाधिंधिंधा	धातिंतिंता	ताधिंधिंधा	|	धाधिंधिंधा	धाधिंधिंधा	धातिंतिंता	ताधिंधिंधा
0					3			

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 तीन ताल का संक्षिप्त परिचय लिखिए।

प्र0.2 तीन ताल को दुगुन में लिखिए।

10.4 आड़ाचारताल :–

मात्रा – 14

विभाग – 7

ताली – 4

खाली – 3

सम – पहली मात्रा पर

10.4.1 ताल का पूर्ण परिचय :–

'आड़ाचारताल' चौदह मात्रा का ताल है। इसके दो–दो मात्राओं के सात विभाग होते हैं। इस ताल में चार ताली तथा तीन खाली होती हैं। इस ताल की पहली मात्रा पर सम होता है। इस ताल में पहली, तीसरी, सातवीं तथा ग्यारहवीं मात्रा पर ताली तथा पाँचवी, नवीं तथा तेहरवीं मात्रा पर खाली होती है। इस ताल की चाल एक ताल की भान्ति होती है और तबले के बोल भी एकताल से मिलते–जुलते हैं। यह ताल भी प्रायः बड़े ख्याल के साथ बजाया जाता है।

आड़ा का अर्थ है टेड़ा अर्थात् यह एक टेड़ी चाल की ताल है अर्थात् इस ताल की चाल टेड़ी है। एक मतानुसार इस ताल का आविष्कार अमीर खुसरो द्वारा माना गया है। यह एक गम्भीर प्रकृति की ताल है।

10.4.2 ताललिपि (एकगुण) :–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
धी	तिरकट	धी	ना	तू	ना	क	ता	तिरकिट	धी	ना	धी	धी	ना
×		2		0		3		0		4		0	

10.4.3 दुगुण :–

1	2	3	4	5	6	7
धीतिरकिट	धीना	तूना	कता	तिरकिटधी	नाधी	धीना
×		2		0		3

8	9	10	11	12	13	14
धीतिरकिट	धीना	तूना	कता	तिरकिटधी	नाधी	धीना
	0		4		0	

10.4.4 तिगुन :–

1	2	3	4	5	6	7
धीतिरकिटधी	नातूना	कतातिरकिट	धीनाधी	धीनाधी	तिरकिटधीना	तूनाक
×		2		0		3

8	9	10	11	12	13	14
तातिरकिटधी	नाधीधी	नाधीतिरकिट	धीनातू	नाकता	तिरकिटधीना	धीधीना
	0		4		0	

10.4.5 चौगुन :–

1	2	3	4	5	6	7
धीतिरकिटधीना	तूनाकता	तिरकिटधीनाधी	धीनाधीतिरकिट	धीनातूना	कतातिरकिटधी	नाधीधीना
×		2		0		3

8	9	10	11	12	13	14
धीतिरकिटधीना	तूनाकता	तिरकिटधीनाधी	धीनाधीतिरकिट	धीनातूना	कतातिरकिटधी	नाधीधीना
	0		4		0	

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 आड़ाचारताल का पूर्ण परिचय लिखिए।

प्र0.2 आड़ाचारताल की एकगुण लिखिए।

10.5 ताल – रूपक :–

इस ताल का प्रयोग भी हमारे संगीत में बहुतायत से होता है। यह ताल गीत और गज़ल विधा के साथ अधिक प्रयोग होता है। यह सात मात्रा का ताल है जिसमें तीन विभाग होते हैं। पहले विभाग में तीन मात्राएं, दूसरे तथा तीसरे विभाग में दो–दो मात्राएं होती हैं। इस ताल में प्रथम मात्रा पर खाली, चौथी मात्रा पर दूसरी ताली तथा छठी मात्रा पर तीसरी ताली होती है। प्रथम मात्रा खाली के साथ–साथ सम की भी कहलाती है।

मात्रा – 7

विभाग – 3

ताली – 2 या तीन

खाली – 1 (सम)

10.5.1 ताल का पूर्ण परिचय :–

रूपक ताल सात मात्राओं का ताल है। इसे तीन विभागों में बाँटा गया है। पहला भाग तीन मात्राओं का तथा अन्य दो भाग दो–दो मात्राओं के हैं। इस ताल की पहली मात्रा पर ही खाली का स्थान है और इसी खाली को ताल का सम माना जाता है। रूपक ताल की यह विशेषता है कि इसमें सम के स्थान पर खाली दिखाया जाता है जबकि अन्य तालों में हमेशा ताल की पहली मात्रा अर्थात् सम पर भरी ताल का ही बोल बजाया जाता है। रूपक ताल में सम अवश्य पहली मात्रा पर है परन्तु सम पर खाली दिखाया जाता है।

10.5.2 ताललिपि (एकगुन) :–

तीं	तीं	ना	|	धीं	ना	|	धीं	ना
0			|	1		|	2	
×								

10.5.3 दुगुन :–

तींतीं	नाधीं	नाधीं	|	नातीं	तींना	|	धींना	धींना
0			|	1		|	2	
×								

10.5.4 तिगुन :–

तींतींना	धींनाधीं	नातींतीं	|	नाधींना	धींनातीं	|	तींनाधीं	नाधींना
0			|	1		|	2	
×								

10.5.5 चौगुन :–

तींतींनाधीं	नाधींनातीं	तींनाधींना	|	धींनातींतीं	नाधींनाधीं	|	नातींतींना	धींनाधींना
0			|	1		|	2	
×								

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 रूपक ताल का संक्षिप्त परिचय एकगुणताललिपि सहित लिखिए।

प्र0.2 रूपक ताल की तिगुन लिखिए।

10.6 सारांश :–

इस पाठ में ताल तीनताल, आड़ाचरताल तथा ताल रूपक को पूर्ण परिचय सहित प्रस्तुत किया गया है। यहाँ यह ताल लिपिबद्ध रूप में लिखे गए हैं। जिन्हें एकगुन, दुगुन, तिगुन तथा चारगुन लयकारियों में लिखा गया है। यहाँ ये सभी ताल लिखित रूप में लयकारियों सहित प्रदर्शित किए गए हैं लेकिन विद्यर्थियों को इन्हें हाथ के साथ ताली देकर प्रदर्शित करना होगा। ये सभी तालें प्रचलित तालें हैं। इन सभी तालों का प्रयोग हम आजकल के संगीत में बहुतायत से करते हैं। इन तालों को विद्यार्थियों को अच्छी प्रकार से कण्ठस्थ करने का प्रयास करना है और क्रियात्मक रूप से इसे तबले पर बजा कर भी दिखाना होगा।

10.7 स्वयं परीक्षा प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 तीन ताल का संक्षिप्त परिचय लिखिए।

उ0. ताल का पूर्ण परिचय :–

मात्रा – 16

विभाग – 4

ताली – 3

खाली – 1

प्र0.2 तीनताल को दुगुन में लिखिए।

उ0. **दुगुन :–**

धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	|	धातिं	तिंता	ताधिं	धिंधा
×				|	2			

धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	धातिं	तिंता	ताधिं	धिंधा
0				3			

प्र0.3 आड़ाचारताल का पूर्ण परिचय लिखिए।

उ0. **'आड़ाचारताल'** चौदह मात्रा का ताल है। इसके दो–दो मात्राओं के सात विभाग होते हैं। इस ताल में चार ताली तथा तीन खाली होती हैं। इस ताल की पहली मात्रा पर सम होता है। इस ताल में पहली, तीसरी, सातवीं तथा ग्यारहवीं मात्रा पर ताली तथा पाँचवी, नवीं तथा तेहरवीं मात्रा पर खाली होती है। इस ताल की चाल एक ताल की भान्ति होती है और तबले के बोल भी एकताल से मिलते–जुलते हैं। यह ताल भी प्रायः बड़े ख्याल के साथ बजाया जाता है।

आड़ा का अर्थ है टेड़ा अर्थात् यह एक टेड़ी चाल की ताल है अर्थात् इस ताल की चाल टेड़ी है। एक मतानुसार इस ताल का आविष्कार अमीर खुसरो द्वारा माना गया है। यह एक गम्भीर प्रकृति की ताल है।

प्र0.4 आड़ाचारताल की एकगुण लिखिए।

उ0. **ताललिपि (एकगुण) :–**

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
धी	तिरकट	धी	ना	तू	ना	क	ता	तिरकिट	धी	ना	धी	धी	ना
×		2		0		3		0		4		0	

प्र0.5 रूपक ताल का संक्षिप्त परिचय एकगुण ताललिपि सहित लिखिए।

उ0. **ताल – रूपक :–**

इस ताल का प्रयोग भी हमारे संगीत में बहुतायत से होता है। यह ताल गीत और गज़ल विधा के साथ अधिक प्रयोग होता है। यह सात मात्रा का ताल है जिसमें तीन विभाग होते हैं। पहले विभाग में तीन मात्राएं, दूसरे तथा तीसरे विभाग में दो–दो मात्राएं होती हैं। इस ताल में प्रथम मात्रा पर खाली, चौथी मात्रा पर दूसरी ताली तथा छठी मात्रा पर तीसरी ताली होती है। प्रथम मात्रा खाली के साथ–साथ सम की भी कहलाती है।

मात्रा – 7

विभाग – 3

ताली – 2 या तीन

खाली – 1 (सम)

ताललिपि (एकगुन) :–

तीं	तीं	ना	धीं	ना	धीं	ना
0			1		2	
×						

प्र0.6 रूपक ताल की तिगुन लिखिए।

उ0. **तिगुन :–**

तीतींना	धींनाधीं	नातींतीं	नाधींना	धींनातीं	तींनाधीं	नाधींना
0			1		2	
×						

10.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन, डा0 अरूण कुमार सेन, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, दारागंज, इलाहाबाद।
2. संगीत तबला अंक 1993।
3. संगीत विशारद, बसंत, संपादक– डा0 लक्ष्मी नारायण गर्ग, प्रकाशक– संगीत कार्यालय, हाथरस, उ0.प्र0

10.9 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 तीनताल की की ताललिपि दुगुन तथा तिगुन में लिखिए।

प्र0.2 ताल आड़ाचारताल की ताललिपि एवं संक्षिप्त परिचय लिखिए।

:–:–:–:–:–:–:

LESSON 11

A study of the following Talas & ability to write them in Dugun, Tigun & Chaugun Layakaries

Jhaptal, Chautal, Dhamar

तालों का शास्त्रोक्त अध्ययन

STRUCTURE :

11.1 भूमिका

11.2 उदेश्य

11.3 झपताल

11.3.1 ताल का पूर्ण परिचय

11.3.2 ताललिपि एकगुन

11.3.3 ताललिपि दुगुन

11.3.4 ताललिपि तिगुन

11.3.5 ताललिपि चौगुन

11.4 चारताल

11.4.1 ताल का पूर्ण परिचय

11.4.2 ताललिपि एकगुन

11.4.3 ताललिपि दुगुन

11.4.4 ताललिपि तिगुन

11.4.5 ताललिपि चौगुन

11.5 ताल धमार

11.5.1 ताल का पूर्ण परिचय

11.5.2 ताललिपि एकगुन

11.5.3 ताललिपि दुगुन

11.5.4 ताललिपि तिगुन

11.5.5 ताललिपि चौगुन

11.6 सारांश

11.7 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

11.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

11.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

11.1 भूमिका :–

ताल संगीत का एक आवश्यक अंग है। संगीत में ताल परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है। ताल को संगीत में लय के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। संगीत में जितने भी ताल हैं उन्हें गायन–वादन की शैली अनुसार प्रयोग किया जाता है। हमारे संगीत में अलग–अलग प्रकार की लय का प्रयोग किया जाता है। प्रथम तीन लय दुगुन, तिगुन और चारगुन कहलाती हैं। जिनका वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

11.2 उदेश्य :–

इस पाठ का उदेश्य विद्यार्थी को तालों और लय के विषय में विस्तृत जानकारी देना है। इससे हम यह जान पाएंगे कि साधारणतया एकगुन, दुगुन, तिगुन तथा चौगुन लय किस प्रकार की होती हैं और तालों को अलग–अलग लय में किस प्रकार लिखा जाता है।

11.3 ताल – झपताल

मात्रा – 10

विभाग – 4

ताली – 3

खाली – 1

11.3.1 ताल का पूर्ण परिचय :–

झपताल में दस मात्राएं होती हैं। इस ताल की मात्राओं के चार विभाग होते हैं। जिनमें से दो विभाग दो–दो मात्राओं के तथा दो विभाग तीन–तीन मात्राओं के होते हैं। इस ताल के तीन भागों में भरी तालें हैं और एक भाग खाली ताल का है। ताल की पहली मात्रा अर्थात् सम पर पहली ताली है, दूसरी तथा तीसरी ताली क्रमशः तीसरी और आठवीं मात्रा पर है। छठी मात्रा पर खाली आती है।

11.3.2 ताललिपि एकगुन :–

धीं	ना	धीं	धीं	ना	तीं	ना	धीं	धीं	ना
×		2			0		3		

11.3.3 ताललिपि दुगुन :–

धींना	धींधीं	नातीं	नाधीं	धींना	धींना	धींधीं	नातीं	नाधीं	धींना
×		2			0		3		

11.3.4 ताललिपि तिगुन :–

धींनाधीं	धींनातीं	नाधींधीं	नाधींना	धींधींना	तींनाधीं	धींनाधीं	नाधींधीं	नातींना	धींधींना
×		2			0		3		

11.3.5 ताललिपि चौगुन :–

धींनाधींधीं	नातींनाधीं	धींनाधींना	धींधींनातीं	नाधींधींना
×		2		

धींनाधींधीं	नातींनाधीं	धींनाधींना	धींधींनातीं	नाधींधींना
0		3		

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 झपताल का पूर्ण परिचय लिखिए।

प्र0.2 झपताल की चौगुन लिखिए।

11.4 चारताल

मात्रा :– 12

विभाग :– 6

ताली :– 4

खाली :– 2

11.4.1 ताल का पूर्ण परिचय :–

चारताल 12 मात्रा की ताल है। इसके छः विभाग होते हैं। जो कि दो–दो मात्राओं के होते हैं। इस ताल में चार ताली और दो खाली होती हैं। इस ताल की पहली, पाँचवीं, नवीं और ग्यारवीं मात्रा पर ताली होती है तथा तीसरी और सातवीं मात्रा पर खाली होती है। यह ध्रुपद गायन शैली की ताल है।

11.4.2 इस ताल कीताललिपि इस प्रकार है :–

एकगुण :–

धा धा	दिं ता	किट धा	दिं ता	तिट कत	गदि गन
×	0	2	0	3	4

11.4.3 ताललिपि दुगुन :–

धाधा दिंता	किटधा दिंता	तिटकत गदिगन	धाधा दिंता	किटधा दिंता	तिटकत गदिगन
×	0	2	0	3	4

11.4.4 ताललिपि तिगुन :–

धाधादिं ताकिटधा	दिंतातिट कतगदिगन	धाधादिं ताकिटधा
×	0	2

दिंतातिट कतगदिगन	धाधादिं ताकिटधा	दिंतातिट कतगदिगन
0	3	4

11.4.5 ताललिपि चौगुन :–

धाधादिंता किटधादिंता	तिटकतगदिगन धाधादिंता	किटधादिंता तिटकतगदिगन
×	0	2

धाधादिंता किटधादिंता	तिटकतगदिगन धाधादिंता	किटधादिंता तिटकतगदिगन
0	3	4

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 चारताल का पूर्ण परिचय लिखिए।

प्र0.2 चारताल की दुगुन लिखिए।

11.5 ताल धमार :–

ताल – धमार

मात्रा – 14

ताली – 3

खाली – 1

विभाग – 4

11.5.1 ताल का पूर्ण परिचय :–

धमार 14 मात्रा का ताल है। इसके चार विभाग हैं। पहले विभाग में पाँच मात्राएँ, दूसरे विभाग में दो मात्राएँ, तीसरे विभाग में तीन तथा चौथे विभाग में चार मात्राएँ होती हैं। इसमें तीन भरी ताल तथा एक खाली ताली होती है। पहली मात्रा पर सम तथा छठी तथा ग्यारहवीं मात्रा पर दूसरी तथा तीसरी ताली होती है। इस ताल की आठवीं मात्रा पर खाली होती है।

धमार ताल धमार गायन शैली के साथ बजाई जाती है। यह ताल तबले की नहीं अपितु पखावज तथा मृदंग की ताल है। इस ताल की रचना पखावज के खुले बोलों के आधार पर हुई है। यह गम्भीर प्रकृति की ताल है। इस ताल की लय विलम्बित तथा मध्य तक ही रहती है।

11.5.2 ताल धमार कीताललिपि :–

एकगुण :–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
क	धि	ट	धि	ट	धा	ऽ	ग	ति	ट	ति	ट	ता	ऽ
×					2		0			3			

11.5.3 ताललिपि दुगुन :–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
कधि	टधि	टधा	ऽग	तिट	तिट	ताऽ	कधि	टधि	टधा	ऽग	तिट	तिट	ताऽ
×					2		0			3			

11.5.4 ताललिपि तिगुन :–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
कधिट	धिटधा	ऽगति	टतिट	ताऽक	धिटधि	टधाऽ	गतिट	तिटता	ऽकधि	टधिट	धाऽग	तिटति	टताऽ
×					2		0			3			

11.5.5 ताललिपि चौगुन :–

1	2	3	4	5	6	7
कधिटधि	टधाऽग	तिटतिट	ताऽकधि	टधिटधा	ऽगतिट	तिटताऽ
×					2	

8	9	10	11	12	13	14
कधिटधि	टधाऽग	तिटतिट	ताऽकधि	टधिटधा	ऽगतिट	तिटताऽ
0			3			

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 ताल धमार का संक्षिप्त परिचय एकगुन सहित लिखिए।

प्र0.2 धमार ताल की दुगुन लिखिए।

11.6 सारांश :–

झपताल, तबले की ताल है, जबकि चारताल, धमार आदि पखावज पर बजाई जानें वाली तालें हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत में इन सभी तालों का अत्यधिक महत्व है। यह ताल भारतीय संगीत की बहुप्रचलित तालें हैं। इन तालों में से कुछ तालों का प्रयोग शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत तथा सुगम संगीत की अलग–अलग गायन शैलियों के साथ किया जाता है। इस पाठ में हर ताल को उसकी मात्रा, विभाग, बोल तथा अलग–अलग लयकारियों के साथ प्रस्तुत किया गया है। साथ ही ताल को उसके पूर्ण परिचय के साथ वर्णित किया गया है।

11.7 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 झपताल का पूर्ण परिचय लिखिए।

उ0. **ताल का पूर्ण परिचय :–**

झपताल में दस मात्राएं होती हैं। इस ताल की मात्राओं के चार विभाग होते हैं। जिनमें से दो विभाग दो–दो मात्राओं के तथा दो विभाग तीन–तीन मात्राओं के होते हैं। इस ताल के तीन भागों में भरी तालें हैं और एक भाग खाली ताल का है। ताल की पहली मात्रा अर्थात् सम पर पहली ताली है, दूसरी तथा तीसरी ताली क्रमशः तीसरी और आठवीं मात्रा पर है। छठी मात्रा पर खाली आती है।

प्र0.2 झपताल की चौगुन लिखिए।

उ0.

धींनाधींधीं	नातींनाधीं	धींनाधींना	धींधींनातीं	नाधींधींना
×		2		
धींनाधींधीं	नातींनाधीं	धींनाधींना	धींधींनातीं	नाधींधींना
0		3		

प्र0.3 चारताल का पूर्ण परिचय लिखिए।

उ0. **चारताल**

मात्रा – 12

विभाग – 6

ताली – 4

खाली – 2

ताल का पूर्ण परिचय :–

चारताल 12 मात्रा की ताल है। इसके छः विभाग होते हैं। जो कि दो–दो मात्राओं के होते हैं। इस ताल में चार ताली और दो खाली होती हैं। इस ताल की पहली, पाँचवीं, नवीं और ग्यारवीं मात्रा पर ताली होती है तथा तीसरी और सातवीं मात्रा पर खाली होती है। यह ध्रुपद गायन शैली की ताल है।

प्र0.4 चारताल की काललिपि लिखिए।

उ0. **एकगुण :–**

धा	धा	दिं	ता	किट	धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन
×		0		2		0		3		4	

प्र0.5 ताल धमार का संक्षिप्त परिचय एकगुन सहित लिखिए।

उ0. **ताल धमार :–**

ताल – धमार

मात्रा – 14

ताली – 3

खाली – 1

विभाग – 4

एकगुण :–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
क	धि	ट	धि	ट	धा	ऽ	ग	ति	ट	ति	ट	ता	ऽ
×					2		0			3			

प्र0.6 धमार ताल की दुगुन लिखिए।

उ0. दुगुन :–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
कधि	टधि	टधा	ऽग	तिट	तिट	ताऽ	कधि	टधि	टधा	ऽग	तिट	तिट	ताऽ
×					2		0			3			

11.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन, डा0 अरूण कुमार सेन, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, दारागंज, इलाहाबाद।
2. संगीत तबला अंक 1993।
3. संगीत विशारद, बसंत, संपादक– डा0 लक्ष्मी नारायण गर्ग, प्रकाशक– संगीत कार्यालय, हाथरस, उ0.प्र0

11.9 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 चारताल का विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्र0.2 झपताल को दुगुन और तिगुन लयकारियों में लिखिए।

प्र0.3 धमार ताल का पूर्ण परिचय एकगुण सहित लिखिए।

–:–:–:–:–:–:–:–

LESSON – 12

Importance of Laya and Tala in Music

संगीत में लय और ताल का महत्व

STRUCTURE :

12.1 भूमिका

12.2 उदेश्य

12.3 लय

12.4 ताल

12.5 संगीत में ताल और लय का महत्व

12.6 सारांश

12.7 शब्दकोष

12.8 स्वयं परीक्षा प्रश्न–उत्तर

12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

12.10 महत्वपूर्ण प्रश्न

12.1 भूमिका :–

संगीत में ताल और लय का विशेष महत्व माना जाता है। यदि हम इसे यूं कहें कि संगीत रूपी भवन ताल और लय तथा स्वर की नींव पर खड़ा है तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। इन दोनों के बिना संगीत में चरम आनन्द को प्राप्त नहीं किया जा सकता। ताल और लय के प्रयोग से ही हम संगीत के अन्तर्गत् आने वाले गायन, वादन और नृत्य में तानों, तोडों, तिहाइयों और बोल–बांट का आनन्द ले सकते हैं। जब कोई कलाकार स्वर, लय और ताल के साथ अपने मनोगत भावों को श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत करता है तो श्रोतागण उस संगीत के भावात्मक

सागर में आनन्द के गोते खाने लगते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे संगीत में ताल और लय का विशेष महत्व है।

संगीत में ताल और लय के महत्व को बताने से पूर्व दोनों के विषय में जानना आवश्यक है कि लय और ताल क्या है।

12.2 उदेश्य :–

इस पाठ का अध्ययन करने से सबसे पहले हम यह जान पाएंगे कि लय और ताल क्या है। साथ ही हम ये अध्ययन करेंगे कि लय और ताल का संगीत में क्या महत्व है।

12.3 लय :–

किसी निश्चित क्रम से चलने वाली गति या चाल को हम संगीत की भाषा में 'लय' कहते हैं। लय एक नैसर्गिक प्रक्रिया है। लय केवल हमें संगीत में ही नहीं मिलती अपितु प्रकृति से लेकर समस्त संसार में हमें लय देखने को मिलती है। लय का हमारे जीवन में बहुत अधिक महत्व माना जाता है क्योंकि यदि देखा जाए तो मनुष्य जीवन भी लय पर ही आधारित है अर्थात् मनुष्य जो अपनी श्वास क्रिया करता है वह भी नियमित लय पर ही निर्भर करती है। मनुष्य की हृदय गति, खून का संचालन तथा नाड़ी का चलना भी नियमित क्रिया अर्थात् लय से चलता है। यदि यह क्रिया सही से न हो तो मनुष्य जीवन रोगी कहलाता है।

समय को अखंड माना जाता है। हमारे विद्वानों ने समय को सैकिन्ड, मिनट, घण्टे, प्रहर, दिन, महीने तथा वर्षों में बांटा है। जैसे हम देखते हैं कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा चौबिस घण्टे में पूरा करती है। इसी प्रकार दिन के बाद रात, रात के बाद दिन का क्रम अपने आप ही नियमित ढंग से चलता रहता है। चाँद, सूरज, नक्षत्र एवं ऋतुएं स्वयं ही नियमित गति से चलते हुए परिवर्तित होते रहते हैं और अपना वातावरण और प्रभाव छोड़ते जाते हैं।

नियमित गति या लय सम्पूर्ण सृष्टि एवं ब्रह्माण्ड का एक आवश्यक अंग है जिसमें यदि थोड़ी सी भी अनियमितता अथवा व्यवधान आ जाए तो प्रलय आने की सम्भावना बन जाती है जो कि जीवन का अंत माना जाता है। अतः लय या नियमित गति हमारा जीवन है और सम्पूर्ण सृष्टि का श्रृंगार है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 लय किसे कहते हैं ?

प्र0.2 लय के विषय में संक्षिप्त में बताएं।

12.4 ताल :–

संगीत में क्रमिक और नियमित गति 'लय' कहलाती है। जब हम इस नियमित लय को एक निश्चित कालचक्र में बांधते हैं अर्थात् जब उसे विशेष मात्रा, अन्तराल तथा क्रिया के बन्धन में बांधते हैं, तब उस समय 'ताल' की उत्पत्ति होती है। जब किसी लय को निश्चित मात्राओं, विभागों, सम, ताली, , खाली आदि के चक्र में व्यवस्थित करते हैं तब उसे किसी विशेष 'ताल' का नाम दिया जाता है। भारतीय संगीत में ताल की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। लय को दर्शानें की क्रिया को 'ताल' कहा जाता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 ताल उत्पत्ति कैसे होती है ?

प्र0.2 ताल की क्या परिभाषा है ?

12.5 संगीत में ताल और लय का महत्व :–

तालस्तलप्रतिष्ठायामिति धातोर्घञि स्मृतः।

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं यत्सताले प्रतिष्ठतम्।।

(संगीत रत्नाकर)

शारंगदेव के संगीत रत्नाकर में ताल के महत्व को उपरोक्त श्लोक में इस प्रकार बताया गया है –– गायन, वादन और नृत्य की प्रतिष्ठा 'ताल' पर ही आधारित है। 'संगीतार्णव' में ताण्डव नृत्य के 'त' तथा लास्य नृत्य के 'ल' वर्णों के संयोग से 'ताल' शब्द की उत्पत्ति बताई गई है। इसी प्रकार संगीत दर्पण नामक पुस्तक में 'ताकार' से शंकर (शिव) तथा 'लकार' से पार्वती (शक्ति) ––– इन दोनों के योग को 'ताल' कहा गया है।

प्राचीन काल से ही भारतीय संगीत में ताल परम्परा चली आ रही है। संगीत की दृष्टि से देखें तो लय को दर्शाने की क्रिया को 'ताल' कहा जाता है तथा ताल का आधार 'लय' को माना जाता है। लय को ताल की जननी भी कहा जाता है। लय का हमारे संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है।

भारतीय संगीत में ताल और लय के विषय में यहां तक कहा जाता है कि –––

श्रुति माता लयः पिता।

अर्थात् श्रुति यदि संगीत को माता की तरह जन्म देती है और उसका पालन–पोषण करती है तो लय तथा ताल संगीत को पिता की तरह अनुशासित करते हैं। ये दोनों संगीत रूपी बालक को व्यवस्थित तथा नियन्त्रित करते हुए एक सुन्दर रूप प्रदान करते हैं। लय तथा ताल के गति बन्धन के द्वारा संगीत की अभिव्यक्ति अनुशासित होने के साथ–साथ विविधता लिए हुए भी सामने आती है, जो सुनने वालों को आनन्द विभोर कर देती है।

संगीत में स्वर यदि सागर है तो लय उसको मथने वाला उपकरण है। इसी प्रकार राग यदि रंजकता प्रदान करता है तो ताल उसका आधार है। लय की विभिन्नता और ताल का आधार ही संगीत में विविधता लाता है। संगीत में स्वर को एक उत्तम स्थान और स्थिरता लय और ताल ही प्रदान करते हैं। जैसे किसी भी ताल की विलम्बित लय में स्वर स्थिरता पाता है, मध्य लय में झूलता है और द्रुत लय में उसमें थिरकन बढ़ जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि ताल और लय स्वर को सजा–धजा कर संगीत में प्रवेश कराते हैं। संगीत के अन्तर्गत् आने वाले निबद्ध संगीत की कोई भी विधा अथवा नृत्य की कोई भी विधा क्यों न हो, लय और ताल के प्रयोग से उसमें चार चाँद लग जाते हैं।

संगीत में ताल और लय के प्रयोग से रस और भाव का सृजन भी होता है , जिससे कि यह संगीत को और भी आकर्षक बना देता है। लय और ताल का प्रयोग किसी भी प्रकार के संगीत को एक अलग रूप प्रदान करता है। फिर चाहे वह शास्त्रीय संगीत हो, सुगम संगीत, लोक संगीत अथवा फिल्मी संगीत ही क्यो न हो। यहाँ तक की वृन्दवादन में ताल एवं ताल वाद्यों का प्रयोग उसकी रचना में चार चाँद लगा देते हैं। यदि वाद्यवृन्द में ताल वाद्यों का ताल एवं लय के साथ प्रयोग न हो और केवल स्वर वाद्यों का ही गुँजन मात्र हो तो वह रचना श्रोताओं को आनन्द देने की अपेक्षा ऊब प्रदान करेगी। इसी प्रकार फिल्मी संगीत में भी जब विभिन्न तालों का प्रयोग अलग–अलग लयकारियों के साथ किया जाता है तो एक अलग आनन्द का सृजन होता है।

लोक संगीत में भी लय और ताल का विशेष महत्व रहता है। यूँ तो हमारा लोक संगीत लगभग लय प्रधान माना जाता है। हमारे देश के किसी भी क्षेत्र के लोक गीत तथा लोक नृत्य लगभग लय प्रधान होते हैं। वैसे भी लोक संगीत में स्वर को इतना महत्व नही दिया जाता जितना कि लय और ताल को। किसी भी स्थान या क्षेत्र का लोक संगीत लय–ताल एवं ताल वाद्यों के साथ आवश्यक रूप से जुड़ा रहता है। अतः लय–ताल की थाप पड़ते ही उस क्षेत्र के लोग उसे सुनते ही हर्ष और उल्लास से झूम उठते हैं। अतः लय और ताल का प्रयोग किसी भी प्रकार के संगीत को एक नई उर्जा से भर देता है।

लय और ताल के संयोग से ही संगीत सम्पूर्ण कहलाता है और सम्पूर्ण संगीत ही मानव हृदय को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता रखता है। जैसे ही संगीत में ताल और लय का सृजन होने लगता है अनायास ही श्रोताओं के हाथ और पैर अपने आप ही हिलने लगते हैं और वे संगीत के अथाह सागर में डूबते जाते हैं। यही कारण है कि संगीत में लय और ताल का विशेष महत्व माना जाता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 शारंगदेव ने ताल की परिभाषा कैसे की है ?

प्र0.2 लय और ताल के महत्व को संक्षिप्त में बताएं।

12.6 सारांश :–

संगीत का मुख्य उदेश्य आनन्द की सृष्टि करना है। अतः संगीत के अभिन्न अंग लय और ताल का उदेश्य भी श्रोताओं को आनन्द प्रदान करना है। संगीत में स्वर और राग के पश्चात् लय और ताल का आगमन हुआ। इन सभी का उदेश्य मनुष्य को आनन्द की अनुभूति करवाना है। हमारे संगीत में लय और ताल का महत्वपूर्ण स्थान है। हमारे संगीत में बहुत से ताल पाए जाते हैं और उसी प्रकार लय भी विभिन्न प्रकार की रहती है। ताल और लय का प्रयोग हमारे संगीत के अन्तर्गत् गायन, वादन और नृत्य में आवश्यक रूप से किया जाता है और यदि हम संगीत में लय और ताल को महत्व नहीं देंगे तो हमारा संगीत अधूरा ही रह जाएगा।

12.7 शब्दकोष :–

1. अतिश्योक्ति – बढ़ाचढ़ा कर कहना
2. नैसर्गिक – प्राकृतिक या स्वभाविक
3. अखंड – सम्पूर्ण या व्यवधान रहित
4. व्यवधान – बाधा
5. प्रतिष्ठा – सीपना, ठहराव
6. मथना – बार–बार सोचना
7. ऊब – निरसता, अरूचि
8. अथाह – अति गहरा या सीमा रहित

12.8 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 लय किसे कहते हैं ?

उ0. किसी निश्चित क्रम से चलने वाली गति या चाल को हम संगीत की भाषा में 'लय' कहते हैं।

प्र0.2 लय के विषय में संक्षिप्त में बताएं।

उ0. किसी निश्चित क्रम से चलने वाली गति या चाल को हम संगीत की भाषा में 'लय' कहते हैं। लय एक नैसर्गिक प्रक्रिया है। लय केवल हमें संगीत में ही नहीं मिलती अपितु प्रकृति से लेकर समस्त संसार में हमें लय देखने को मिलती है। लय का हमारे जीवन में बहुत अधिक महत्व माना जाता है क्योंकि यदि देखा जाए तो मनुष्य जीवन भी लय पर ही आधारित है अर्थात् मनुष्य जो अपनी श्वास क्रिया करता है वह भी नियमित लय पर ही निर्भर करती है। मनुष्य की हृदय गति, खून का संचालन तथा नाड़ी का चलना भी नियमित क्रिया अर्थात् लय से चलता है। यदि यह क्रिया सही से न हो तो मनुष्य जीवन रोगी कहलाता है।

नियमित गति या लय सम्पूर्ण सृष्टि एवं ब्रह्माण्ड का एक आवश्यक अंग है जिसमें यदि थोड़ी सी भी अनियमितता अथवा व्यवधान आ जाए तो प्रलय आने की सम्भावना बन जाती है जो कि जीवन का अंत माना जाता है। अतः लय या नियमित गति हमारा जीवन है और सम्पूर्ण सृष्टि का श्रृंगार है।

प्र0.3 ताल उत्पत्ति कैसे होती है ?

उ0. जब हम नियमित लय को एक निश्चित कालचक्र में बांधते हैं अर्थात् जब उसे विशेष मात्रा, अन्तराल तथा क्रिया के बन्धन में बांधते हैं, तब उस समय 'ताल' की उत्पत्ति होती है।

प्र0.4 ताल की क्या परिभाषा है ?

उ0. जब किसी लय को निश्चित मात्राओं, विभागों, सम, ताली, , खाली आदि के चक्र में व्यवस्थित करते हैं तब उसे किसी विशेष 'ताल' का नाम दिया जाता है। लय को दर्शानें की क्रिया को 'ताल' कहा जाता है।

प्र0.5 शारंगदेव ने ताल की परिभाषा कैसे की है

उ0.

तालस्तलप्रतिष्ठायामिति धातोर्घञि स्मृतः।

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं यत्सताले प्रतिष्ठतम्।।

(संगीत रत्नाकर)

शारंगदेव के संगीत रत्नाकर में ताल के महत्व को उपरोक्त श्लोक में इस प्रकार बताया गया है –– गायन, वादन और नृत्य की प्रतिष्ठा 'ताल' पर ही आधारित है। 'संगीतार्णव' 184 'ताण्डव नृत्य के 'त' तथा लास्य नृत्य के 'ल' वर्णों के संयोग से 'ताल' शब्द की उत्पत्ति बताई गई है। इसी प्रकार संगीत दर्पण नामक पुस्तक में 'ताकार' से शंकर (शिव) तथा 'लकार' से पार्वती (शक्ति) ––– इन दोनों के योग को 'ताल' कहा गया है।

प्र0.6 लय और ताल के महत्व को संक्षिप्त में बताएं।

उ0. लय और ताल के संयोग से ही संगीत सम्पूर्ण कहलाता है और सम्पूर्ण संगीत ही मानव हृदय को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता रखता है। जैसे ही संगीत में ताल और लय का सृजन होने लगता है अनायास ही श्रोताओं के हाथ और पैर अपने आप ही हिलने लगते हैं और वे संगीत के अथाह सागर में डूबते जाते हैं। यही कारण है कि संगीत में लय और ताल का विशेष महत्व माना जाता है।

12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. संगीत विशारद, बसंत, संगीत कार्यालय हाथरस, उ.प्र., जनवरी 1997, 21वां संस्करण।
2. संगीत शिक्षा, श्री मति विजय अरोड़ा, ए.पी. पब्लिशर, जालन्धर।
3. संगीत निबन्ध माला।

12.10 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 संगीत में लय का क्या महत्व है ?

प्र0.2 संगीत में ताल के महत्व को समझाइए।

–:–:–:–:–:–:–:–

LESSON – 13

Pranas of Tala

ताल के प्राण

STRUCTURE :

13.1 भूमिका

13.2 उदेश्य

13.3 ताल की परिभाषा

13.4 ताल के प्राण

13.4.1 काल

13.4.2 क्रिया

13.4.2.1 सशब्द क्रिया

13.4.2.2 निशब्द क्रिया

13.4.3 कला

13.4.4 मार्ग

13.4.5 अंग

13.4.6 यति

13.4.6.1 समायति

13.4.6.2 श्रोतावहा

13.4.6.3 मृदंगा

13.4.6.4 पिपीलिका

13.4.6.5 गोपुच्छा

13.4.7 प्रस्तार

13.4.8 जाति

13.4.9 ग्रह

13.4.9.1 समग्रह

13.4.9.2 विषम ग्रह

13.4.9.3 अतीत ग्रह

13.4.9.4 अनाघात ग्रह

13.5 सारांश

13.6 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

13.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

13.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

13.1 भूमिका :–

'ताल' का हमारे संगीत में एक महत्वपूर्ण स्थान है। भरत मुनि ने संगीत में काल के नापने के साधन को 'ताल' कहा है। जिस प्रकार भाषा में व्याकरण की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार संगीत में ताल की आवश्यकता होती है। संगीत के अन्तर्गत् गायन, वादन और नृत्य की शोभा ताल से ही होती है। इसलिए कहा भी गया है

कि ––––

तालस्तलप्रतिष्ठायामिति धार्योधजि स्मृतिः।

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं यतस्ताले प्रतिष्ठितम्।।

13.2 उदेश्य :–

इस पाठ का उदेश्य ताल के विषय में विस्तार से जानना है कि ताल की परिभाषा क्या है और ताल के प्राण कितने और क्या–क्या हैं।

13.3 ताल की परिभाषा :–

ताल शब्द 'तल' धातु से बना है। संगीत रत्नाकर के अनुसार, जिसमें गीत, वाद्य और नृत्य प्रतिष्ठित होते हैं, वह 'ताल' है। 'प्रतिष्ठा' का अर्थ होता है –– व्यवस्थित करना, आधार देना या स्थिरता प्रदान करना। तबला, पखावज, मृदंग आदि ताल वाद्यों से जब गाने के समय को नापा जाता है, तो एक विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है। वास्तव में ताल संगीत की जान है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 ताल की परिभाषा बताइए।

13.4 ताल के प्राण :–

प्रत्येक जाति के तालों में दस बातें अथवा लक्षण अवश्य ही मिलती हैं या मिलेंगी, इन्हें ही ताल के दस प्राण कहा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि तालों में कुछ विशेष बातें होती हैं जिन्हें ताल के प्राण कहा जाता है। इनके बिना ताल का अस्तित्व नहीं हो सकता।

ताल के दस प्राण माने जाते हैं जो कि इस प्रकार हैं –– काल, क्रिया, कला, मार्ग, अंग, प्रस्तार, जाति, ग्रह, लय और यति। इन दस प्राणों का वर्णन इस प्रकार है ––

13.4.1 काल :–

समय का ही दूसरा नाम 'काल' है। काल से ही मात्राओं और तालों की रचना हुई है।

13.4.2 क्रिया :–

किसी भी ताल की मात्राओं के गिनने को 'क्रिया' कहते हैं। हाथों से ताली लगाना या खाली दिखाना अथवा मात्राओं को उँगलियों से गिनना, ये सब क्रिया के अन्तर्गत् आता है। क्रिया से ही हमें यह पता चलता है कि ताल कौन सी है और उसमें कौन–कौन से अंग हैं। क्रिया के दो भेद माने गए हैं –– सशब्द क्रिया और निःशब्द क्रिया।

13.4.2.1 सशब्द क्रिया :–

यह ताल की मात्राओं या समय को गिनने की वह क्रिया है, जिसमें आवाज़ उत्पन्न होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि ताली देकर मात्राएं गिनना 'सशब्द क्रिया' कहलाता है।

13.4.2.2 निशब्द क्रिया :–

जब ताल की मात्राएं या समय बिना आवाज़ के अर्थात् बिना शब्द के अथवा उँगलियों पर गिनी जाए तब उसे 'निशब्द क्रिया' कहते हैं।

13.4.3 कला :–

अक्षर–काल का सूक्ष्म विभाजन 'कला' कहलाता है। इस आधार पर मात्राओं के हिस्से या भाग को कला कहते हैं। जैसे आधी मात्रा, चौथाई मात्रा अथवा 1/8 मात्रा इत्यादि।

13.4.4 मार्ग :– निश्चित काल से युक्त कलाओं के समूह को 'मार्ग' कहते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में ये चार प्रकार के बताए गए हैं। ध्रुव, चतुरा, दक्षिणा और वृतिका। कला के अनुसार इन्हें भिन्न–भिन्न प्रकार से बांटा जाता था। किन्तु प्राचीन समय से इनका वास्तविक रूप क्या था यह पता नहीं चलता।

13.4.5 अंग :–

ताल के समय में जो भिन्न–भिन्न भाग होते हैं, उन्हें ही 'अंग' कहा जाता है। इस प्रकार 'अक्षर काल' को स्पष्ट करने वाले चिन्हों को 'अंग' कहा जाता है। ये छः प्रकार के माने गए हैं जो कि इस प्रकार हैं –– अनुद्रुत, द्रुत, लघु, गुरू, प्लुत और काकपद। इनमें अनुद्रुत –1 मात्रा का, द्रुत –2 मात्रा का, लघु –4 मात्रा, गुरू –8 मात्रा, प्लुत में 12 मात्रा, तथा काकपद में 16 मात्राओं का समय माना गया है।

13.4.6 यति :–

लय के चाल क्रम 'गति' को ही यति कहा जाता है। प्राचीन काल के शास्त्रों में यति के पाँच प्रकार बताए गए हैं। जो कि इस प्रकार हैं ––

13.4.6.1 समायति :–

लय के अन्तर्गत् आरम्भ, मध्य और अंत, इन तीनों स्थानों पर बराबर अर्थात् एक–सी लय का होना ही 'समायति' कहलाता है।

13.4.6.2 श्रोतावहा :–

जिसके आरम्भ में विलम्बित लय, मध्य में मध्य लय तथा अंत में द्रुत लय हो उसे 'श्रोतावहा' यति कहते हैं।

13.4.6.3 मृदंगा :–

जिसके आरम्भ और अंत में द्रुत लय तथा बीच में मध्य या विलम्बित लय होती है, उसे 'मृदंगा' यति कहा जाता है।

13.4.6.4 पिपीलिका :–

जिसके आदि और अंत में विलम्बित या मध्य लय होती है और मध्य में द्रुत लय होती है, उसे 'पिपीलिका' यति कहते हैं।

13.4.6.5 गोपुच्छा :–

जो यति द्रुत लय से आरम्भ होकर क्रमशः मध्य और फिर विलम्बित होती जाए, उसे गोपुच्छा यति कहते हैं।

13.4.7 प्रस्तार :–

'प्रस्तार' का अर्थ है –– बढ़ाना या फैलाना। इस आधार पर भिन्न–भिन्न रूपों से की जाने वाली अंग कल्पना को 'प्रस्तार' कहा जाता है। जिस प्रकार सात स्वरों के फैलाव या मिश्रण से लगभग 5040 तानें पैदा हुई

या बनाई गई हैं, उसी प्रकार एक मात्रा से लेकर 12 मात्राओं तक (प्राचीन काल के अनुसार) के प्रस्तार या विस्तार से भिन्न–भिन्न तालों की रचना होकर उनकी संख्या लगभग 65535 तालें हो जाती हैं।

13.4.8 जाति :–

ताल के बोलों की रचना जितने–जितने अक्षरों से हुई है, उनके अनुसार ताल की पाँच जातियां बताई गई हैं। जो कि इस प्रकार हैं ––

1. चतस्त्र जाति –– चार मात्राओं के लिए
2. तिस्त्र जाति –– तीन मात्राओं के लिए
3. खंड जाति –– पाँच मात्राओं के लिए
4. मिश्र जाति –– सात मात्राओं के लिए
5. संकीर्ण जाति –– नौ मात्राओं के लिए

13.4.9 ग्रह :–

'ताल' गति या लय को किस स्थान से ग्रहण करता है अर्थात् गीत और लय कहाँ से प्रारम्भ होते हैं, उसे जानने के लिए 'ग्रह' बनाए गए हैं। जो कि चार प्रकार के बताए गए हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है––

13.4.9.1 सम ग्रह :–

जब गीत और ताल एक ही स्थान से आरम्भ हों तो उसे 'समग्रह'कहते हैं।

13.4.9.2 विषम ग्रह :–

जब ताल का सम निकलने के बाद गीत या गान शुरू किया जाए तब उसे 'विषम ग्रह' कहते हैं। विषम का अर्थ है असमान या बराबर न होना।

13.4.9.3 अतीत ग्रह :–

अतीत का अर्थ है – पिछला या गुज़रा हुआ। जब ताल के सम का अंत होने पर गायन या वादन आरम्भ किया जाता है तब उसे 'अतीत ग्रह' कहा जाता है।

13.4.9.4 अनाघात ग्रह :–

जब पहले गीत या गायन–वादन आरम्भ हो जाए और उसके बाद ताल शुरू किया जाए तब उसे 'अनाघात या अनागत ग्रह' कहते हैं।

इस प्रकार ताल के दस प्राण बताए गए हैं जिनके बिना ताल का अस्तित्व सम्भव नहीं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 ताल में क्रिया क्या है ? वर्णन कीजिए।

प्र0.2 ताल में ग्रह को कितने प्रकार का बताया गया है ?

प्र0.3 ताल के प्राणों में जाति का वर्णन कीजिए।

13.5 सारांश :–

संगीत की प्रतिष्ठा ताल से मानी जाती है। विद्वानजन ताल की उत्पत्ति शिव के डमरू के डिमडिम से मानते हैं। ताल की उत्पत्ति का कारण चाहे कुछ भी रहा हो लेकिन इतना अवश्य है कि संगीत की रंजकता को बढ़ाने में ताल का महत्वपूर्ण स्थान है। गायक तथा वादक जब स्वर में लीन होकर राग के माध्यम से तथा ताल में मग्न होकर अपना संगीत प्रस्तुत करते हैं तो स्वयं ही संगीत जीवन्त हो उठता है। ताल भी लय, अंग आदि के सहयोग से निर्मित क्रिया है। ताल की यही चीज़ें ताल के प्राण कहलाती हैं। जिसका वर्णन इस पाठ में किया गया है।

13.6 स्वयं परीक्षा प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 ताल की परिभाषा बताइए।

उ0. **ताल की परिभाषा :–**

ताल शब्द 'तल' धातु से बना है। संगीत रत्नाकर के अनुसार, जिसमें गीत, वाद्य और नृत्य प्रतिष्ठित होते हैं, वह 'ताल' है। 'प्रतिष्ठा' का अर्थ होता है –– व्यवस्थित करना, आधार देना या स्थिरता प्रदान करना। तबला, पखावज, मृदंग आदि ताल वाद्यों से जब गाने के समय को नापा जाता है, तो एक विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है। वास्तव में ताल संगीत की जान है।

प्र02. ताल में क्रिया क्या है ? वर्णन कीजिए।

उ0. किसी भी ताल की मात्राओं के गिनने को 'क्रिया' कहते हैं। हाथों से ताली लगाना या खाली दिखाना अथवा मात्राओं को उँगलियों से गिनना, ये सब क्रिया के अन्तर्गत् आता है। क्रिया से ही हमें यह पता चलता है कि ताल कौन सी है और उसमें कौन–कौन से अंग हैं। क्रिया के दो भेद माने गए हैं –– सशब्द क्रिया और निःशब्द क्रिया।

सशब्द क्रिया :–

यह ताल की मात्राओं या समय को गिनने की वह क्रिया है, जिसमें आवाज़ उत्पन्न होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि ताली देकर मात्राएं गिनना 'सशब्द क्रिया' कहलाता है।

निशब्द क्रिया :–

जब ताल की मात्राएं या समय बिना आवाज़ के अर्थात् बिना शब्द के अथवा उँगलियों पर गिनी जाए तब उसे 'निशब्द क्रिया' कहते हैं।

प्र03. ताल में ग्रह को कितने प्रकार का बताया गया है ? वर्णन कीजिए।

उ0. **ग्रह :–**

'ताल' गति या लय को किस स्थान से ग्रहण करता है अर्थात् गीत और लय कहाँ से प्रारम्भ होते हैं, उसे जानने के लिए 'ग्रह' बनाए गए हैं। जो कि चार प्रकार के बताए गए हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है––

सम ग्रह :–

जब गीत और ताल एक ही स्थान से आरम्भ हों तो उसे 'समग्रह'कहते हैं।

विषम ग्रह :–

जब ताल का सम निकलने के बाद गीत या गान शुरू किया जाए तब उसे 'विषम ग्रह' कहते हैं। विषम का अर्थ है असमान या बराबर न होना।

अतीत ग्रह :–

अतीत का अर्थ है – पिछला या गुज़रा हुआ। जब ताल के सम का अंत होने पर गायन या वादन आरम्भ किया जाता है तब उसे 'अतीत ग्रह' कहा जाता है।

अनाघात ग्रह :–

जब पहले गीत या गायन–वादन आरम्भ हो जाए और उसके बाद ताल शुरू किया जाए तब उसे 'अनाघात या अनागत ग्रह' कहते हैं।

प्र0.4 ताल के प्राणों में जाति का वर्णन कीजिए।

उ0. **जाति :–**

ताल के बोलों की रचना जितने–जितने अक्षरों से हुई है, उनके अनुसार ताल की पाँच जातियां बताई गई हैं। जो कि इस प्रकार हैं ––

1. चतस्त्र जाति –– चार मात्राओं के लिए
2. तिस्त्र जाति –– तीन मात्राओं के लिए
3. खंड जाति –– पाँच मात्राओं के लिए
4. मिश्र जाति –– सात मात्राओं के लिए
5. संकीर्ण जाति –– नौ मात्राओं के लिए

13.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. संगीत विशारद, बसंत, संगीत कार्यालय हाथरस, उ.प्र., जनवरी 1997, 21वां संस्करण।
2. संगीत निबन्ध माला।
3. भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन, डा0 अरूण कुमार सेन, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, दारागंज, इलाहाबाद।
4. संगीत तबला अंक 1993।

13.8 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र01. ताल के प्राण जाति और ग्रह का वर्णन कीजिए।

प्र02. ताल में यति और अंग क्या है ? वर्णन कीजिए।

–:–:–:–:–:–:–:–

Unit – IV

LESSON – 14

Study of the Following

Sthaya, Giti-Riti, Kaku, Kutup, Gamak, Alapti

STRUCTURE :

14.1 भूमिका

14.2 उदेश्य

14.3 स्थाय

14.4 गीति–रीति

14.4.1 शुद्ध गीति

14.4.2 भिन्ना गीति

14.4.3 गौड़ी गीति

14.4.4 बेसरा गीति

14.4.5 साधारणी गीति

14.4.6 रीति

14.5 काकु

14.5.1 काकु के प्रकार

14.5.1.1 स्वर काकु

14.5.1.2 राग काकु

14.5.1.3 अन्य राग काकु

14.5.1.4 देश काकु

14.5.1.5 क्षेत्र काकु

14.5.1.6 यंत्र काकु

14.6 कुतुप

14.6.1 तत् कुतुप

14.6.2 अवनद् कुतुप

14.6.3 नाटाश्रय कुतुप

14.7 गमक

14.7.1 गमक के प्रकार

14.8 आलप्तिगान

14.9 सारांश

14.10 शब्दकोष

14.11 स्वयं परीक्षा प्रश्न–उत्तर

14.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

14.13 महत्वपूर्ण प्रश्न

14.1 भूमिका :–

स्थाय, गीति–रीति, काकू , कुतुप, गमक और आलप्तिगान, ये सभी हमारे संगीत के आभूषण हैं। प्राचीनकाल से इन अलंकारों का प्रयोग हमारे संगीत में होता आ रहा है। ये आभूषण हमारे संगीत में इतनी रंजकता भर देते हैं कि इनके प्रयोग से मानव संगीत को सुनकर आनन्दविभोर तो होता ही है साथ ही अपने आप को ईश्वर के समीप भी पाता है। इन सभी चीज़ों का हमारे संगीत में अलग–अलग महत्व है। अतः इनके विषय में ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।

14.2 उदेश्य :–

संगीत से सम्बन्धित ऐसी बहुत सी चीज़ें हैं जिनका हमारे संगीत में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक महत्व रहा है। यह बात अवश्य है कि इन चीज़ों का प्राचीन काल में स्वरूप कुछ अलग था और आज अलग है। उन्हीं में से स्थाय, गीति, कुतुप इत्यादि ऐसी चीज़197 ंता जिनका प्रयोग हमारे संगीत को अथवा हमारे गायन–वादन को और अधिक मनोरंजक और आनन्ददायक बना देती हैं। इन्हीं चीज़ों के विषय में विस्तार से जानना इस पाठ का उदेश्य है।

14.3 स्थाय :–

छोटे–छोटे स्वर समुदाय को स्थाय कहते हैं। जैसे ''सा नि़ ध़ नि़ सा'' या ''म ग म ग रे सा'' स्वर समुदाय को हम बागेश्री राग की पकड़ कह सकते हैं। लेकिन कुछ ऐसे छोटे–छोटे स्वर समुदाय जो कि बागेश्री की पकड़ नही हैं लेकिन फिर भी इस राग को स्पष्ट करते हैं, जैसे –– '' ग म ध '' या ''म ध नि ध म'' अथवा '' सां नि ध नि ध '' या ''म प ध ग म ग रे सा नि़ ध़'' आदि स्वर समुदाय पकड़ नही है लेकिन राग के स्वरूप को स्पष्ट करते हैं। अतः ऐसे ही छोटे–छोटे स्वर समुदाय जिनका प्रयोग राग के गायन–वादन में किया जाता है, ''स्थाय'' कहलाते हैं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 स्थाय किसे कहते हैं ?

14.4 गीति–रीति :–

प्राचीन काल में जाति गायन के पश्चात् ख्याल गायन प्रचार में आया तो इसके साथ ही भिन्न–भिन्न शैलियाँ भी प्रचलित हुई। उस समय जब रागों का वर्गीकरण हुआ तो अलग–अलग भागों में रागों की अलग–अलग संख्या मानी गई। ये विभाजन ग्राम राग वर्गीकरण, थाट राग वर्गीकरण इत्यादि थे। इन रागों का वर्गीकरण जब किया गया तो इन्हें 18 जातियों में विभाजित किया गया और इन्हीं 18 जातियों से ग्राम रागों की उत्पत्ति बताई गई। इन ग्राम रागों को शुद्ध, भिन्न, गौड़ी, बेसरा, साधारणी इन पाँच गीतियों में विभाजित किया गया। इस प्रकार पाँच प्रकार की गीतियाँ राग वर्गीकरण के समय में प्रचलित हुईं।

इसके बाद जब ध्रुपद गायन प्रचार में आया तो जिस प्रकार ख्याल गायन के भिन्न–भिन्न घराने बने उसी प्रकार ध्रुपद गायन में भी (ख्याल गायन घरानों से पूर्व) अलग–अलग घरानों अथवा गायन शैलियों का आविष्कार हुआ। ध्रुपद गाने वालों को कलावंत कहकर पुकारा जाता है और इनके द्वारा ध्रुपद को भिन्न–भिन्न शैलियों में गाने को 'वाणी' कहा जाता है। ध्रुपद की इन वाणियों को भी पाँच भेदों में विभाजित माना जाता है जैसे ––

शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, बेसरा और साधारणी, जिन्हें गीति कह कर पुकारा जाता है। ध्रुपद की यही वाणियाँ गौड़हारी, खण्डारवाणी, डागुर वाणी, नौहार वाणी कहलाई। यही वाणियाँ 'रीति' भी कहलाती हैं।

गीति का अर्थ है स्वर प्रयोग अर्थात् ''स्वरों को लगाने का विशिष्ट प्रकार''। गीतियों के पाँच प्रकार हैं :–

14.4.1 शुद्ध गीति :–

सरल और लालित्यपूर्ण स्वरों के प्रयोग से ''शुद्धा गीति'' होती है। इस प्रकार की गीति में स्वरों का वक्र प्रयोग न करके सीधा और सरल प्रयोग ही किया जाता है। जिससे स्वरों में लालित्य रहता है।

14.4.2 भिन्ना गीति :–

शुद्ध गीति के विपरीत स्वरों का वक्र प्रयोग, सूक्ष्म तथा मधुर गमकों का प्रयोग ''भिन्ना गीति'' कहलाती है।

14.4.3 गौड़ी गीति :–

तीनों सप्तकों में गाड़ (घना) गमकों का प्रयोग और ललित स्वरों के साथ तीनों सीानों में अख198 ंतायोग करना ''गौड़ी गीति'' कहलाता है। साथ ही गौड़ी गीति में ओहाटी गमकों का प्रयोग भी किया जाता है। ओहाटी का अर्थ है ठोड़ी को हृदय से लगा कर कंपित और मधुर स्वरों का प्रयोग करना।

14.4.4 बेसरा गीति :–

स्थाई, आरोही, अवरोही, संचारी इन वर्णों में अत्यन्त रंजकता के साथ वेग से अर्थात् द्रुत गति में स्वरों का उच्चारण करना ''बेसरा गीति'' कहलाती है। वेग से स्वरों का उच्चारण करने के कारण भी इसे 'वेगस्वरा गीति' भी कहा जाता है और वेगस्वरा का परिमार्जित रूप ही बेसरा गीति है।

14.4.5 साधारणी गीति :–

उपरोक्त चारों गीतियों के मिश्रण से ''साधारणी गीति'' बनती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब सभी गीतियों के लक्षण एक में दिखाई 198 ंतो वह साधारणी गीति होती है।

संगीत में भिन्न–भिन्न विद्वानों का गीतियों की संख्या के विषय में मतभेद पाया जाता है। पहले मुख्यतः गीतियाँ दो प्रकार की बताई गई हैं –– पदाश्रित और स्वराश्रित। पदाश्रित गीतियाँ भरत के समय से लेकर आजतक बताई गई हैं। जो कि इस प्रकार हैं –– मागधी, अर्धमागधी, सम्भाविता और पृथुला। लेकिन स्वराश्रित गीतियों के विषय में मतभेद पाया जाता है। जैसे मतंग 7 प्रकार की स्वराश्रित गीतियाँ बताते हैं। इसी प्रकार

याष्टिक ने 3, शार्दुल ने 1, दुर्गा ने 5 स्वराश्रित गीतियाँ बताईं हैं। लेकिन अंत में केवल 5 गीतियों को ही मान्यता दी गई है।

14.4.6 रीति :–

जिस प्रकार गायन में एक विशेष शैली को 'गीति' कहा जाता है अथवा जो सीान गायन में गीति का है, नाटक में 'वृति' का है वही सीान या वही शैली विशेष काव्य में 'रीति' कहलाती है।

इस प्रकार प्राचीन काल से ही गीतियों का प्रयोग होता आ रहा है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 शुद्धा व भिन्ना गीति क्या है ?

प्र0.2 रीति से आप क्या समझते हैं ?

14.5 काकु :–

कंठ की भिन्नता से ध्वनि में जो विभिन्नता आती है उसे ''काकु'' कहते हैं। ध्वनि या आवाज़ में मनोभावों को व्यक्त करने की एक अदभुत शक्ति होती है। जैसा कि हम जानते हैं कि गले में जो ध्वनि तंत्रियाँ होती हैं उसके द्वारा ही हमारे कंठ से ध्वनि अथवा स्वर उत्पन्न होता है। इसी प्रकार तारों वाले वाद्य से तारों को छेड़ते हैं तो तारों के आन्दोलन से ध्वनि उत्पन्न होती है और इसके विपरीत हारमोनियम, बाँसुरी, शहनाई, क्लारोनेन्ट आदि सुषिर वाद्यों में कमानी के द्वारा ध्वनि पैदा होती है। जब हम इन वाद्यों की ध्वनि को सुनते हैं तो हम इनकी अलग–अलग ध्वनियों से पहचान लेते हैं कि कौन सा वाद्य बज रहा है।

ध्वनि में मनोभावों को व्यक्त करने की एक विचित्र शक्ति होती है। शोक, भय, प्रसन्नता, प्रेम आदि भावों को व्यक्त करने के लिए जब ध्वनि अथवा आवाज़ में भिन्नता आती है तब उसे काकु कह कर पुकारा जाता है। काकु का प्रयोग मानव द्वारा तो होता ही है, साथ ही पशुओं द्वारा भी काकू का प्रयोग भली–भान्ति होता है। जैसे जब कोई कुत्ता किसी चोर के लिए भौंकता है तो उसकी आवाज़ में एक प्रकार की भयंकरता व कठोरता होती है लेकिन जब वही कुत्ता अपने मालिक के साथ प्यार करना चाहता है या घूमने जाना चाहता है तो उसके भौंकने में एक अलग प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती है जिसमें विनय या प्रार्थना का भाव छुपा होता है। जब इस प्रकार ध्वनि अथवा आवाज़ बदल जाती है तो उसे काकु कहते हैं। इसी प्रकार जब बिल्ली भूखी होती है तो उसकी मियांऊँ में अलग तरह की ध्वनि होती है और वही बिल्ली जब किसी को अपने बच्चों को छेड़ते हुए देखती है तो उसकी ध्वनि में विरोध प्रकट होता है। ध्वनि की इसी भिन्न शैली अथवा शक्ति को काकु कहते हैं। जैसे उदाहरण के लिए हम एक शब्द ले लें ''जाओ'' इस शब्द में काकु के विभिन्न प्रयोग देखने को मिल सकते हैं। जैसे यदि

कोई अफसर अपने चपरासी को कहे 'जाओ' तो उस शब्द में आज्ञा देने की भावना पाई जाएगी। यदि कोई अध्यापक विद्यार्थी को छुट्टी के समय कहे कि 'जाओ' तो अलग प्रकार का काकु उत्पन्न होगा। इसी शब्द को यदि क्रोधित भाव में कहा जाए तो पृथक काकु उत्पन्न होता है।

कहने के तात्पर्य यह है कि बोलने के लिए शब्द चाहे एक ही हो लेकिन ध्वनि द्वारा उस शब्द के अलग–अलग मनोभावों को प्रकट किया जा सकता है तो काकु अलग–अलग हो जाते हैं। इसी प्रकार गायन में अलग–अलग काकु प्रयोग सुनने को मिलते हैं। जैसे –– हम पं0 ओंकारनाथ ठाकुर का लोकप्रिय भजन "मईया मोरी मैं नहीं माखन खायो" सुनते हैं तो उसमें उन्होंने मईया शब्द में भिन्न–भिन्न काकु प्रयोग करके श्रोताओं को अलग–अलग भावों से परिचय करवाया है जिसमें आनन्द का भाव, गुस्से का रोष, कभी माता से विनम्रता का भाव, कभी झुंझलाहट का भाव, कभी करूणा प्रकट की तो कभी वंदना दर्शाई। ये सभी कुछ काकु के चमत्कार होते हैं। काकु का संगीत 200 ंतो प्रयोग होता ही है लेकिन नाटकों में भी काकु का प्रयोग विशेष रूप से होता है।

जब नाटक के किसी पात्र के संवादों द्वारा विशेष भाव दर्शाया जाता है तो वहाँ पर काकु विशेष सहायक होते हैं। जो अभिनेता काकु का प्रयोग करने में जितना कुशल होगा वह अपने अभिनय में उतना ही सफल होगा।

हमारे नाट्य शास्त्र में काकु की विशेष व्याख्या पाई जाती है। काकु को व्यक्त करने के लिए अलग–अलग सीान बताए हैं। जैसे –– छाती, कंठ और सिर आदि। साथ ही काकु से कौन–कौन से रस व्यक्त होते हैं, इसका भी उल्लेख किया गया है। शारंगदेव द्वारा रचित "संगीत रत्नाकर" में प्रकीर्ण अध्याय में काकु की व्याख्या के साथ–साथ उसके छः प्रकारों का वर्णन भी किया गया है ––

14.5.1 काकु के प्रकार :–

स्वर काकु

राग काकु

अन्य राग काकु

देश काकु

क्षेत्र काकु

यंत्र काकु

इन सभी का वर्णन इस प्रकार है :–

14.5.1.1 स्वर काकु :–

जब श्रुति को कुछ अधिक या कम कहा जाता है तो एक स्वर की दूसरे में जहाँ छाया दिखती है वह 'स्वर काकु' होता है।

14.5.1.2 राग काकु :–

किसी राग की अपनी जो मुख्य छाया होती है वह 'राग काकु' कहलाती है।

14.5.1.3 अन्य राग काकु :–

जब किसी राग की छाया अन्य राग में दिखाई देती है तो उसे 'अन्य राग काकु' कहते हैं।

14.5.1.4 देश काकु :–

जो किसी अन्य राग का सहारा न लेकर अपने देश या स्वभाव से अपने राग में ही सम्मिलित रहता है वह 'देश काकु' कहलाता है।

14.5.1.5 क्षेत्र काकु :–

यहाँ क्षेत्र का अर्थ है 'शरीर' और यहाँ पर शरीर को ही क्षेत्र कहा गया है लेकिन प्रत्येक कंठ से निकलने वाली ध्वनि या आवाज़ में भिन्नता पाई जाती है। इस भिन्नता के कारण ही हम पहचान लेते हैं कि यह अमुक व्यक्ति की आवाज़ है। इस प्रकार शरीर से उत्पन्न होने के कारण आवाज़ का जो परिवर्तन होता है वह 'क्षेत्र काकु' के अन्तर्गत् आता है।

14.5.1.6 यंत्र काकु :–

वीणा या बाँसुरी आदि वाद्यों से उत्पन्न ध्वनि को 'यंत्र काकु' कहा जाता है। इस यंत्र काकु के कारण ही हमारे कान बिना देखे ही अलग–अलग वाद्यों की ध्वनि को केवल सुन कर ही पहचान लेते हैं कि कौन सा वाद्य बज रहा है।

ध्वनि की भिन्नता एवं विभिन्नता अर्थों का बोध कराने में जो शक्ति कार्य करती है, उसी को काकु कहा जाता है। एक पाश्चात्य विद्वान का कहना है कि 'काकु' ध्वनि के उस विचार को कहते हैं जिसके द्वारा किसी भाव की अभिव्यक्ति हो। काकु की ये व्याख्या काफी हद तक सही लगती है। वास्तव में काकु के अन्दर ऐसी विचित्र शक्ति है जिसके द्वारा भिन्न–भिन्न भावों की अभिव्यक्ति होती है। स्वर में माधुर्य उत्पन्न होता है, रसों की सुष्टि होती है। अतः संगीत में काकु का प्रयोग विशेष महत्व रखता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 काकु क्या है ?

प्र0.2 यंत्र काकु से आप क्या समझते हैं ?

प्र0.3 राग काकु और स्वर काकु का वर्णन कीजिए।

14.6 कुतुप :–

मन्दिरों की परम्परा में देव आराधना के समय शंख, घड़ियाल, घण्टा, झांझ, मंजीरा, मृदंग, ढोल, एकतारा, करताल, नादस्वरम तथा वीणा जैसे विभिन्न ध्वनियों वाले वाद्य कितने ही समय से बजाते चले आ रहे हैं। ये वाद्य बहुत ही पुराने समय से मन्दिरों में प्रातः तथा सांयकाल के समय में प्रयोग होते आ रहे हैं जो कि भारतीय वाद्यवृन्द का सूचक है।

तत्, अवनद, घन तथा सुषिर सभी प्रकार के वाद्य भारतीय मंदिरों में उपलब्ध हैं, जिनका प्रयोग ईश्वर आराधना के लिए वाद्यवृन्द के रूप में किया जाता है। इसके अतिरिक्त आराधना काल को छोड़ कर भगवान की सेवा के अतिरिक्त रात्रीकालीन गायन–वादन और नर्तन जो कि उत्तर भारतीय तथा दक्षिण भारतीय मन्दिरों में चलता रहता है, उसमें वाद्यवृन्द को लगातार आश्रय मिलता रहा है। इस प्रकार आज का वाद्यवृन्द देखा जाए तो यह उसी के परिणाम का प्रतिफल है।

नाट्य शास्त्र भारतीय संगीत का आधार ग्रन्थ माना जाता है। जब इस ग्रन्थ का अध्ययन करते हैं तो उसके आतोद्य प्रकरण में महर्षि भरत ने विस्तार पूर्वक वृंद की चर्चा की है और इस वृंद को कुतुप की संज्ञा दी है। यहीं से कुतुप शब्द का संगीत जगत में आरम्भ हुआ। कुतुप को भरत मुनि ने तीन भागों में विभाजित किया––

क. तत् कुतुप

ख. अवनद कुतुप

ग. नाट्याश्रय कुतुप

14.6.1 तत् कुतुप :–

इसी प्रकार संगीतरत्नाकर में तत् कुतुप का वर्णन किया है और तत् कुतुप को घोषवति, चित्रा, विपंची, परिवादिनी, किन्नरी, पिनाक, हस्तिका, शततंत्रिका, रावण हस्ता, सारंगी आदि वीणाओं, वंश, शंख, पाविक, काहल, श्रृंग जैसे वाद्यों के वादन तथा उत्तम ताल धारियों से युक्त बताया है।

14.6.2 अवनद् कुतुप :–

अवनद कुतुप को मृदंग, दुर्दुर, ढमरू, तुम्बकी, कर्मा, कांस्यताल, घंटा आदि वाद्यों से युक्त बताया है।

14.6.3 नाट्याश्रय कुतुप :–

नाट्याश्रय कुतुप को विभिन्न देशीय अभिनय तथा नृत्यकला में सिधस्त पंडितों से युक्त बताया है। भरत के समय में संगीत नाटकों के आश्रित माना जाता था। इसलिए कुतुप का आयोजन भी नाटक के अन्तर्गत ही

किया जाता था। नाटक के अतिरिक्त कुतुप का आयोजन या प्रयोग कुछ विशेष अवसरों में ही होता था जैसे – जब सम्राट अशाोक तीर्थ यात्रा को निकलते थे तो उनके साथ वाद्य वादकों का एक समूह भी साथ जाता था। इसी प्रकार गुप्त काल के समय में, युद्ध के समय में जिन वाद्यों का प्रयोग होता था उसे अवनद कुतुप कहकर पुकारा जाता था। इसी प्रकार जब सम्राट हर्ष अपने स्नानागार में जाते थे तो श्रृंग, वीणा और ढोल आदि वाद्यों के साथ सम्मिलित वादन किया जाता था जो कि तत् एवं अवनद कुतुप के अन्तर्गत आता था।

इस प्रकार भरत के समय से मुगल काल के आरम्भ तक वृंद को या वाद्यवृंद को 'कुतुप' कहकर पुकार जाता था। मुगल काल में कुतुप की संज्ञा 'नौबत' को प्रदान की गई।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 4

प्र0.1 कुतुप से आप क्या समझते हो ?

प्र0.2 नाट्याश्रय कुतुप का वर्णन कीजिए।

14.7 गमक :–

एक विशेष प्रकार के मधुर कम्पन्न को "गमक" कहते हैं। इस शब्द का प्रयोग प्राचीनकाल में होता था और आज के आधुनिक संगीत में भी होता है किन्तु गमक के प्राचीन और आधुनिक अर्थों में भेद है। प्राचीनकाल में "स्वरस्य कंपो गमकः" अर्थात् स्वर के कम्पन्न को गमक कहते थे, किन्तु आजकल हृदय पर ज़ोर लगाकर स्वरों को गम्भीरता पूर्वक उच्चारण करने को "गमक" कहते हैं। दूसरे शब्दों 203 ंता यह कह सकते हैं कि, स्वरों का ऐसा कम्पन्न जो सुनने वालों के मन को सुख की अनुभूति करवाए, उसे 'गमक' कहते हैं। आन्दोलन के द्वारा जब स्वरों में कम्पन्न पैदा होता है तो उसका गम्भीरता पूर्वक उच्चारण करना भी गमक कहलाता है। जैसे –– सा ऽऽऽ रेऽऽऽ।

प्राचीन समय में स्वरों में एक विशेष प्रकार के कम्पन्न को गमक कहा जाता था और इस कम्पन्न को प्रकट करने के लिए विभिन्न प्रकार के ढंग उस समय प्रचार में थे। कहने का अर्थ यह है कि गमक को प्रस्तुत करने के अलग–अलग प्रकार उस समय प्रचलित थे। वर्तमान समय में यद्यपि गमकों का प्रयोग प्राचीन समय के अनुसार नहीं होता है लेकिन फिर भी किसी न किसी रूप में आज भी हमारे वाद्यों और कंठ संगीत 203 ंतो का प्रयोग होना आवश्यक है। गायन–वादन के समय जब हम खटका, मुर्की, जमजमा, मींड, सूत, कम्पन्न और गिटकरी आदि का प्रयोग करते हैं तो ये सब गमक की श्रेणी में ही आ जाते हैं।

आधुनिक संगीतकार गमक की व्याख्या इस प्रकार करते हैं :–

'' जब हृदय से ज़ोर लगा कर, गम्भीरतापूर्वक, कुछ कम्पन्न के साथ, स्वरों का प्रयोग किया जाता है तो उसे 'गमक' कहा जाता है।''

गमक का प्रयोग अधिकतर ध्रुपद गायन में होता है लेकिन कुछ गायक कलाकार ख्याल गायन में भी गमक की तानों का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार नोम–तोम के आलाप में भी जब अन्तिम भाग द्रुत लय में कहा जाता है तो उस समय गमक युक्त तानों का प्रयोग किया जाता है। वाद्य–वादन में भी गमक का प्रयोग होता है। प्राचीन ग्रन्थों में 15 प्रकार के गमक बताए गये हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं –

1. कम्पित
2. आन्दोलित
3. स्फुरित
4. तिरिप
5. मुद्रित
6. लीन
7. नामित
8. कुरूला
9. मिश्रित
10. हुम्फित
11. उल्लासित
12. बली
13. प्लावित
14. आहत
15. त्रिभिन्न

इसके विपरीत कर्नाटक संगीत में 10 प्रकार के गमक प्रयोग होते हैं जो कि इस प्रकार हैं –––

आरोह, अवरोह, ढालू, स्फुरित, कंपित, आहत, प्रत्याहत, त्रिपुच, आन्दोलित, मूर्च्छना।

किन्तु आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत में ये नाम नहीं प्रयुक्त होते हैं। गमक के इन प्रकारों में से अधिकांश दूसरे नाम हिन्दुस्तानी संगीत में आजकल प्रयोग किए जाते हैं जैसे – मींड, कण, खटका, मुर्की, जमजमा, घसीट, पुकार आदि।

14.7.1 गमक के प्रकार :–

उत्तर भारतीय 15 प्रकार के गमकों का वर्णन इस प्रकार हैं :–

कंपित :–

इस गमक को आजकल 'खटका' कहते हैं। इसमें कम्पन्न का काल 1/4 मात्रा का होता है।

आन्दोलित :–

एक मात्रा में ही कम्पन्न लेना 'आन्दोलित' गमक कहलाता है।

स्फूरित :–

इसे आजकल की भाषा में गिटकरी कहते हैं। इसमें कम्पन्न का काल 1/6 मात्रा का होता है।

तिरिप :–

इसे आजकल हिलोल भी कहते हैं। इस प्रकार की गमक में स्वरों को तेज़ी से कंपित किया जाता है। ये कम्पन्न काल 1/8 मात्रा का होता है।

मुद्रित :–

जब मुँह बंद करके गमक ली जाए तो उसे 'मुद्रित' गमक कहते हैं।

लीन :–

जब कोई स्वर आधी मात्रा के समय में किसी आगे या पीछे के स्वर में लीन हो जाए तो उसे 'लीन' गमक कहते हैं।

नामित :–

जब स्वर मींड की तरह चलकर अपने स्थान से नीचे हो जाए तो उसे 'नामित' गमक कहते हैं। इसी प्रकार जब नामित गमक का उल्टा किया जाए अर्थात् निचले स्वर को छूकर एकदम ऊँचे स्वर पर आ कर ठहर जाएं तो उसे 'निवृति' गमक कहते हैं।

कुरूला :–

इसे आजकल की भाषा में घसीट कहा जाता है। इसमें स्वरों का घनता के साथ उच्चारण किया जाता है।

मिश्रित :–

जब गमकों में दो या दो से अधिक गमकों को मिश्रित किया जाए तो उसे 'मिश्रित' गमक कहा जाता है।

हुम्फित :–

जब हम हृदय में हुँकार की ध्वनि भरकर गमक उत्पन्न करते हैं तो उसे 'हुँफित' गमक कहते हैं।

उल्लासीत :–

जब स्वर एक ही क्रम से शीघ्रता के साथ आरोही क्रम से गाए–बजाए जाएं तो उसे 'उल्लासित' गमक कहते हैं।

वली या वलित :–

इसे आजकल मींड भी कहते हैं। जैसे धैवत से सीधे षड़ज पर आना ।

पल्लावित :–

जब स्वर को 3/4 मात्रा काल में आन्दोलित किया जाए तो उसे 'पल्लावित' गमक कहते हैं।

आहत :–

गाते–बजाते समय जब किसी स्वर से अगले स्वर को छू कर मूल स्वर पर लौट आते हैं तो उसे 'आहत' गमक कहते हैं।

त्रिभिन्न :–

जब तीन सीानों को छूते हुए चौथे स्थान पर पहुँचा जाए तो उसे 'त्रिभिन्न' गमक कहते हैं।

इस प्रकार हमारे संगीत 206 ंतो का भी विशेष स्थान है, जिसके बिना गायन अथवा वादन संगीत रंजकता पूर्ण नही लग सकता।

दूसरे शब्दों 206 ंता यह कह सकते हैं कि ''स्वरों के कम्पन्न को ''गमक'' कहते हैं। ''गम्भीरता पूर्वक स्वरों के उच्चारण को गमक कहते हैं।'' गमक का प्रयोग जब करते हैं तो हृदय पर ज़ोर पड़ता है,

संगीत रत्नाकर में लिखा है :–

''स्वरस्य कम्पो गमकः श्रोतृचित सुखावहः।''

अर्थात् स्वरों का कम्पन्न गमक कहलाता है जो श्रोताओं के चित को सुख अथवा आनन्द प्रदान करता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 5

प्र0.1 गमक किसे कहते हैं ?

प्र0.2 त्रिभिन्न गमक का वर्णन कीजिए।

प्र0.3 मुद्रित तथा लीन गमक से आप क्या समझते हो ?

14.8 आलप्तिगान :–

मध्यकालीन रागालाप और रूपकालाप से भी अधिक विस्तृत आलाप गायन शैली को ही ''आलप्तिगान'' कहा गया है। आलप्ति गायन में गायक व वादक को राग का अविर्भाव और तिरोभाव अनिवार्य रूप से प्रदर्शित करना ही पड़ता था। वर्तमान समय के प्रचलित ध्रुवपद अंग के आलाप गायन क्रम आलप्ति गायन का परिवर्तित रूप ही है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 6

प्र0.1 आलप्तिगान का वर्णन कीजिए।

14.9 सारांश :–

हमारे संगीत में ऐसी कई चीज़ें प्रयोग की जाती हैं जिससे की संगीत का आनन्द दुगुना हो जाता है। यदि इन सब के विषय में हमें विस्तृत जानकारी होगी तो हमारा संगीत और अधिक मनोरंजक होता जाएगा । स्थाय, काकु, गमक इत्यादि इसी तरह की चीज़ हैं जो हमारे संगीत में चार चाँद लगाते हैं। स्वरों का, विभिन्न प्रकार की ध्वनियों का, अलग–अलग प्रकार की गमक का, आलाप का प्रयोग किस प्रकार किया जाए, इनका क्या इतिहास रहा है, इन सब की जानकारी हमें संगीत को समझने तथा उसके द्वारा संगीत के मनोरंजन को बढ़ाता है।

14.10 शब्दकोष :–

1. लालित्य – सुरीलापन
2. वक्र – टेढ़ा
3. अखंड – बिना टूटा या जो टूट न सके
4. परिमार्जित – परिष्कृत, मंझा हुआ
5. मनोभाव – मन का भाव
6. प्रतिपादन – भली–भान्ति ज्ञात करना या अच्छी तरह समझना
7. सिद्धस्त – कार्यकुशल
8. हिलोल – झूलता हुआ या हिलता हुआ

14.11 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 स्थाय किसे कहते हैं ?

उ0. **स्थाय :–**

छोटे–छोटे स्वर समुदाय को स्थाय कहते हैं। जैसे ''सा नि़ ध़ नि़ सा'' या ''म ग म ग रे सा'' स्वर समुदाय को हम बागेश्री राग की पकड़ कह सकते हैं। लेकिन कुछ ऐसे छोटे–छोटे स्वर समुदाय जो कि बागेश्री की पकड़ नही हैं लेकिन फिर भी इस राग को स्पष्ट करते हैं, जैसे –– '' ग म ध '' या ''म ध नि ध म'' अथवा '' सां नि ध नि ध '' या ''म प ध ग म ग रे सा नि़ ध़'' आदि स्वर समुदाय पकड़ नही है लेकिन राग के स्वरूप को स्पष्ट करते हैं। अतः ऐसे ही छोटे–छोटे स्वर समुदाय जिनका प्रयोग राग के गायन–वादन में किया जाता है, ''स्थाय'' कहलाते हैं।

प्र0.2 शुद्धा व भिन्ना गीति क्या है ?

उ0. **शुद्ध गीति :–**

सरल और लालित्यपूर्ण स्वरों के प्रयोग से ''शुद्धा गीति'' होती है। इस प्रकार की गीति में स्वरों का वक्र प्रयोग न करके सीधा और सरल प्रयोग ही किया जाता है। जिससे स्वरों में लालित्य रहता है।

भिन्ना गीति :–

शुद्ध गीति के विपरीत स्वरों का वक्र प्रयोग, सूक्ष्म तथा मधुर गमकों का प्रयोग ''भिन्ना गीति'' कहलाती है।

प्र0.3 रीति से आप क्या समझते हैं ?

उ0. **रीति :–**

जिस प्रकार गायन में एक विशेष शैली को 'गीति' कहा जाता है अथवा जो स्थान गायन में गीति का है, नाटक में 'वृति' का है वही स्थान या वही शैली विशेष काव्य में 'रीति' कहलाती है।

प्र0.4 काकु क्या है ?

उ0. **काकु :–**

कंठ की भिन्नता से ध्वनि में जो विभिन्नता आती है उसे ''काकु'' कहते हैं। ध्वनि या आवाज़ में मनोभावों को व्यक्त करने की एक अदभुत शक्ति होती है। जैसा कि हम जानते हैं कि गले में जो ध्वनि तंत्रियाँ होती हैं उसके द्वारा ही हमारे कंठ से ध्वनि अथवा स्वर उत्पन्न होता है। इसी प्रकार तारों वाले वाद्य से तारों को छेड़ते हैं तो तारों के आन्दोलन से ध्वनि उत्पन्न होती है और इसके विपरीत हारमोनियम, बाँसुरी, शहनाई, क्लारोनेन्ट आदि सुषिर वाद्यों में कमानी के द्वारा ध्वनि पैदा होती है। जब हम इन वाद्यों की ध्वनि को सुनते हैं तो हम इनकी अलग–अलग ध्वनियों से पहचान लेते हैं कि कौन सा वाद्य बज रहा है।

ध्वनि में मनोभावों को व्यक्त करने की एक विचित्र शक्ति होती है। शोक, भय, प्रसन्नता, प्रेम आदि भावों को व्यक्त करने के लिए जब ध्वनि अथवा आवाज़ में भिन्नता आती है तब उसे काकु कह कर पुकारा जाता है।

काकु का प्रयोग मानव द्वारा तो होता ही है, साथ ही पशुओं द्वारा भी काकू का प्रयोग भली–भान्ति होता है। जैसे जब कोई कुत्ता किसी चोर के लिए भौंकता है तो उसकी आवाज़ में एक प्रकार की भयंकरता व कठोरता होती है लेकिन जब वही कुत्ता अपने मालिक के साथ प्यार करना चाहता है या घूमने जाना चाहता है तो उसके भौंकने में एक अलग प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती है जिसमें विनय या प्रार्थना का भाव छुपा होता है। जब इस प्रकार ध्वनि अथवा आवाज़ बदल जाती है तो उसे काकु कहते हैं। इसी प्रकार जब बिल्ली भूखी होती है तो उसकी मियांऊँ में अलग तरह की ध्वनि होती है और वही बिल्ली जब किसी को अपने बच्चों को छेड़ते हुए देखती है तो उसकी ध्वनि में विरोध प्रकट होता है। ध्वनि की इसी भिन्न शैली अथवा शक्ति को काकु कहते हैं। जैसे उदाहरण के लिए हम एक शब्द ले लें ''जाओ'' इस शब्द में काकु के विभिन्न प्रयोग देखने को मिल सकते हैं। जैसे यदि कोई अफसर अपने चपरासी को कहे 'जाओ' तो उस शब्द में आज्ञा देने की भावना पाई जाएगी। यदि कोई अध्यापक विद्यार्थी को छुट्टी के समय कहे कि 'जाओ' तो अलग प्रकार का काकु उत्पन्न होगा। इसी शब्द को यदि क्रोधित भाव में कहा जाए तो पृथक काकु उत्पन्न होता है।

कहने के तात्पर्य यह है कि बोलने के लिए शब्द चाहे एक ही हो लेकिन ध्वनि द्वारा उस शब्द के अलग–अलग मनोभावों को प्रकट किया जा सकता है तो काकु अलग–अलग हो जाते हैं। इसी प्रकार गायन में अलग–अलग काकु प्रयोग सुनने को मिलते हैं। जैसे –– हम पं0 ओंकारनाथ ठाकुर का लोकप्रिय भजन ''मईया मोरी मैं नहीं माखन खायो'' सुनते हैं तो उसमें उन्होंने मईया शब्द में भिन्न–भिन्न काकु प्रयोग करके श्रोताओं को अलग–अलग भावों से परिचय करवाया है जिसमें आनन्द का भाव, गुस्से का रोष, कभी माता से विनम्रता का भाव, कभी झुंझलाहट का भाव, कभी करूणा प्रकट की तो कभी वंदना दर्शाई। ये सभी कुछ काकु के चमत्कार होते हैं। काकु का संगीत 209 ंतो प्रयोग होता ही है लेकिन नाटकों में भी काकु का प्रयोग विशेष रूप से होता है।

जब नाटक के किसी पात्र के संवादों द्वारा विशेष भाव दर्शाया जाता है तो वहाँ पर काकु विशेष सहायक होते हैं। जो अभिनेता काकु का प्रयोग करने में जितना कुशल होगा वह अपने अभिनय में उतना ही सफल होगा।

हमारे नाट्य शास्त्र में काकु की विशेष व्याख्या पाई जाती है। काकु को व्यक्त करने के लिए अलग–अलग सीन बताए हैं। जैसे –– छाती, कंठ और सिर आदि। साथ ही काकु से कौन–कौन से रस व्यक्त होते हैं, इसका भी उल्लेख किया गया है। शारंगदेव द्वारा रचित ''संगीत रत्नाकर'' में प्रकीर्ण अध्याय में काकु की व्याख्या के साथ–साथ उसके छः प्रकारों का वर्णन भी किया गया है ––

प्र0.5 यंत्र काकु से आप क्या समझते हैं ?

उ0. **यंत्र काकु :–**

वीणा या बाँसुरी आदि वाद्यों से उत्पन्न ध्वनि को 'यंत्र काकु' कहा जाता है। इस यंत्र काकु के कारण ही हमारे कान बिना देखे ही अलग–अलग वाद्यों की ध्वनि को केवल सुन कर ही पहचान लेते हैं कि कौन सा वाद्य बज रहा है।

ध्वनि की भिन्नता एवं विभिन्नता अर्थों का बोध कराने में जो शक्ति कार्य करती है, उसी को काकु कहा जाता है। एक पाश्चात्य विद्वान का कहना है कि 'काकु' ध्वनि के उस विचार को कहते हैं जिसके द्वारा किसी भाव की अभिव्यक्ति हो। काकु की ये व्याख्या काफी हद तक सही लगती है। वास्तव में काकु के अन्दर ऐसी विचित्र शक्ति है जिसके द्वारा भिन्न–भिन्न भावों की अभिव्यक्ति होती है। स्वर में माधुर्य उत्पन्न होता है, रसों की सुष्टि होती है। अतः संगीत में काकु का प्रयोग विशेष महत्व रखता है।

प्र0.6 राग काकु और स्वर काकु का वर्णन कीजिए।

उ0. **स्वर काकु :–**

जब श्रुति को कुछ अधिक या कम कहा जाता है तो एक स्वर की दूसरे में जहाँ छाया दिखती है वह 'स्वर काकु' होता है।

राग काकु :–

किसी राग की अपनी जो मुख्य छाया होती है वह 'राग काकु' कहलाती है।

प्र0.7 कुतुप से आप क्या समझते हो ?

उ0. **कुतुप :–**

मन्दिरों की परम्परा में देव आराधना के समय शंख, घड़ियाल, घण्टा, झांझ, मंजीरा, मृदंग, ढोल, एकतारा, करताल, नादस्वरम तथा वीणा जैसे विभिन्न ध्वनियों वाले वाद्य कितने ही समय से बजाते चले आ रहे हैं। ये वाद्य बहुत ही पुराने समय से मन्दिरों में प्रातः तथा सांयकाल के समय में प्रयोग होते आ रहे हैं जो कि भारतीय वाद्यवृन्द का सूचक है।

तत्, अवनद, घन तथा सुषिर सभी प्रकार के वाद्य भारतीय मंदिरों में उपलब्ध हैं, जिनका प्रयोग ईश्वर आराधना के लिए वाद्यवृन्द के रूप में किया जाता है। इसके अतिरिक्त आराधना काल को छोड़ कर भगवान की सेवा के अतिरिक्त रात्रीकालीन गायन–वादन और नर्तन जो कि उत्तर भारतीय तथा दक्षिण भारतीय मन्दिरों में चलता रहता है, उसमें वाद्यवृन्द को लगातार आश्रय मिलता रहा है। इस प्रकार आज का वाद्यवृन्द देखा जाए तो यह उसी के परिणाम का प्रतिफल है।

नाट्य शास्त्र भारतीय संगीत का आधार ग्रन्थ माना जाता है। जब इस ग्रन्थ का अध्ययन करते हैं तो उसके आतोद्य प्रकरण में महर्षि भरत ने विस्तार पूर्वक वृंद की चर्चा की है और इस वृंद को कुतुप की संज्ञा दी है। यहीं से कुतुप शब्द का संगीत जगत में आरम्भ हुआ। कुतुप को भरत मुनि ने तीन भागों में विभाजित किया––

क. तत् कुतुप

ख. अवनद कुतुप

ग. नाट्याश्रय कुतुप

प्र0.8 नाट्याश्रय कुतुप का वर्णन कीजिए।

उ0. **नाट्याश्रय कुतुप :–**

नाट्याश्रय कुतुप को विभिन्न देशीय अभिनय तथा नृत्यकला में सिधस्त पंडितों से युक्त बताया है। भरत के समय में संगीत नाटकों के आश्रित माना जाता था। इसलिए कुतुप का आयोजन भी नाटक के अन्तर्गत ही किया जाता था। नाटक के अतिरिक्त कुतुप का आयोजन या प्रयोग कुछ विशेष अवसरों में ही होता था जैसे – जब सम्राट अशाोक तीर्थ यात्रा को निकलते थे तो उनके साथ वाद्य वादकों का एक समूह भी साथ जाता था। इसी प्रकार गुप्त काल के समय में, युद्ध के समय में जिन वाद्यों का प्रयोग होता था उसे अवनद कुतुप कहकर पुकारा जाता था। इसी प्रकार जब सम्राट हर्ष अपने स्नानागार में जाते थे तो श्रृंग, वीणा और ढोल आदि वाद्यों के साथ सम्मिलित वादन किया जाता था जो कि तत् एवं अवनद कुतुप के अन्तर्गत आता था।

इस प्रकार भरत के समय से मुगल काल के आरम्भ तक वृंद को या वाद्यवृंद को 'कुतुप' कहकर पुकार जाता था। मुगल काल में कुतुप की संज्ञा 'नौबत' को प्रदान की गई।

प्र0.9 गमक किसे कहते हैं ?

उ0. **गमक :–**

एक विशेष प्रकार के मधुर कम्पन्न को ''गमक'' कहते हैं। इस शब्द का प्रयोग प्राचीनकाल में होता था और आज के आधुनिक संगीत में भी होता है किन्तु गमक के प्राचीन और आधुनिक अर्थों में भेद है। प्राचीनकाल में ''स्वरस्य कंपो गमकः'' अर्थात् स्वर के कम्पन्न को गमक कहते थे, किन्तु आजकल हृदय पर ज़ोर लगाकर स्वरों को गम्भीरता पूर्वक उच्चारण करने को ''गमक'' कहते हैं। दूसरे शब्दों 211 ंता यह कह सकते हैं कि, स्वरों का ऐसा कम्पन्न जो सुनने वालों के मन को सुख की अनुभूति करवाए, उसे 'गमक' कहते हैं। आन्दोलन के द्वारा जब स्वरों में कम्पन्न पैदा होता है तो उसका गम्भीरता पूर्वक उच्चारण करना भी गमक कहलाता है। जैसे –– सा ऽऽऽ रेऽऽऽ।

प्राचीन समय में स्वरों में एक विशेष प्रकार के कम्पन्न को गमक कहा जाता था और इस कम्पन्न को प्रकट करने के लिए विभिन्न प्रकार के ढंग उस समय प्रचार में थे। कहने का अर्थ यह है कि गमक को प्रस्तुत करने के अलग–अलग प्रकार उस समय प्रचलित थे। वर्तमान समय में यद्यपि गमकों का प्रयोग प्राचीन समय के अनुसार नहीं होता है लेकिन फिर भी किसी न किसी रूप में आज भी हमारे वाद्यों और कंठ संगीत 211 ंतो का प्रयोग होना आवश्यक है। गायन–वादन के समय जब हम खटका, मुर्की, जमजमा, मींड, सूत, कम्पन्न और गिटकरी आदि का प्रयोग करते हैं तो ये सब गमक की श्रेणी में ही आ जाते हैं।

प्र0.10 त्रिभिन्न गमक का वर्णन कीजिए।

उ0. **त्रिभिन्न :–**

जब तीन स्थानों को छूते हुए चौथे स्थान पर पहुँचा जाए तो उसे 'त्रिभिन्न' गमक कहते हैं।

प्र0.11 मुद्रित तथा लीन गमक से आप क्या समझते हो ?

उ0. **मुद्रित :–**

जब मुँह बंद करके गमक ली जाए तो उसे 'मुद्रित' गमक कहते हैं।

लीन :–

जब कोई स्वर आधी मात्रा के समय में किसी आगे या पीछे के स्वर में लीन हो जाए तो उसे 'लीन' गमक कहते हैं।

प्र0.12 आलप्तिगान का वर्णन कीजिए।

उ0. **आलप्तिगान :–**

मध्यकालीन रागालाप और रूपकालाप से भी अधिक विस्तृत आलाप गायन शैली को ही ''आलप्तिगान'' कहा गया है। आलप्ति गायन में गायक व वादक को राग का अविर्भाव और तिरोभाव अनिवार्य रूप से प्रदर्शित करना ही पड़ता था। वर्तमान समय के प्रचलित ध्रुवपद अंग के आलाप गायन क्रम आलप्ति गायन का परिवर्तित रूप ही है।

14.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. संगीत विशारद, बसंत, संगीत कार्यालय हाथरस, उ.प्र., जनवरी 1997, 21वां संस्करण।
2. संगीत निबन्ध माला।
3. संगीत शिक्षा, श्री मति विजय अरोड़ा, ए.पी. पब्लिशर, जालन्धर।

14.13 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 कुतुप क्या है ? वर्णन कीजिए।

प्र0.2 गमक से आप क्या समझते हैं ? वर्णन कीजिए।

प्र0.3 स्थाय, आलप्ति तथा मींड पर प्रकाश डालिए।

–:–:–:–:–:–:–:–:–

LESSON – 15

Study of the Following

Meend, Ghaseet, Kan, Sadharan, Tana, Alankar

STRUCTURE :

15.1 भूमिका

15.2 उदेश्य

15.3 मींड

15.3.1 मींड के प्रकार

15.3.1.1 अनुलोम मींड

15.3.1.2 विलोम मींड

15.4 घसीट

15.5 कण

15.5.1 कण स्वर के प्रकार

15.5.1.1 पूर्वलगन कण

15.5.1.2 अनुलगन कण

15.6 साधारण

15.6.1 शारंगदेव के अनुसार साधारण के प्रकार

15.7 तान

15.7.1 तानों के प्रकार

15.7.1.1 शुद्ध तान

15.7.1.2 कूट तान

15.7.1.3 मिश्र तान

15.7.1.4 अलंकारिक तान

15.7.1.5 छूट की तान

15.7.1.6 जबड़े की तान

15.7.1.7 दानेदार तान

15.7.1.8 फिरत की तान

15.7.1.9 हलक तान

15.7.1.10 गमक की तान

15.7.1.11 लड़त या लड़ंत की तान

15.7.1.12 पलट या पलटे की तान

15.7.1.13 अचरक तान

15.7.1.14 झटके की तान

15.7.1.15 सरोक तान

15.7.1.16 खटके की तान

15.7.1.17 गिटकड़ी की तान

15.7.1.18 रागांक तान

15.7.1.19 बोल तान

15.8 अलंकार

15.8.1 अलंकारों का महत्व

15.9 सारांश

15.10 शब्दकोष

15.11 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

15.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

15.13 महत्वपूर्ण प्रश्न

15.1 भूमिका :–

मींड, घसीट, कण, तान तथा अलंकार ये सभी हमारे संगीत के आभूषण हैं। प्राचीनकाल से इन अलंकारों का प्रयोग हमारे संगीत में होता आ रहा है। ये आभूषण हमारे संगीत में इतनी रंजकता भर देते हैं कि इनके प्रयोग से मानव संगीत को सुनकर आनन्दविभोर तो होता ही है साथ ही अपने आप को ईश्वर के समीप भी पाता है। इन सभी चीज़ों या अलंकारों का हमारे संगीत में अलग–अलग महत्व है। अतः इनके विषय में ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।

15.2 उदेश्य :–

इस पाठ का उदेश्य संगीत में प्रयोग होने वाले अलग–अलग अलंकारों जैसे – मींड, कण, घसीट, तान तथा अलंकारों के विषय में अध्ययन करना है। इन सभी पारिभाषिक शब्दावलियों को सरल रूप में समझाना ही इस पाठ का उदेश्य है।

15.3 मींड :–

एक स्वर से दूसरे स्वर तक घसीट से जाने को ''मींड'' कहते हैं। जब दो स्वरों का मेल, बीच के स्वर छोड़े बिना ही, किया जाता है, या एक स्वर के पर्दे से उससे अगला स्वर उसी पर्दे पर तार को खींच कर बजाया जाता है तो उसे ''मींड'' कहते हैं। सितार के पर्दे पर बांए हाथ की उंगली को रखकर दाहिने हाथ से मिजराब से तार पर आघात करना तथा तार की ध्वनि को बिना तोड़े बांए पर्दे पर रखी गई उंगली से तार को उस पर्दे पर दबाना, बाहर की ओर खींचना और फिर मींड द्वारा उस निकाले गए स्वर पर ठहरने की क्रिया को ही ''मींड'' कहते हैं।

गायन में जब हम किन्हीं दो स्वरों को गाते हैं, लेकिन बीच के स्वर छोड़ते नहीं अपितु घसीट के द्वारा ही एक स्वर से दूसरे स्वर को कह देते हैं तो यही ''मींड'' कहलाती है। मींड लिखने के लिए उल्टे चाँद का चिन्ह प्रयोग किया जाता है। जैसे सां प, इससे स्पष्ट है कि हम 'तार सप्तक' के सां से सीधा प पर आकर रूके हैं लेकिन हमने बीच के स्वर छोड़े नही हैं अपितु सां को घसीट कर पंचम तक ले आए और पंचम पर आकर

रूक गए अर्थात् आवाज़ को तोड़ा भी नहीं और बीच के स्वर कहे भी नहीं, इसी क्रिया को गायन में मींड कहते हैं।

वादन संगीत में एक पर्दे पर कई स्वरों की ध्वनि को खंडित किए बिना ही, बजा सकते हैं। मींड की क्रिया में जितना तार बाहर की ओर खींचेंगे उतना ही स्वर ऊँचा होगा। अतः मींड की परिभाषा हम इस प्रकार दे सकते हैं – ''हम जब दो स्वरों का मिलाप करते हैं लेकिन बीच के स्वर प्रयोग नही करते अर्थात् एक स्वर से दूसरे स्वर तक घसीट के द्वारा जाना और बीच के स्वर न बोलना ही ''मींड'' कहलाता है।''

15.3.1 मींड के प्रकार :–

मींड दो प्रकार की होती है :–

क. अनुलोम मींड ख. विलोम मींड

15.3.1.1 अनुलोम मींड :–

इसमें पहले मिज़राब लगाई जाती है फिर तार खींचते हैं, जैसे 'सां' के पर्दे पर तार खींच कर 'रे' अथवा 'ग' स्वर ध्वनित किया जाता है, इसे ही 'अनुलोम मींड' कहते हैं।

15.3.1.2 विलोम मींड :–

जब खींचे हुए ऊपर के स्वर से नीचे के स्वर की मींड निकालनी हो तो बाएं हाथ की उंगली को किसी पर्दे पर तार को मिज़राब से आघात करने से पहले ही नियुक्त स्वर स्थान पर खींच कर रखने से और मिज़राब के आघात से वह ऊँचा स्वर उत्पन्न करके नीचे वाले स्वर पर आएं तो उसे ''विलोम मींड'' कहते हैं। जैसे 'सा' के पर्दे पर प्रहार करने से पहले ही तार को 'रे' स्वर जितना खींच लिया जाए और तार को धीरे–धीरे ढीला करते हुए 'सा' के पर्दे पर आ जाएं तो यह 'रे' से 'सा' की 'मींड' होगी अर्थात् अवरोही मींड को ''विलोम मींड'' कहते हैं।

मींड गायन और वादन में विशेष सौन्दर्य प्रदान करता है। सितार में अनुलोम तथा विलोम दोनों प्रकार की मींड का अभ्यास करना पड़ता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 मींड से आप क्या समझते हैं ?

प्र0.2 विलोम मींड क्या होती है ?

15.4 घसीट :–

जब एक स्वर से उसके चौथे या अधिक दूरी वाले स्वर पर तेज़ी से घसीट कर जाते हैं, तो जिस स्वर से चलते हैं और जिस स्वर पर आकर ठहरते हैं उसके बीच के स्वर भी स्पष्ट हो जाते हैं, तब इस क्रिया को ''घसीट'' कहते हैं। घसीट शब्द से ही स्पष्ट है कि इससे एक स्वर से उंगली को कोमलता सहित घसीट कर इच्छित स्वर पर पहुँचते हैं। जिससे ध्वनि भी खण्डित नही होती और बीच में स्वर भी स्पष्ट रूप से ध्वनित होते हैं। जैसे 'सा रे ग म प' इन स्वरों को घसीट द्वारा बजाना हो तो बांए हाथ की तर्जनी 'सा' के पर्दे पर रखकर दाहिने हाथ से मिज़राब द्वारा बाज के तार पर प्रहार करके तुरन्त बिना ध्वनि को खण्डित किए तर्जनी से ही कोमलता सहित फिसलते हुए तरीके से रे ग म की ध्वनि उत्पन्न करते हुए 'सा' से 'प' के पर्दे पर लाना होगा। अधिकतर सितार पर घसीट का काम दिखाया जाता है। इसके अतिरिक्त दिलरूबा तथा हारमोनियम जैसे वाद्यों पर भी घसीट की क्रिया का प्रयोग किया जाता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 संगीत में घसीट के बारे में आप क्या जानते हैं ?

15.5 कण :–

किसी स्वर को ध्वनित करने से पूर्व उसके अगले या पिछले स्वर को थोड़ा सा स्पर्श करने को ''कण'' कहते हैं। सितार पर कण तार खींच कर और पर्दे पर, दोनों प्रकार से प्रयुक्त होता है। जैसे 'नि' पर मिज़राब लगा कर तार को खींचने से तुरन्त 'सा' की ध्वनि सुनाई देने लगे तो उसे 'सा' पर 'नि' का कण कहेंगे। इसी प्रकार 'सा' के पर्दे पर तार को अन्दाज़ से इतना खींचें की 'रे' बोलने लगे और तुरन्त खींचे हुए तार पर मिज़राब द्वारा प्रहार कर शीघ्रता से 'सा' पर आ जाएं तो यह 'सा' पर 'रे' का कण कहलाएगा। यहाँ पर यह बात स्पष्ट कर लेनी चाहिए कि यदि जिस स्वर का कण लेना है उस स्वर से मूल स्वर तक आने में देरी हो गई तो यह क्रिया मींड कहलाएगी। अतः कण लगाते समय तार खींचने की क्रिया में कम से कम समय लगना चाहिए।

कण स्वर को ''अलंकारिक स्वर'' भी कहते हैं क्योंकि इससे राग का सौन्दर्य भी बढ़ता है। शाब्दिक अर्थ के अनुसार जिस स्वर का प्रयोग कण अर्थात् तृण मात्र हो, उसे 'कण स्वर' कहेंगे। अतः स्पर्श किए गए स्वर की मात्रा का अनुमान हम सरलता से लगा सकते हैं। कण स्वर को ''स्पर्श स्वर'' भी कहते हैं।

15.5.1 कण स्वर के प्रकार :–

कण स्वर मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं।

क. पूर्वलगन कण **ख. अनुलगन कण**

15.5.1.1 पूर्वलगन कण :–

इस प्रकार के कण में कण स्वर का प्रयोग मूल स्वर से पहले किया जाता है। अतः कण स्वर मूल

रे

स्वर की बाँई ओर लिखा जाता है, जैसे – ग।

15.5.1.2 अनुलगन कण :–

इस प्रकार का कण प्रथम प्रकार से उलट होता है। यह मूल स्वर के बाद बोला जाता है और

रे

उसके दाहिनी ओर लिखा जाता है, जैसे –ग।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 'कण' से आप क्या समझते हैं ?

प्र0.2 कण कितने प्रकार का होता है ?

15.6 साधारण :–

जब कोई स्वर अपनी शुद्ध स्थिति से अपेक्षाकृत कुछ चढ़ जाता है लेकिन अगले स्थान तक भी नहीं पहुँच पाए तब उसे 'साधारण' कहते हैं। जैसे ––– रे – ग के मध्य यदि वह स्वर रह गया तो उसकी स्थिति 'साधारण' कहलाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब कोई स्वर थोड़ा चढ़ जाए अर्थात् न वह अपने मूल स्थान पर रहे और न ही अपने स्थान तक पहुँच पाए तब उसे साधारण कहा जाता है।

हमारे प्राचीन ग्रन्थकारों ने स्वरों की अलग–अलग संख्या मानी है। जैसे –– भरत ने स्वरों की संख्या 9 मानी है जिसमें सात शुद्ध तथा दो विकृत स्वर। उनके दो विकृत स्वर हैं –– अन्तर गान्धार और काकली निषाद। इसी प्रकार शारंगदेव ने स्वरों की संख्या 14 बताई है, सात शुद्ध तथा सात विकृत।

इस प्रकार साधारण उन स्वरों की स्थिति को कहा जाता है कि जब स्वर अपने स्थान से कुछ ऊपर चढ़ जाता है लेकिन पूरी तरह अगले स्वर तक नहीं पहुँच पाता है। जैसे गान्धार जब अपने स्थान से दो श्रुति चढ़

जाता है अर्थात् वह मध्यम की दो श्रुति ग्रहण कर लेता है तब उसे 'अन्तर गान्धार' कहा जाता है। यदि गान्धार केवल एक श्रुति चढ़ता है तब वह 'साधारण गान्धार' कहलाता है।

इसी प्रकार जब निषाद स्वर अपने स्थान से दो श्रुति चढ़ जाए तब वह 'काकली निषाद' कहलाता है और यदि केवल एक श्रुति ही चढ़ता है तब वह निषाद स्वर 'कैशिक निषाद' कहलाता है।

इसी तरह मध्यम स्वर यदि एक श्रुति नीचे उतरता है तब वह च्युत मध्यम कहलाता है।

इसी प्रकार जब षड़ज स्वर एक श्रुति नीचे उतरता है तब उसे 'च्युत षड़ज' कहा जाता है।

15.6.1 शारंगदेव के अनुसार साधारण के प्रकार :–

पं0 शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर में चार साधारण बताए हैं जो कि इस प्रकार हैं –––

1. अन्तर साधारण
2. काकली साधारण
3. षड़ज साधारण
4. मध्यम साधारण

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि जब कोई स्वर एक स्वर से दूसरे स्वर के बीच में रह जाता है तब उसे 'साधारण' की संज्ञा दी जाती है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 4

प्र0.1 शारंगदेव के अनुसार साधारण के प्रकार बताइए।

प्र0.2 संगीत में 'साधारण' किसे कहते हैं ?

15.7 तान :–

भरतकृत नाटयशास्त्र में तान शब्द का उल्लेख आधुनिक सन्दर्भ में नहीं हुआ है, अपितु तान क्रिया का उल्लेख किया गया है। दतिल तथा मतंग आदि ने अपने ग्रन्थों में तान की चर्चा की है। मध्ययुग में ''उन्चास कूटतान'' शब्द का प्रयोग हुआ है। भरत ने तानक्रिया के दो प्रकार बताएं हैं– प्रवेश और निग्रह। ''प्रवेश में वीणा

में वर्जित स्वर की तंत्री को अगले या पिछले स्वर में मिला कर तानक्रिया सम्पन्न की जाती थी। ''निग्रह'' में वर्जित स्वर वाली तंत्री का स्पर्श नही किया जाता था।

मतंग के समय में शुद्ध तान और कूट तान का प्रचलन था। उस समय 84 शुद्ध तानों का उल्लेख मिलता है। पं0 शारंगदेव ने पांच हज़ार चालीस कूट तानों का उल्लेख किया है। मध्ययुग के कलाकारों ने तान के ऊपर विशेष प्रकाश नही डाला है। तानसेन के ग्रन्थ में भी कूटतानों का वर्णन मिलता है।

आधुनिक समय में ''नगमातुल हिंदे'' में लिखा है, ''स्वरों के समूह को 'तान' कहते हैं, जिसका प्रयोजन राग में बड़त करना होता है। ''मौदुनल मौसिकी'' के अनुसार, ''तान वह है जो तीन सप्तक तक जाए''। इसी प्रकार पुस्तक ''नाद विनोद'' में तीन सौ के लगभग कूट तानों के बारे में वर्णन मिलता है।

आधुनिक समय में पं0 भातखण्डे जी ने तान की परिभाषा नही दी है, परन्तु तान किस प्रकार योग्य रीति से लेनी चाहिए इसका वर्णन अवश्य किया है। पं0 भातखण्डे जी लिखते हैं, ''राग गायन को विस्तृत करने के लिए तानों का प्रयोग होता है।'' तानों का मुख्य प्रयोजन गायन का वैचित्रय अधिक से अधिक बढ़ाना है। पं0 ओमकारनाथ ठाकुर जी कहते हैं,'' जब कोई अलंकार किसी राग के नियमों में बांधकर प्रयोग किया जाता है, तब वही ''तान'' कहलाता है।''

तान के विषय में उस्ताद बड़े गुलामअली जी का कहना है कि ''जब मैं राग के दरिया में डूबता हूँ, रागिनी के इश्क में पागल हो जाता हूँ तो जो चीज़ मेरे मुख से एक बारगी निकल जाती है, मैं तो उसे ''तान'' कहता हूँ।''

उस्ताद फैयाज़ खां का कहना है ''रागिनी की खुशामद करने, सजाने–संवारने के लिए जिन फिकरों का इस्तेमाल करते हैं, उसे ''तान'' कहते हैं।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि तान स्वरों का वह समूह है जो राग के विस्तार के लिए प्रयुक्त होता है। यह स्वर समूह राग में विचित्रता, चमत्कार व सौन्दर्य उत्पत्ति के लिए विभिन्न क्रमों में और विभिन्न प्रकार से प्रयुक्त किया जाता है।

तान रचना विभिन्न लयों में की जाती है। यदि जिस लय में गीत या गत बज रही हो उसी लय में तान लगे तो उसे बराबर लय की तान कहते हैं। यदि तेज़ लय में बजे तो दुगुन की तान और यदि राग की निश्चित लय से तिगुना, चौगुना या आठगुना में बजे तो क्रमशः तिगुन, चौगुन व अठगुन की तान कहेंगे।

तान बनाते समय राग के आरोह–अवरोह, वादी–सम्वादी, विवादी और वर्जित स्वरों का ध्यान रखना पड़ता है और उन स्वरों को ध्यान में रख कर चार, पांच या उससे भी अधिक स्वरों को लेकर विभिन्न प्रकार की तानें बनाई जाती हैं।

तानों का प्रयोग ख्याल, टप्पा, ठुमरी आदि गायन में किया जाता है। ध्रुपद गायन में तानों का प्रयोग नहीं होता क्योंकि यह गम्भीर प्रकृति का गायन है। तानों का मुख्य उदेश्य गायन, वादन में सौन्दर्य की वृद्धि करना है, अतः इनका प्रयोग योग्य रीति से करने पर श्रोताओं के चित को आनन्द की प्राप्ति होगी।

15.7.1 तानों के प्रकार :–

तानों के विभिन्न प्रकार भारतीय गायन संगीत में प्रचलित हैं। जो की निम्नलिखित हैं :–

15.7.1.1 शुद्ध तान :–

जिस तान के स्वर क्रमानुसार होते हैं उसे ''शुद्ध तान'' कहते हैं जैसे –

सा रे ग म प ध नि सां, नि ध प म ग रे सा। शुद्ध तान को सरल तथा सपाट तान भी कहते हैं। इसके स्वरों का क्रम सीधा होता है और यह गाने बजाने में सरल होती है। आरम्भिक विद्यार्थियों को सर्वप्रथम यही तान सिखाई जाती है क्यों कि यह तान सीखने में सरल होती है और इस तान का अभ्यास करने से विद्यार्थी अन्य कठिन तानों को सीखने में सक्षम हो जाते हैं।

15.7.1.2 कूट तान :–

जिस तान में स्वरों का वक्र प्रयोग होता है अर्थात् स्वरों का क्रम टेड़ा होता है उसे कूट तान कहते हैं। वक्र तान की चाल वक्र होने के कारण ही इसका नाम वक्र तान पड़ा है। यह तान गाने–बजाने में कुछ कठिन होती है। अतः शुद्ध तान के अच्छे अभ्यास के बाद ही वक्र तान गाने–बजाने में सुविधा रहती है। इस तान में स्वरों का क्रम इस प्रकार होता है – सा नि, रे सा, ग रे, म ग इत्यादि।

15.7.1.3 मिश्र तान :–

इस तान में शुद्ध व कूट तान का मिश्रण होता है। जैसे – ग प म प म ग रे सा। इसका पहला स्वर समूह 'ग प म प' वक्र है और दूसरा स्वर समूह 'म ग रे सा' सपाट है। अतः यह स्पष्ट है कि मिश्र तान, वक्र और सपाट तान का मिश्रण है। यदि सपाट व कूट तान का अच्छा अभ्यास हो तो यह तान आसानी से गाई–बजाई जा सकती है।

15.7.1.4 अलंकारिक तान :–

इस प्रकार की तान का निर्माण राग में लगने वाले स्वरों के किसी अलंकार के आधार पर किया जाता है अर्थात् अलंकारों के नियमों का पालन इस तान के निर्माण में किया जाता है। इस प्रकार की तान में अधिकतर आरोह तथा अवरोह में स्वरों का क्रम नियमानुसार होता है जैसे – नि सा ग म प, ग म प नि सां, सां नि धा नि ध प, ध प म ग–––– इत्यादि।

15.7.1.5 छूट तान :–

इस तान क्रिया में तार सप्तक के किसी एक स्वर से शिघ्रता से लौटते हुए सपाट तान गाते–बजाते हुए मध्य सा पर पहुँचना और सम दिखाना इसे छूट तान कहते हैं। इस तान के लिए ताल पर पूरा अधिकार होना चाहिए और उसका अच्छा अभ्यास होना चाहिए क्योंकि इस तान के बाद गीत या गत का मुखड़ा कहना आवश्यक होता है।

15.7.1.6 जबड़े की तान :–

इस क्रिया में तान या गान जबड़े की सहायता से किया जाता है अतः इसे जबड़े की तान कहते हैं।

15.7.1.7 दानेदार तान :–

इस तान में कण का प्रयोग अधिक होता है। अतः इसे कणयुक्त तान भी कहते हैं। इसमें प्रत्येक स्वर स्पष्ट रूप से अलग–अलग सुनाई देना चाहिए न कि हर स्वर पर झटका देकर मधुरता नष्ट करनी चाहिए। अतः इस तान के लिए अच्छे अभ्यास की आवश्यकता होती है।

15.7.1.8 फिरत की तान :–

इस तान में स्वरों को बार–बार फिराया जाता है अर्थात् चक्र रूप में स्वरों का प्रयोग किया जाता है। जैसे – प ध प म, म ध प, ग म ग रे, सा रे रे सा।

15.7.1.9 हलक तान :–

यह तान जीभ और गले का प्रयोग करते हुए ली जाती है अर्थात् जीभ को अन्दर–बाहर करते हुए इस तान का प्रयोग किया जाता है।

15.7.1.10 गमक तान :–

इस तान में स्वरों को आन्दोलित करते हुए तथा ह्रदय पर ज़ोर देकर कहा जाता है। इन तानों को लय के विपरीत या बराबर लय में गाया–बजाया जाता है। जैसे– सा```` रे```` आदि को ''गमक तान'' कहते हैं।

15.7.1.11 लड़त तान :–

इस तान में सीधी व आड़ी कई प्रकार की लय मिली होती है। इसमें गायक और वादक की लड़ंत सुनने लायक होती है। इसमें देखा जाता है कि दो–तीन स्वरों का प्रयोग अनेक बार अनेक प्रकार से कैसे किया जाता है। इस तान का एक प्रकार इस प्रकार है:– नि सा नि सा, रे रे रे रे, ग म ग म प प प प आदि।

15.7.1.12 पलट तान या पलटे की तान :–

किसी तान को लेते हुए अवरोह करके लौट आने को ''पलट तान'' कहते हैं। जैसेः– सा नि ध प म ग रे सा।

15.7.1.13 अचरक तान :–

इस तान में प्रत्येक स्वर समान रूप से दो बार लिया जाता है जैसे सा सा, रे रे, ग ग आदि।

15.7.1.14 झटके की तान :–

दुगुण या एक गुण में गाते–बजाते समय चौगुण या अठगुण में गाने–बजाने को झटके की तान कहते हैं।

15.7.1.15 सरोक तान :–

इसमें चार–चार स्वरों को क्रमानुसार गाया–बजाया जाता है। जैसे– सा रे ग म, रे ग म प, ग म प ध इत्यादि।

15.7.1.16 खटके की तान :–

एक स्वर से दूसरे स्वर पर जब झटका देकर जाते हैं तो उसे ''खटके की तान'' कहते हैं। इस प्रकार की तान में कणयुक्त स्वरों का प्रयोग होता है।

15.7.1.17 गिटकड़ी की तान :–

जिस तान में दो स्वरों को शीघ्रता के साथ एक के बाद दूसरा लगाते हुए तान ली जाती है उसे ''गिटकड़ी की तान'' कहते हैं। जैसे– नि़ सा नि़ सा, सा रे सा रे।

15.7.1.18 रागांक तान :–

इस तान में दो स्वर आरोह के और दो स्वर अवरोह के लिए जाते हैं। जैसे– सा रे रे सा, रे ग ग रे आदि।

15.7.1.19 बोल तान :–

गायन में जब ये तानें ली जाती हैं तब इसमें गीत के बोलों का प्रयोग तान के रूप में किया जाता है। जैसे –

ग म रे सा म ध म प

गु णी ज न गा – व त

गायन में गीत के बोलों को भिन्न–भिन्न स्वरों तथा तान पलटों के साथ गाना, ''बोलतान'' कहलाती हैं। बोल तान का सरल अर्थ होता है ''बोलों की तान'' अर्थात् किसी गीत के बोलों को विभिन्न प्रकार की तानों द्वारा प्रस्तुत करना। यह प्रकार गायन में बड़ा मधुर प्रतीत होता है। राग के स्वरों के माध्यम से गीत के बोलों का उच्चारण करते हुए आलाप करना, बोल बनाना कहलाता है और लय में सुन्दर अलंकारों व पल्टों के साथ इन्हीं बोलों को ''बोलतान'' कहते हैं। बोलतान बनाते समय इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि किस बोल पर अधिक ज़ोर देना है तथा कौन से स्वर–समुदाय अधिक प्रयोग करने हैं। लय का ध्यान रखते हुए बोल तान तीन प्रकार की हो सकती है जैसे–

ठाह की बोलतान

ख. दुगुन की बोलतान

ग. चौगुन व आड़ लयों की बोलतान

बोल तान में अनेक लयकारियों का चमत्कार सुनने को मिलता है तथा साथ ही तबले पर भिड़न्त भी देखने को मिलती है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 5

प्र0.1 तान के विषय में वर्णन कीजिए।

प्र0.2 पलटे, अचरक, झटके तथा सरोक तान का वर्णन कीजिए।

15.8 अलंकार :–

नियमित क्रम में की गई स्वर रचना को ''अलंकार या पल्टे'' कहते हैं। पं0 अहोबल 'अलंकार' की परिभाषा में लिखते हैं ''स्वरों का क्रमानुसार सन्दर्भ–संगठनः सुगुम्फन (जो भली प्रकार गूँथे हुए हों) वे अलंकार कहलाते हैं। संगीत रत्नाकर में पं0 शारंगदेव अलंकार की परिभाषा इस प्रकार देते हैं :–

''विशिष्ट वर्ण सन्दर्भलंकार प्रचक्षत''

अर्थात् :– विशेष वर्ण समुदाय को अलंकार कहते हैं।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अलंकार वर्ण समुदाय में होते हैं और अलंकारों में स्वरों का एक नियमित क्रम होता है जो स्वरों को चार वर्णों अर्थात् स्थाई, आरोही, अवरोही और संचारी में विभाजित करता है। अलंकार में आरोही तथा अवरोही दोनो होते हैं। अलंकार का यह नियम है कि जो क्रम एक अलंकार के आरोह

में होता है उसका उल्टा क्रम उसके अवरोह में होना अति आवश्यक है। जैसे एक अलंकार का आरोह–अवरोह निम्न प्रकार से होगा –

आरोह – सा सा, रे रे, ग ग, म म, प प, ध ध, नि नि, सां सां।

अवरोह – सां सां, नि नि, ध ध, प प, म म, ग ग, रे रे, सा सा।

स्वरों के विभिन्न मेलों से स्थाई, आरोही, अवरोही और संचारी वर्ण के अनेक अलंकार बनाए जा सकते हैं। अलंकार शुद्ध स्वरों के अतिरिक्त कोमल–तीव्र स्वरों के भी बनाए जा सकते हैं परन्तु अलंकार रचना विधि में इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि जिस राग में जो स्वर लगते हैं उन्हीं स्वरों का प्रयोग उस राग के अलंकारों में करना चाहिए। इसके अतिरिक्त अलंकार रचना में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि किसी अलंकार के शुरू में स्वरों के प्रयोग का जो क्रम निश्चित किया गया है उसी क्रम से तार सां तक पहुँचा जाए और फिर अवरोह में बिल्कुल उसी का उल्टा कर दिया जाए।

15.8.1 अलंकारों का महत्व :–

अलंकार राग के सौन्दर्य वृद्धि में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं और साथ ही राग विस्तार में सहायता देते हैं। पं0 अहोबल का कहना है कि किसी चीज़ के सजाने को अलंकार कहते हैं, जिनके द्वारा राग सजाए जाएं वह तान, पल्टे, आलाप इत्यादि ''अलंकार'' कहलाते हैं।

भरत द्वारा रचित नाट्य शास्त्र में भरत ने कहा है कि अलंकारों से रहित गीत वैसा ही है जैसे चन्द्रमा से रहित निशा, जल से विहीन नदी, पुष्प से रहित लता तथा अलंकारों से विहीन स्त्री।

अलंकार राग सौन्दर्य बढ़ाने के साथ–साथ स्वर ज्ञान बढ़ाने तथा तानों की तैयारी में सहायक होते हैं। अतः संगीत के विद्यार्थियों को गाना–बजाना सीखने से पहले अलंकारों का अभ्यास भली–भान्ति करना चाहिए। अलंकारों के अभ्यास से जहाँ स्वर ज्ञान, स्वर स्थान तथा लय का भली–भान्ति ज्ञान हो जाता है। इससे वे आगे चल कर आलाप और तान रचना में योग्य हो जाते हैं क्यों कि अलंकारों के निरन्तर अभ्यास से उन्हें स्वरों का लगाव तथा आपसी सम्बन्ध का ठीक ज्ञान हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि अलंकारों के अभ्यास से जहाँ एक ओर वादक की उंगलियाँ उसके साज में सध जाती हैं और गायक के गायन में लोच तथा रस आ जाता है, वहाँ दूसरी ओर संगीत की रचनात्मक प्रवृति को भी प्रोत्साहन मिलता है। अतः यह स्पष्ट है कि अलंकार प्रत्येक संगीतज्ञ के लिए सीखने तथा गाने–बजाने के लिए अति आवश्यक है।

अलंकार का अर्थ है आभूषण या गहना। दूसरे शब्दों में शरीर की सजावट करना रंगों द्वारा, नगों द्वारा व प्राकृतिक प्रसाधनों द्वारा होता है। उसी प्रकार से संगीत में अलंकार का अर्थ है स्वरों को अलग–अलग ढंग से नए–नए स्वर समुदाय बना कर सुस्सजित ढंग से गाना या बजाना। अलंकार अपना महत्व नई–नई स्वर रचनाएं

या समुदायों द्वारा दर्शाते हैं। अलंकार एक प्रकार के वर्ण समुदाय या विशिष्ट समुदाय होते हैं। इन्हीं अलंकारों में चारों वर्णों का समावेश आ जाता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 6

प्र0.1 अलंकार किसे कहते हैं ?

प्र0.2 अलंकार का संगीत में क्या महत्व है ?

15.9 सारांश :–

हमारे संगीत में ऐसी कई चीज़ें प्रयोग की जाती हैं जिससे की संगीत का आनन्द दुगुना हो जाता है। यदि इन सब के विषय में हमें विस्तृत जानकारी होगी तो हमारा संगीत और अधिक मनोरंजक होता जाएगा । मींड, घसीट, कण, तान तथा अलंकार इत्यादि इसी तरह की चीज़ें हैं जो हमारे संगीत में चार चाँद लगाते हैं। स्वरों का अलग–अलग प्रकार से गायन–वादन में प्रयोग किस प्रकार किया जाए तथा इनके प्रयोग से गायन–वादन में कितना आनन्द बढ़ जाता है, इन सब की जानकारी हमें इस पाठ से प्राप्त होती है।

15.10 शब्दकोष :–

1. एक बारगी – अनायास ही
2. हलक – गला
3. लड़ंत – लड़ाई या लड़ना
4. इस्तेमाल – प्रयोग करना
5. खंडित – टूटा हुआ
6. ध्वनित करना – बोलना या कहना
7. तृण मात्र – तिनके जितना

15.11 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 मींड से आप क्या समझते हैं ?

उ0. **मींड :–**

एक स्वर से दूसरे स्वर तक घसीट से जाने को ''मींड'' कहते हैं। जब दो स्वरों का मेल, बीच के स्वर छोड़े बिना ही, किया जाता है, या एक स्वर के पर्दे से उससे अगला स्वर उसी पर्दे पर तार को खींच कर बजाया जाता है तो उसे ''मींड'' कहते हैं। सितार के पर्दे पर बांए हाथ की उंगली को रखकर दाहिने हाथ से मिजराब से तार पर आघात करना तथा तार की ध्वनि को बिना तोड़े बांए पर्दे पर रखी गई उंगली से तार को उस पर्दे पर दबाना, बाहर की ओर खींचना और फिर मींड द्वारा उस निकाले गए स्वर पर ठहरने की क्रिया को ही ''मींड'' कहते हैं।

गायन में जब हम किन्हीं दो स्वरों को गाते हैं, लेकिन बीच के स्वर छोड़ते नहीं अपितु घसीट के द्वारा ही एक स्वर से दूसरे स्वर को कह देते हैं तो यही ''मींड'' कहलाती है। मींड लिखने के लिए उल्टे चाँद का चिन्ह प्रयोग किया जाता है। जैसे सां प, इससे स्पष्ट है कि हम 'तार सप्तक' के सां से सीधा प पर आकर रूके हैं लेकिन हमने बीच के स्वर छोड़े नही हैं अपितु सां को घसीट कर पंचम तक ले आए और पंचम पर आकर रूक गए अर्थात् आवाज़ को तोड़ा भी नहीं और बीच के स्वर कहे भी नहीं, इसी क्रिया को गायन में मींड कहते हैं।

वादन संगीत में एक पर्दे पर कई स्वरों की ध्वनि को खंडित किए बिना ही, बजा सकते हैं। मींड की क्रिया में जितना तार बाहर की ओर खींचेंगे उतना ही स्वर ऊँचा होगा। अतः मींड की परिभाषा हम इस प्रकार दे सकते हैं – ''हम जब दो स्वरों का मिलाप करते हैं लेकिन बीच के स्वर प्रयोग नही करते अर्थात् एक स्वर से दूसरे स्वर तक घसीट के द्वारा जाना और बीच के स्वर न बोलना ही ''मींड'' कहलाता है।''

प्र0.2 विलोम मींड क्या होती है ?

उ0. **विलोम मींड :–**

जब खींचे हुए ऊपर के स्वर से नीचे के स्वर की मींड निकालनी हो तो बाएं हाथ की उंगली को किसी पर्दे पर तार को मिज़राब से आघात करने से पहले ही नियुक्त स्वर स्थान पर खींच कर रखने से और मिज़राब के आघात से वह ऊँचा स्वर उत्पन्न करके नीचे वाले स्वर पर आएं तो उसे ''विलोम मींड'' कहते हैं। जैसे 'सा' के पर्दे पर प्रहार करने से पहले ही तार को 'रे' स्वर जितना खींच लिया जाए और तार को धीरे–धीरे ढीला करते हुए 'सा' के पर्दे पर आ जाएं तो यह 'रे' से 'सा' की 'मींड' होगी अर्थात् अवरोही मींड को ''विलोम मींड'' कहते हैं।

मींड गायन और वादन में विशेष सौन्दर्य प्रदान करता है। सितार में अनुलोम तथा विलोम दोनों प्रकार की मींड का अभ्यास करना पड़ता है।

प्र0.3 संगीत में घसीट के बारे में आप क्या जानते हैं ?

उ0. **घसीट :–**

जब एक स्वर से उसके चौथे या अधिक दूरी वाले स्वर पर तेज़ी से घसीट कर जाते हैं, तो जिस स्वर से चलते हैं और जिस स्वर पर आकर ठहरते हैं उसके बीच के स्वर भी स्पष्ट हो जाते हैं, तब इस क्रिया को ''घसीट'' कहते हैं। घसीट शब्द से ही स्पष्ट है कि इससे एक स्वर से उंगली को कोमलता सहित घसीट कर इच्छित स्वर पर पहुँचते हैं। जिससे ध्वनि भी खण्डित नही होती और बीच में स्वर भी स्पष्ट रूप से ध्वनित होते हैं। जैसे 'सा रे ग म प' इन स्वरों को घसीट द्वारा बजाना हो तो बांए हाथ की तर्जनी 'सा' के पर्दे पर रखकर दाहिने हाथ से मिज़राब द्वारा बाज के तार पर प्रहार करके तुरन्त बिना ध्वनि को खण्डित किए तर्जनी से ही कोमलता सहित फिसलते हुए तरीके से रे ग म की ध्वनि उत्पन्न करते हुए 'सा' से 'प' के पर्दे पर लाना होगा। अधिकतर सितार पर घसीट का काम दिखाया जाता है। इसके अतिरिक्त दिलरूबा तथा हारमोनियम जैसे वाद्यों पर भी घसीट की क्रिया का प्रयोग किया जाता है।

प्र0.4 'कण' से आप क्या समझते हैं ?

उ0. **कण :–**

किसी स्वर को ध्वनित करने से पूर्व उसके अगले या पिछले स्वर को थोड़ा सा स्पर्श करने को ''कण'' कहते हैं। सितार पर कण तार खींच कर और पर्दे पर, दोनों प्रकार से प्रयुक्त होता है। जैसे 'नि' पर मिज़राब लगा कर तार को खींचने से तुरन्त 'सा' की ध्वनि सुनाई देने लगे तो उसे 'सा' पर 'नि' का कण कहेंगे। इसी प्रकार 'सा' के पर्दे पर तार को अन्दाज़ से इतना खींचें की 'रे' बोलने लगे और तुरन्त खींचे हुए तार पर मिज़राब द्वारा प्रहार कर शीघ्रता से 'सा' पर आ जाएं तो यह 'सा' पर 'रे' का कण कहलाएगा। यहाँ पर यह बात स्पष्ट कर लेनी चाहिए कि यदि जिस स्वर का कण लेना है उस स्वर से मूल स्वर तक आने में देरी हो गई तो यह क्रिया मींड कहलाएगी। अतः कण लगाते समय तार खींचने की क्रिया में कम से कम समय लगना चाहिए।

कण स्वर को ''अलंकारिक स्वर'' भी कहते हैं क्योंकि इससे राग का सौन्दर्य भी बढ़ता है। शाब्दिक अर्थ के अनुसार जिस स्वर का प्रयोग कण अर्थात् तृण मात्र हो, उसे 'कण स्वर' कहेंगे। अतः स्पर्श किए गए स्वर की मात्रा का अनुमान हम सरलता से लगा सकते हैं। कण स्वर को ''स्पर्श स्वर'' भी कहते हैं।

प्र0.5 कण कितने प्रकार का होता है ?

उ0. **कण स्वर के प्रकार :–**

कण स्वर मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं।

क. पूर्वलगन कण **ख. अनुलगन कण**

पूर्वलगन कण :–

इस प्रकार के कण में कण स्वर का प्रयोग मूल स्वर से पहले किया जाता है। अतः कण स्वर मूल

रे

स्वर की बाँई ओर लिखा जाता है, जैसे – ग।

अनुलगन कण :–

इस प्रकार का कण प्रथम प्रकार से उलट होता है। यह मूल स्वर के बाद बोला जाता है और

रे

उसके दाहिनी ओर लिखा जाता है, जैसे –ग।

प्र0.6 शारंगदेव के अनुसार साधारण के प्रकार बताइए।

उ0. **शारंगदेव के अनुसार साधारण के प्रकार :–**

पं0 शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर में चार साधारण बताए हैं जो कि इस प्रकार हैं –––

1. अन्तर साधारण
2. काकली साधारण
3. षड़ज साधारण
4. मध्यम साधारण

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि जब कोई स्वर एक स्वर से दूसरे स्वर के बीच में रह जाता है तब उसे 'साधारण' की संज्ञा दी जाती है।

प्र0.7 संगीत में 'साधारण' किसे कहते हैं ?

उ0. **साधारण :–**

जब कोई स्वर अपनी शुद्ध स्थिति से अपेक्षाकृत कुछ चढ़ जाता है लेकिन अगले स्थान तक भी नहीं पहुँच पाए तब उसे 'साधारण' कहते हैं। जैसे ––– रे – ग के मध्य यदि वह स्वर रह गया तो उसकी स्थिति 'साधारण' कहलाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब कोई स्वर थोड़ा चढ़ जाए अर्थात् न वह अपने मूल स्थान पर रहे और न ही अपने स्थान तक पहुँच पाए तब उसे साधारण कहा जाता है।

हमारे प्राचीन ग्रन्थकारों ने स्वरों की अलग–अलग संख्या मानी है। जैसे –– भरत ने स्वरों की संख्या 9 मानी है जिसमें सात शुद्ध तथा दो विकृत स्वर। उनके दो विकृत स्वर हैं –– अन्तर गान्धार और काकली निषाद। इसी प्रकार शारंगदेव ने स्वरों की संख्या 14 बताई है, सात शुद्ध तथा सात विकृत।

इस प्रकार साधारण उन स्वरों की स्थिति को कहा जाता है कि जब स्वर अपने स्थान से कुछ ऊपर चढ़ जाता है लेकिन पूरी तरह अगले स्वर तक नहीं पहुँच पाता है। जैसे गान्धार जब अपने स्थान से दो श्रुति चढ़ जाता है अर्थात् वह मध्यम की दो श्रुति ग्रहण कर लेता है तब उसे 'अन्तर गान्धार' कहा जाता है। यदि गान्धार केवल एक श्रुति चढ़ता है तब वह 'साधारण गान्धार' कहलाता है।

इसी प्रकार जब निषाद स्वर अपने स्थान से दो श्रुति चढ़ जाए तब वह 'काकली निषाद' कहलाता है और यदि केवल एक श्रुति ही चढ़ता है तब वह निषाद स्वर 'कैशिक निषाद' कहलाता है।

इसी तरह मध्यम स्वर यदि एक श्रुति नीचे उतरता है तब वह च्युत मध्यम कहलाता है।

इसी प्रकार जब षड़ज स्वर एक श्रुति नीचे उतरता है तब उसे 'च्युत षड़ज' कहा जाता है।

प्र0.8 तान के विषय में वर्णन कीजिए।

उ0. **तान :–**

भरतकृत नाटयशास्त्र में तान शब्द का उल्लेख आधुनिक सन्दर्भ में नहीं हुआ है, अपितु तान क्रिया का उल्लेख किया गया है। दतिल तथा मतंग आदि ने अपने ग्रन्थों में तान की चर्चा की है। मध्ययुग में ''उन्चास कूटतान'' शब्द का प्रयोग हुआ है। भरत ने तानक्रिया के दो प्रकार बताएं हैं– प्रवेश और निग्रह। ''प्रवेश में वीणा में वर्जित स्वर की तंत्री को अगले या पिछले स्वर में मिला कर तानक्रिया सम्पन्न की जाती थी। ''निग्रह'' में वर्जित स्वर वाली तंत्री का स्पर्श नही किया जाता था।

मतंग के समय में शुद्ध तान और कूट तान का प्रचलन था। उस समय 84 शुद्ध तानों का उल्लेख मिलता है। पं0 शारंगदेव ने पांच हज़ार चालीस कूट तानों का उल्लेख किया है। मध्ययुग के कलाकारों ने तान के ऊपर विशेष प्रकाश नही डाला है। तानसेन के ग्रन्थ में भी कूटतानों का वर्णन मिलता है।

आधुनिक समय में ''नगमातुल हिदे'' में लिखा है, ''स्वरों के समूह को 'तान' कहते हैं, जिसका प्रयोजन राग में बड़त करना होता है। ''मौदुनल मौसिकी'' के अनुसार, ''तान वह है जो तीन सप्तक तक जाए''। इसी प्रकार पुस्तक ''नाद विनोद'' में तीन सौ के लगभग कूट तानों के बारे में वर्णन मिलता है।

आधुनिक समय में पं0 भातखण्डे जी ने तान की परिभाषा नही दी है, परन्तु तान किस प्रकार योग्य रीति से लेनी चाहिए इसका वर्णन अवश्य किया है। पं0 भातखण्डे जी लिखते हैं, ''राग गायन को विस्तृत करने के

लिए तानों का प्रयोग होता है।'' तानों का मुख्य प्रयोजन गायन का वैचित्रय अधिक से अधिक बढ़ाना है। पं0 ओमकारनाथ ठाकुर जी कहते हैं,'' जब कोई अलंकार किसी राग के नियमों में बांधकर प्रयोग किया जाता है, तब वही ''तान'' कहलाता है।''

तान के विषय में उस्ताद बड़े गुलामअली जी का कहना है कि ''जब मैं राग के दरिया में डूबता हूँ, रागिनी के इश्क में पागल हो जाता हूँ तो जो चीज़ मेरे मुख से एक बारगी निकल जाती है, मैं तो उसे ''तान'' कहता हूँ।''

उस्ताद फैयाज़ खां का कहना है ''रागिनी की खुशामद करने, सजाने–संवारने के लिए जिन फिकरों का इस्तेमाल करते हैं, उसे ''तान'' कहते हैं।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि तान स्वरों का वह समूह है जो राग के विस्तार के लिए प्रयुक्त होता है। यह स्वर समूह राग में विचित्रता, चमत्कार व सौन्दर्य उत्पत्ति के लिए विभिन्न क्रमों में और विभिन्न प्रकार से प्रयुक्त किया जाता है।

तान रचना विभिन्न लयों में की जाती है। यदि जिस लय में गीत या गत बज रही हो उसी लय में तान लगे तो उसे बराबर लय की तान कहते हैं। यदि तेज़ लय में बजे तो दुगुन की तान और यदि राग की निश्चित लय से तिगुना, चौगुना या आठगुना में बजे तो क्रमशः तिगुन, चौगुन व अठगुन की तान कहेंगे।

तान बनाते समय राग के आरोह–अवरोह, वादी–सम्वादी, विवादी और वर्जित स्वरों का ध्यान रखना पड़ता है और उन स्वरों को ध्यान में रख कर चार, पांच या उससे भी अधिक स्वरों को लेकर विभिन्न प्रकार की तानें बनाई जाती हैं।

तानों का प्रयोग ख्याल, टप्पा, ठुमरी आदि गायन में किया जाता है। ध्रुपद गायन में तानों का प्रयोग नहीं होता क्योंकि यह गम्भीर प्रकृति का गायन है। तानों का मुख्य उदेश्य गायन, वादन में सौन्दर्य की वृद्धि करना है, अतः इनका प्रयोग योग्य रीति से करने पर श्रोताओं के चित को आनन्द की प्राप्ति होगी।

प्र0.9 पलटे, अचरक, झटके तथा सरोक तान का वर्णन कीजिए।

उ0. **पलट तान या पलटे की तान :–**

किसी तान को लेते हुए अवरोह करके लौट आने को ''पलट तान'' कहते हैं। जैसेः– सा नि ध प म ग रे सा।

अचरक तान :–

इस तान में प्रत्येक स्वर समान रूप से दो बार लिया जाता है जैसे सा सा, रे रे, ग ग आदि।

झटके की तान :–

दुगुण या एक गुण में गाते–बजाते समय चौगुण या अठगुण में गाने–बजाने को झटके की तान कहते हैं।

सरोक तान :–

इसमें चार–चार स्वरों को क्रमानुसार गाया–बजाया जाता है। जैसे– सा रे ग म, रे ग म प, ग म प ध इत्यादि।

प्र0.10 अलंकार किसे कहते हैं ?

उ0. **अलंकार :–**

नियमित क्रम में की गई स्वर रचना को "अलंकार या पल्टे" कहते हैं। पं0 अहोबल 'अलंकार' की परिभाषा में लिखते हैं "स्वरों का क्रमानुसार सन्दर्भ–संगठनः सुगुम्फन (जो भली प्रकार गूँथे हुए हों) वे अलंकार कहलाते हैं। संगीत रत्नाकर में पं0 शारंगदेव अलंकार की परिभाषा इस प्रकार देते हैं :–

"विशिष्ट वर्ण सन्दर्भलंकार प्रचक्षत"

अर्थात् :– विशेष वर्ण समुदाय को अलंकार कहते हैं।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अलंकार वर्ण समुदाय में होते हैं और अलंकारों में स्वरों का एक नियमित क्रम होता है जो स्वरों को चार वर्णों अर्थात् स्थाई, आरोही, अवरोही और संचारी में विभाजित करता है। अलंकार में आरोही तथा अवरोही दोनो होते हैं। अलंकार का यह नियम है कि जो क्रम एक अलंकार के आरोह में होता है उसका उल्टा क्रम उसके अवरोह में होना अति आवश्यक है। जैसे एक अलंकार का आरोह–अवरोह निम्न प्रकार से होगा –

आरोह – सा सा, रे रे, ग ग, म म, प प, ध ध, नि नि, सां सां।

अवरोह – सां सां, नि नि, ध ध, प प, म म, ग ग, रे रे, सा सा।

स्वरों के विभिन्न मेलों से स्थाई, आरोही, अवरोही और संचारी वर्ण के अनेक अलंकार बनाए जा सकते हैं। अलंकार शुद्ध स्वरों के अतिरिक्त कोमल–तीव्र स्वरों के भी बनाए जा सकते हैं परन्तु अलंकार रचना विधि में इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि जिस राग में जो स्वर लगते हैं उन्हीं स्वरों का प्रयोग उस राग के अलंकारों में करना चाहिए। इसके अतिरिक्त अलंकार रचना में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि किसी अलंकार के शुरू में स्वरों के प्रयोग का जो क्रम निश्चित किया गया है उसी क्रम से तार सां तक पहुँचा जाए और फिर अवरोह में बिल्कुल उसी का उल्टा कर दिया जाए।

प्र0.11 अलंकार का संगीत में क्या महत्व है ?

उ0. **अलंकारों का महत्व :–**

अलंकार राग के सौन्दर्य वृद्धि में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं और साथ ही राग विस्तार में सहायता देते हैं। पं0 अहोबल का कहना है कि किसी चीज़ के सजाने को अलंकार कहते हैं, जिनके द्वारा राग सजाए जाएं वह तान, पल्टे, आलाप इत्यादि ''अलंकार'' कहलाते हैं।

भरत द्वारा रचित नाट्य शास्त्र में भरत ने कहा है कि अलंकारों से रहित गीत वैसा ही है जैसे चन्द्रमा से रहित निशा, जल से विहीन नदी, पुष्प से रहित लता तथा अलंकारों से विहीन स्त्री।

अलंकार राग सौन्दर्य बढ़ाने के साथ–साथ स्वर ज्ञान बढ़ाने तथा तानों की तैयारी में सहायक होते हैं। अतः संगीत के विद्यार्थियों को गाना–बजाना सीखने से पहले अलंकारों का अभ्यास भली–भान्ति करना चाहिए। अलंकारों के अभ्यास से जहाँ स्वर ज्ञान, स्वर स्थान तथा लय का भली–भान्ति ज्ञान हो जाता है। इससे वे आगे चल कर आलाप और तान रचना में योग्य हो जाते हैं क्यों कि अलंकारों के निरन्तर अभ्यास से उन्हें स्वरों का लगाव तथा आपसी सम्बन्ध का ठीक ज्ञान हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि अलंकारों के अभ्यास से जहाँ एक ओर वादक की उंगलियाँ उसके साज में सध जाती हैं और गायक के गायन में लोच तथा रस आ जाता है, वहाँ दूसरी ओर संगीत की रचनात्मक प्रवृति को भी प्रोत्साहन मिलता है। अतः यह स्पष्ट है कि अलंकार प्रत्येक संगीतज्ञ के लिए सीखने तथा गाने–बजाने के लिए अति आवश्यक है।

15.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. संगीत विशारद, बसंत, संगीत कार्यालय हाथरस, उ.प्र., जनवरी 1997, 21वां संस्करण।
2. संगीत निबन्ध माला।
3. संगीत शिक्षा, श्री मति विजय अरोड़ा, ए.पी. पब्लिशर, जालन्धर।
4. संगीत युगे–युगे, तजम्मुल खान संगीतज्ञ, शकीला प्रकाशन, लखनऊ, 1988।

15.13 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 'साधारण' से आप क्या समझते हैं ?

प्र0.2 संगीत में तान किसे कहते हैं तथा ये कितने प्रकार की होती हैं ? वर्णन कीजिए।

प्र0.3 मींड को वर्णित कीजिए।

–:–:–:–:–:–:–:–

LESSON - 16

The Future of Indian Classical Music

शास्त्रीय संगीत का भविष्य

STRUCTURE :

16.1 भूमिका

16.2 उदेश्य

16.3 संगीत का अर्थ

16.4 शास्त्रीय संगीत की व्याख्या

16.5 शास्त्रीय संगीत का भविष्य

16.6 सारांश

16.7 शब्दकोष

16.8 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

16.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

16.10 महत्वपूर्ण प्रश्न

16.1 भूमिका :–

संगीत वह ललित कला है जिसमें स्वर, लय और ताल के माध्यम से संगीतज्ञ अपने मनोगत भावों को व्यक्त करता है। संगीत का सभी ललित कलाओं में सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। संगीत भाव और रस को व्यक्त करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होता है। संगीत का एक महत्वपूर्ण भाग है, भारतीय शास्त्रीय संगीत। यह संगीत प्राचीनकाल से ही हमारे समाज का संवर्धन कर रहा है और आने वाले समय में भी इसका महत्व बढ़ता रहेगा।

भारतीय शास्त्रीय संगीत का भविष्य सुन्दर और उज्जवल होने की सम्भावना है क्योंकि यह गम्भीरता, सौन्दर्य और आत्म–संयम की विशेषताओं का उच्चारण करता है।

16.2 उदेश्य :–

इस पाठ के अध्ययन से हम यह जान पाएंगे कि हमारा संगीत तथा भारतीय शास्त्रीय संगीत क्या है और उसका आने वाले समय में कितना प्रचार–प्रसार रहेगा अर्थात् हमारे शास्त्रीय संगीत का क्या भविष्य होगा।

16.3 संगीत का अर्थ :–

संगीत का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत है। इसका सम्बन्ध मानव जीवन से माना जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि संगीत मानव जीवन की अभिव्यक्ति है। जिस प्रकार मनुष्य जीवन अनन्त तथा व्यापक है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य से सम्बन्धित संगीत भी अत्यन्त विस्तृत है। संगीत में मानव जीवन का साक्षात दर्शन होता है। संगीत में भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों का समन्वय मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि एक ओर कला कला के लिए है, इसका दिग्दर्शन मिलता है और दूसरी ओर कला जीवन के लिए है, इस भाव का स्पष्टीकरण मिलता है। संगीत कला पक्ष तथा भाव पक्ष दोनों पक्षों से आनन्द की सृष्टि करता है और यही आनन्द मनुष्य की अमूल्य निधि है। संगीत एक ऐसी कला है, जो मनोरंजन के साथ–साथ ब्रह्म–आनन्द की अनूभूति भी करवाता है।

प्राचीन समय में संगीत के दो रूप माने जाते थे –– मार्गी संगीत तथा देशी संगीत। मार्गी का अर्थ है, खोज करना अर्थात् परम ब्रह्म से साक्षातकार करना। यह संगीत गन्धर्व लोक में व्यवहरित था। इस संगीत का उदेश्य केवल ईश्वर प्राप्ति रहा है। इस संगीत के नियम और सिद्धान्त अविकृत रहते हैं। कहा जाता है कि महर्षि नारद ने इस संगीत का उपदेश मृत्यु लोक के निवासियों को भी दिया किन्तु जन रूचि में भेद होने के कारण धीरे–धीरे मार्गी संगीत का रूप विकृत होने लगा और आगे चल कर उस संगीत ने देशी संगीत का रूप धारण कर लिया। देशी संगीत का उदेश्य मनोरंजन के साथ–साथ ईश्वर प्राप्ति करना भी है। वह मार्गी संगीत जिसका उदेश्य ईश्वर प्राप्ति था तथा जिसके नियम भी कठोर थे, आगे चल कर यही मार्गी संगीत शास्त्रीय संगीत कहलाया।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 संगीत से आप क्या समझते हैं।

16.4 शास्त्रीय संगीत की व्याख्या :–

समय परिवर्तन के साथ–साथ संगीत भी आगे चल कर अलग–अलग भागों में बंट गया जैसे ––– शास्त्रीय संगीत, अर्ध–शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत और लोक संगीत।

भारत में शास्त्रीय संगीत का इतिहास वैदिक काल से आरम्भ माना जाता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति वेदों से बताई गई है। सामवेद में इसकी चर्चा गहराई से की गई है। भारतीय शास्त्रीय संगीत कठोर नियमों और अध्यात्मिकता से प्रभावित रहा है। अतः सर्वप्रथम शास्त्रीय संगीत का आरम्भ मनुष्य जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति हेतु हुआ।

शास्त्रीय संगीत स्वर प्रधान माना जाता है, शब्द प्रधान नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि शास्त्रीय संगीत में शब्द या काव्य की अपेक्षा स्वर अधिक महत्व रखता है। शास्त्रीय संगीत से तात्पर्य –– गायन, वादन, नृत्य तथा अभिनय परम्परा से है, जिसके विषय में हमें वेदों में प्राप्त होता है। सर्वप्रथम् संगीत के विषय में हमें ऋग्वेद में अध्ययन करने को मिलता है। तत्तपश्चात् सामवेद संगीत का ग्रन्थ प्रकाश में आया जिसे ऋग्वेद का ही अंश माना जाता है। सामवेद में जिस संगीत का वर्णन हमें प्राप्त होता है उसमें स्वर महत्वपूर्ण माना जाता है तथा काव्य गौण रहता है।

शास्त्रीय संगीत कुछ नियमों पर आधारित रहता है। इन नियमों को संगीतकार अपनी इच्छा अनुसार बदल नही सकता। कहने का तात्पर्य यह है कि शास्त्रीय संगीत के जो नियम निर्धारित किए गए हैं या जिन नियमों में शास्त्रीय संगीत को बांधा गया है उसका पालन करना हर संगीतकार या संगीत से जुड़े व्यक्ति को करना आवश्यक है। शास्त्रीय संगीत में स्वरों का महत्व तो होता ही है साथ ही राग, ताल व लय का भी विशेष महत्व होता है। शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत् गायन, वादन और नृत्य तीनों का समावेश होता है। इन तीनों विधाओं के लिए शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत् कुछ नियम निर्धारित किए गए हैं जिनका पालन करना अत्यन्त आवश्यक होता है।

शास्त्रीय संगीत उसे कहा जाता है जिसे शास्त्र के अनुसार प्रकट किया जाए। किसी भी कला अथवा विद्या के शास्त्र का सृजन तभी सम्भव होता है जबकि वह अस्तित्व में आकर विकसित हो। यही बात शास्त्रीय संगीत पर भी पूर्ण रूप से लागू होती है। शास्त्रीय संगीत वह संगीत है जो विभिन्न राग–रागनियों से सुसज्जित है लेकिन फिर भी कड़े नियमों में बंधा हुआ है। जैसा की विदित है कि शास्त्रीय संगीत में स्वर महत्वपूर्ण होने के साथ–साथ लय, ताल, रस, भाव आदि का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। हमारा शास्त्रीय संगीत मार्गी संगीत के रूप में आरम्भ होता हुआ स्वामी हरिदास, तानसेन, बैजू बावरा, पं0 विष्णु दिगम्बर, पं0 भातखण्डे इत्यादि महान संगीतकारों की विरासत रहा है। जो समय परिवर्तन के साथ–साथ गुरू–शिष्य परम्परा से होता हुआ घरानों की

शक्ल (रूप)में ढला और विद्यालयों, महाविद्यालयों, संस्थानों से होता हुआ विकसित तथा प्रचलित होकर आज हमारे समक्ष है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 शास्त्रीय संगीत की व्याख्या कीजिए।

16.5 शास्त्रीय संगीत का भविष्य :–

भारतीय संस्कृति के सबसे महत्वपूर्ण हिस्से में से एक है –– भारतीय शास्त्रीय संगीत। यह संगीत प्राचीनकाल से ही हमारे समाज का संवर्धन कर रहा है और आने वाले समय में भी इसका महत्व बढ़ता रहेगा। भारतीय शास्त्रीय संगीत का भविष्य सुन्दर और उज्जवल होने की सम्भावना है क्योंकि यह गंभीरता, सौन्दर्य और आत्म–संयम की विशेषताओं का उच्चारण करता है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत की मूल नींव वेदों और नाट्य शास्त्र पर आधारित है। यह नींव न केवल संगीत को एक आकर्षक कला बनाती है, अपितु उसे मनोविज्ञानिक और धार्मिक अभिज्ञान की दृष्टि से भी विकसित करती है। आने वाले समय में, भारतीय शास्त्रीय संगीत अपने संगीत पठन और अभिगमन के नए रूपों का विकास करेगा। विज्ञान और तकनीकी प्रगति के चलते, भारतीय शास्त्रीय संगीत के अभ्यास को और भी आसान बनाया जा सकेगा। शास्त्रीय संगीत को आधुनिक रूप से संशोधित करके उसे सांगीतिक संगठनों के माध्यम से परम्परागत शिक्षा को सवंर्धित किया जा सकेगा और इसका अधिक से अधिक प्रचार–प्रसार भी किया जा सकेगा। शास्त्रीय संगीत को आधुनिक रूप से संशोधित करने का अर्थ यही है कि यह नए रूप में लोगों के समक्ष तो आए लेकिन इसके प्राचीन तथा मूल रूप को भी सुरक्षित रखा जाए। दूसरी ओर ऐसा करने से भारतीय शास्त्रीय संगीत की अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता और पहचान भी बढ़ेगी। इसी प्रकार यदि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संगीत के पाठ्यक्रम तैयार किए जाएं, संगीतकारों तथा संगीत कलाकारों के अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अधिक से अधिक मंच कला प्रदर्शन के कार्यक्रम किए जाएं, अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर संगीत शिक्षा के अधिक से अधिक कार्यक्रम किए जाएं अर्थात् वैश्विक मंच पर भारतीय शास्त्रीय संगीत को प्रदर्शित किया जाए तो ऐसा करने से हमारा शास्त्रीय संगीत दूसरे देशों के संगीत प्रेमियों को भी अपनी ओर आकर्षित कर सकेगा। जिससे इसकी मान्यता और विस्तार बढ़ेगा।

दूसरी ओर यदि देखा जाए तो शास्त्रीय संगीत का भविष्य बहुत–कुछ युवा पीढ़ी के हाथों में भी है। जिसके लिए युवाओं में सांगीतीय शिक्षा को महत्व दिया जा रहा है। इसके लिए संगीत संस्थानों, शिक्षा संस्थानों और गुरू–शिष्य परम्पराओं में नए प्रशिक्षण मॉडल विकसित किए जा रहे हैं। जिससे युवा पीढ़ी में संगीत के प्रति

रूचि और प्रेम बढ़ाया जा सकेगा। यदि संगीत शिक्षा के साथ–साथ युवाओं को अपनी कला और रचनात्मकता को प्रदर्शित करने के अधिक से अधिक अवसर प्रदान किए जाएंगे तब भी शास्त्रीय संगीत का भविष्य और अधिक उज्जवल होगा।

भरातीय शास्त्रीय संगीत का भविष्य इसलिए भी उज्जवल है क्योंकि समय–समय पर शास्त्रीय संगीत के विश्वस्तरीय कला समारोहों, संगीत उत्सवों एवं संगोष्ठियों का आयोजन होता रहा है और होता रहेगा। इसी प्रकार शास्त्रीय संगीत के विद्यार्थियों को विभिन्न सांगीतिक दर्शनों एवं प्रदर्शनियों में भाग लेने का अवसर मिलता रहेगा तब भी शास्त्रीय संगीत का भविष्य प्रकाश की ओर जाएगा। दूसरी ओर गुरू–शिष्य परम्परा का स्थाई रूप से चलते रहने से भी शास्त्रीय संगीत का भविष्य उज्जवल है।

संक्षेप में कहें तो, भारतीय शास्त्रीय संगीत का भविष्य उज्जवल और सशक्त होने की सम्भावना है। क्योंकि इसका मूल आधार भारतीय संस्कृति, दर्शन और आध्यात्मिकता पर आधारित रहा है। भारतीय शास्त्रीय संगीत को स्वर्गीय आदित्य श्रीनिवास जी, पंडित रवि शंकर जी, उस्ताद बिस्मिल्लाह खान और अनेक महान संगीतकारों ने विश्व मंच पर प्रस्तुत किया है और आगे भी ऐसे प्रतिभाशाली संगीतकारों की प्रकृति से इसकी प्रगति की उम्मीद है।

इस प्रकार भारतीय शास्त्रीय संगीत आने वाले समय में अपने महत्वपूर्ण स्थान को बनाए रखेगा। यह संगीत आत्मा को सवंर्धित करने, मानवता में सौन्दर्य का प्रचार करने और संयम तथा आत्म समर्पण के माध्यम से मानसिक शान्ति का उच्चारण करने का एक माध्यम होगा। यह संगीत समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को संजोने, प्रचारित करने और आगे बढ़ाने का कार्य करेगा। भारतीय शास्त्रीय संगीत का भविष्य उज्जवल है, केवल हमें इसे समर्पित रूप से संरक्षित करने और उसे समर्थन करने की आवश्यकता है। जिससे हम इस मानवीय रूपांतर के युग में भी उच्चतम मानकों पर बने रहें। शास्त्रीय संगीत का भविष्य उज्जवल बना रहे, इसके लिए सरकारी संगठनों, संगीत संस्थानों और निजी संगठनों के बीच आपसी सहयोग होना एक महत्वपूर्ण भूमिका रहेगी। इसके अतिरिक्त शास्त्रीय संगीत की शिक्षा को बढ़ावा देने, नवाचारों का प्रोत्साहन करने तथा शास्त्रीय संगीत के नए–नए कार्यक्रमों का आयोजन करने के लिए विभिन्न अवसर प्रदान किए जाने चाहिए।

इसके अतिरिक्त यदि हम शास्त्रीय संगीत के भविष्य को उज्जवल देखना चाहते हैं तो ऐसे विद्यार्थी जो संगीत या शास्त्रीय संगीत में रूचि रखते हैं लेकिन गरीब परिवारों से सम्बन्ध रखते हैं उन्हें भी शास्त्रीय संगीत की शिक्षा और अवसरों का लाभ मिलना चाहिए। सरकारी योजनाओं, निजी दान के माध्यम से और सामाजिक संगठनों के सहयोग से, संगीत प्रशिक्षण की सुविधा तथा विद्यार्थियों को सांगीतिक उपकरणों तक पहुँच प्रदान की जानी चाहिए।

इस प्रकार भारतीय शास्त्रीय संगीत अपने परम्परागत मूल्यों, आध्यात्मिकता और भावात्मकता के साथ आगे बढ़ता रहेगा। भारतीय संगीत तथा भारतीय शास्त्रीय संगीत दुनिया की एक महत्वपूर्ण कला रूपी झलक है जो आगे चल कर भी मानव सभ्यता की समृद्ध संस्कृति का भाग रहेगा। यह संगीत आदर्शों, कल्याणकारी भावों और ऊर्जा के माध्यम से अपार सुख और संतोष का स्त्रोत होगा। संगीतकारों, गायकों, वादकों और रसिक जनता के सहयोग के माध्यम से, भारतीय शास्त्रीय संगीत विश्व में एक प्रभावशाली और अद्वितीय स्थान बनाए रखेगा।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 संगीत के भविष्य पर प्रकाश डालिए।

16.6 सारांश :–

अंततः भारतीय शास्त्रीय संगीत का भविष्य रोशनी, संतुलन और सुंदरता से परिपूर्ण होगा। इसका महत्व तथा मान्यता विश्व स्तर पर बढ़ेंगे। आने वाले समय में इस महान कला को ऐसी मान्यता तथा ऊँचाई मिलेगी जिससे कि यह कला मन, आत्मा और समाज को आनन्द और उज्जवलता से परिपूर्ण कर सकती है। भारतीय शास्त्रीय संगीत सदैव नवीनतम प्रगति के साथ अपने आदर्शों को सत्यापित करने के लिए तत्पर रहेगा और संगीत प्रेमियों को एक आनन्ददायक, मनोहारी और प्रभावशाली संगीतीय अनुभव प्रदान करेगा।

16.7 शब्दकोष :–

1. संवर्धन – उन्नति या तरक्की
2. व्यापक – फैला हुआ
3. अनन्त – जिसका अंत न हो
4. दिग्दर्शन –दिशा दिखलाना या जानकारी देना
5. सृजन – रचना या उत्पत्ति
6. अभिज्ञान – मान्यता या पहचान
7. अभिगमन – पास जाना
8. अद्वितीय – अनोखा

16.8 स्वयं परीक्षा प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 संगीत से आप क्या समझते हैं ?

उ0. संगीत वह ललित कला है जिसमें स्वर, लय और ताल के माध्यम से संगीतज्ञ अपने मनोगत भावों को व्यक्त करता है। संगीत का सभी ललित कलाओं में सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। संगीत भाव और रस को व्यक्त करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होता है। संगीत का एक महत्वपूर्ण भाग है, भारतीय शास्त्रीय संगीत। यह संगीत प्राचीनकाल से ही हमारे समाज का संवर्धन कर रहा है और आने वाले समय में भी इसका महत्व बढ़ता रहेगा। भारतीय शास्त्रीय संगीत का भविष्य सुन्दर और उज्जवल होने की सम्भावना है क्योंकि यह गम्भीरता, सौन्दर्य और आत्म–संयम की विशेषताओं का उच्चारण करता है।

संगीत का अर्थ :–

संगीत का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत है। इसका सम्बन्ध मानव जीवन से माना जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि संगीत मानव जीवन की अभिव्यक्ति है। जिस प्रकार मनुष्य जीवन अनन्त तथा व्यापक है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य से सम्बन्धित संगीत भी अत्यन्त विस्तृत है। संगीत में मानव जीवन का साक्षात दर्शन होता है। संगीत में भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों का समन्वय मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि एक ओर कला कला के लिए है, इसका दिग्दर्शन मिलता है और दूसरी ओर कला जीवन के लिए है, इस भाव का स्पष्टीकरण मिलता है। संगीत कला पक्ष तथा भाव पक्ष दोनों पक्षों से आनन्द की सृष्टि करता है और यही आनन्द मनुष्य की अमूल्य निधि है। संगीत एक ऐसी कला है, जो मनोरंजन के साथ–साथ ब्रह्म–आनन्द की अनूभूति भी करवाता है।

प्राचीन समय में संगीत के दो रूप माने जाते थे –– मार्गी संगीत तथा देशी संगीत। मार्गी का अर्थ है, खोज करना अर्थात् परम ब्रह्म से साक्षातकार करना। यह संगीत गन्धर्व लोक में व्यवहरित था। इस संगीत का उदेश्य केवल ईश्वर प्राप्ति रहा है। इस संगीत के नियम और सिद्धान्त अविकृत रहते हैं। कहा जाता है कि महर्षि नारद ने इस संगीत का उपदेश मृत्यु लोक के निवासियों को भी दिया किन्तु जन रूचि में भेद होने के कारण धीरे–धीरे मार्गी संगीत का रूप विकृत होने लगा और आगे चल कर उस संगीत ने देशी संगीत का रूप धारण कर लिया। देशी संगीत का उदेश्य मनोरंजन के साथ–साथ ईश्वर प्राप्ति करना भी है। वह मार्गी संगीत जिसका उदेश्य ईश्वर प्राप्ति था तथा जिसके नियम भी कठोर थे, आगे चल कर यही मार्गी संगीत शास्त्रीय संगीत कहलाया।

प्र0.2 शास्त्रीय संगीत की व्याख्या कीजिए।

उ0. **शास्त्रीय संगीत की व्याख्या :–**

समय परिवर्तन के साथ–साथ संगीत भी आगे चल कर अलग–अलग भागों में बंट गया जैसे ––– शास्त्रीय संगीत, अर्ध–शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत और लोक संगीत।

भारत में शास्त्रीय संगीत का इतिहास वैदिक काल से आरम्भ माना जाता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति वेदों से बताई गई है। सामवेद में इसकी चर्चा गहराई से की गई है। भारतीय शास्त्रीय संगीत कठोर नियमों और अध्यात्मिकता से प्रभावित रहा है। अतः सर्वप्रथम शास्त्रीय संगीत का आरम्भ मनुष्य जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति हेतु हुआ।

शास्त्रीय संगीत स्वर प्रधान माना जाता है, शब्द प्रधान नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि शास्त्रीय संगीत में शब्द या काव्य की अपेक्षा स्वर अधिक महत्व रखता है। शास्त्रीय संगीत से तात्पर्य –– गायन, वादन, नृत्य तथा अभिनय परम्परा से है, जिसके विषय में हमें वेदों में प्राप्त होता है। सर्वप्रथम् संगीत के विषय में हमें ऋग्वेद में अध्ययन करने को मिलता है। तत्तपश्चात् सामवेद संगीत का ग्रन्थ प्रकाश में आया जिसे ऋग्वेद का ही अंश माना जाता है। सामवेद में जिस संगीत का वर्णन हमें प्राप्त होता है उसमें स्वर महत्वपूर्ण माना जाता है तथा काव्य गौण रहता है।

शास्त्रीय संगीत कुछ नियमों पर आधारित रहता है। इन नियमों को संगीतकार अपनी इच्छा अनुसार बदल नही सकता। कहने का तात्पर्य यह है कि शास्त्रीय संगीत के जो नियम निर्धारित किए गए हैं या जिन नियमों में शास्त्रीय संगीत को बांधा गया है उसका पालन करना हर संगीतकार या संगीत से जुड़े व्यक्ति को करना आवश्यक है। शास्त्रीय संगीत में स्वरों का महत्व तो होता ही है साथ ही राग, ताल व लय का भी विशेष महत्व होता है। शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत् गायन, वादन और नृत्य तीनों का समावेश होता है। इन तीनों विधाओं के लिए शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत् कुछ नियम निर्धारित किए गए हैं जिनका पालन करना अत्यन्त आवश्यक होता है।

शास्त्रीय संगीत उसे कहा जाता है जिसे शास्त्र के अनुसार प्रकट किया जाए। किसी भी कला अथवा विद्या के शास्त्र का सृजन तभी सम्भव होता है जबकि वह अस्तित्व में आकर विकसित हो। यही बात शास्त्रीय संगीत पर भी पूर्ण रूप से लागू होती है। शास्त्रीय संगीत वह संगीत है जो विभिन्न राग–रागनियों से सुसज्जित है लेकिन फिर भी कड़े नियमों में बंधा हुआ है। जैसा की विदित है कि शास्त्रीय संगीत में स्वर महत्वपूर्ण होने के साथ–साथ लय, ताल, रस, भाव आदि का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। हमारा शास्त्रीय संगीत मार्गी संगीत के रूप में आरम्भ होता हुआ स्वामी हरिदास, तानसेन, बैजू बावरा, पं0 विष्णु दिगम्बर, पं0 भातखण्डे इत्यादि महान संगीतकारों की विरासत रहा है। जो समय परिवर्तन के साथ–साथ गुरू–शिष्य परम्परा से होता हुआ घरानों की शक्ल (रूप)में ढला और विद्यालयों, महाविद्यालयों, संस्थानों से होता हुआ विकसित तथा प्रचलित होकर आज हमारे समक्ष है।

प्र0.3 संगीत के भविष्य पर प्रकाश डालिए।

उ0. **शास्त्रीय संगीत का भविष्य :–**

भारतीय संस्कृति के सबसे महत्वपूर्ण हिस्से में से एक है –– भारतीय शास्त्रीय संगीत। यह संगीत प्राचीनकाल से ही हमारे समाज का संवर्धन कर रहा है और आने वाले समय में भी इसका महत्व बढ़ता रहेगा। भारतीय शास्त्रीय संगीत का भविष्य सुन्दर और उज्जवल होने की सम्भावना है क्योंकि यह गंभीरता, सौन्दर्य और आत्म–संयम की विशेषताओं का उच्चारण करता है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत की मूल नींव वेदों और नाट्य शास्त्र पर आधारित है। यह नींव न केवल संगीत को एक आकर्षक कला बनाती है, अपितु उसे मनोविज्ञानिक और धार्मिक अभिज्ञान की दृष्टि से भी विकसित करती है। आने वाले समय में, भारतीय शास्त्रीय संगीत अपने संगीत पठन और अभिगमन के नए रूपों का विकास करेगा। विज्ञान और तकनीकी प्रगति के चलते, भारतीय शास्त्रीय संगीत के अभ्यास को और भी आसान बनाया जा सकेगा। शास्त्रीय संगीत को आधुनिक रूप से संशोधित करके उसे सांगीतिक संगठनों के माध्यम से परम्परागत शिक्षा को सवंर्धित किया जा सकेगा और इसका अधिक से अधिक प्रचार–प्रसार भी किया जा सकेगा। शास्त्रीय संगीत को आधुनिक रूप से संशोधित करने का अर्थ यही है कि यह नए रूप में लोगों के समक्ष तो आए लेकिन इसके प्राचीन तथा मूल रूप को भी सुरक्षित रखा जाए। दूसरी ओर ऐसा करने से भारतीय शास्त्रीय संगीत की अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता और पहचान भी बढ़ेगी। इसी प्रकार यदि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संगीत के पाठ्यक्रम तैयार किए जाएं, संगीतकारों तथा संगीत कलाकारों के अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अधिक से अधिक मंच कला प्रदर्शन के कार्यक्रम किए जाएं, अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर संगीत शिक्षा के अधिक से अधिक कार्यक्रम किए जाएं अर्थात् वैश्विक मंच पर भारतीय शास्त्रीय संगीत को प्रदर्शित किया जाए तो ऐसा करने से हमारा शास्त्रीय संगीत दूसरे देशों के संगीत प्रेमियों को भी अपनी ओर आकर्षित कर सकेगा। जिससे इसकी मान्यता और विस्तार बढ़ेगा।

दूसरी ओर यदि देखा जाए तो शास्त्रीय संगीत का भविष्य बहुत–कुछ युवा पीढ़ी के हाथों में भी है। जिसके लिए युवाओं में सांगीतीय शिक्षा को महत्व दिया जा रहा है। इसके लिए संगीत संस्थानों, शिक्षा संस्थानों और गुरू–शिष्य परम्पराओं में नए प्रशिक्षण मॉडल विकसित किए जा रहे हैं। जिससे युवा पीढ़ी में संगीत के प्रति रूचि और प्रेम बढ़ाया जा सकेगा। यदि संगीत शिक्षा के साथ–साथ युवाओं को अपनी कला और रचनात्मकता को प्रदर्शित करने के अधिक से अधिक अवसर प्रदान किए जाएंगे तब भी शास्त्रीय संगीत का भविष्य और अधिक उज्जवल होगा।

भरातीय शास्त्रीय संगीत का भविष्य इसलिए भी उज्जवल है क्योंकि समय–समय पर शास्त्रीय संगीत के विश्वस्तरीय कला समारोहों, संगीत उत्सवों एवं संगोष्ठियों का आयोजन होता रहा है और होता रहेगा। इसी प्रकार

शास्त्रीय संगीत के विद्यार्थियों को विभिन्न सांगीतिक दर्शनों एवं प्रदर्शनियों में भाग लेने का अवसर मिलता रहेगा तब भी शास्त्रीय संगीत का भविष्य प्रकाश की ओर जाएगा। दूसरी ओर गुरू–शिष्य परम्परा का स्थाई रूप से चलते रहने से भी शास्त्रीय संगीत का भविष्य उज्जवल है।

संक्षेप में कहें तो, भारतीय शास्त्रीय संगीत का भविष्य उज्जवल और सशक्त होने की सम्भावना है। क्योंकि इसका मूल आधार भारतीय संस्कृति, दर्शन और आध्यात्मिकता पर आधारित रहा है। भारतीय शास्त्रीय संगीत को स्वर्गीय आदित्य श्रीनिवास जी, पंडित रवि शंकर जी, उस्ताद बिस्मिल्लाह खान और अनेक महान संगीतकारों ने विश्व मंच पर प्रस्तुत किया है और आगे भी ऐसे प्रतिभाशाली संगीतकारों की प्रकृति से इसकी प्रगति की उम्मीद है।

इस प्रकार भारतीय शास्त्रीय संगीत आने वाले समय में अपने महत्वपूर्ण स्थान को बनाए रखेगा। यह संगीत आत्मा को सवंर्धित करने, मानवता में सौन्दर्य का प्रचार करने और संयम तथा आत्म समर्पण के माध्यम से मानसिक शान्ति का उच्चारण करने का एक माध्यम होगा। यह संगीत समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को संजोने, प्रचारित करने और आगे बढ़ाने का कार्य करेगा। भारतीय शास्त्रीय संगीत का भविष्य उज्जवल है, केवल हमें इसे समर्पित रूप से संरक्षित करने और उसे समर्थन करने की आवश्यकता है। जिससे हम इस मानवीय रूपांतर के युग में भी उच्चतम मानकों पर बने रहें। शास्त्रीय संगीत का भविष्य उज्जवल बना रहे, इसके लिए सरकारी संगठनों, संगीत संस्थानों और निजी संगठनों के बीच आपसी सहयोग होना एक महत्वपूर्ण भूमिका रहेगी। इसके अतिरिक्त शास्त्रीय संगीत की शिक्षा को बढ़ावा देने, नवाचारों का प्रोत्साहन करने तथा शास्त्रीय संगीत के नए–नए कार्यक्रमों का आयोजन करने के लिए विभिन्न अवसर प्रदान किए जाने चाहिए।

इसके अतिरिक्त यदि हम शास्त्रीय संगीत के भविष्य को उज्जवल देखना चाहते हैं तो ऐसे विद्यार्थी जो संगीत या शास्त्रीय संगीत में रूचि रखते हैं लेकिन गरीब परिवारों से सम्बन्ध रखते हैं उन्हें भी शास्त्रीय संगीत की शिक्षा और अवसरों का लाभ मिलना चाहिए। सरकारी योजनाओं, निजी दान के माध्यम से और सामाजिक संगठनों के सहयोग से, संगीत प्रशिक्षण की सुविधा तथा विद्यार्थियों को सांगीतिक उपकरणों तक पहुँच प्रदान की जानी चाहिए।

इस प्रकार भारतीय शास्त्रीय संगीत अपने परम्परागत मूल्यों, आध्यात्मिकता और भावात्मकता के साथ आगे बढ़ता रहेगा। भारतीय संगीत तथा भारतीय शास्त्रीय संगीत दुनिया की एक महत्वपूर्ण कला रूपी झलक है जो आगे चल कर भी मानव सभ्यता की समृद्ध संस्कृति का भाग रहेगा। यह संगीत आदर्शों, कल्याणकारी भावों और ऊर्जा के माध्यम से अपार सुख और संतोष का स्त्रोत होगा। संगीतकारों, गायकों, वादकों और रसिक जनता के सहयोग के माध्यम से, भारतीय शास्त्रीय संगीत विश्व में एक प्रभावशाली और अद्वितीय स्थान बनाए रखेगा।

16.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. संगीत विशारद, बसंत, संगीत कार्यालय हाथरस, उ.प्र., जनवरी 1997, 21वां संस्करण।
2. संगीत निबन्ध माला।
3. संगीत शिक्षा, श्री मति विजय अरोड़ा, ए.पी. पब्लिशर, जालन्धर।
4. संगीत युगे–युगे, तजम्मुल खान संगीतज्ञ, शकीला प्रकाशन, लखनऊ, 1988।
5. भारतीय संगीत का इतिहास, भगवत शरण शर्मा।

16.10 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 संगीत तथा शास्त्रीय संगीत से आप क्या समझते हैं ?

प्र0.2 संगीत का क्या भविष्य है ? समझाइए।

–:–:–:–:–:–:–:–

LESSON – 17

Role of Electronic Instruments in Indian Classical Music

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में यान्त्रिक वाद्यों (Electronic Instruments) की भूमिका

STRUCTURE :

17.1 भूमिका

17.2 उदेश्य

17.3 संगीत में वाद्य उत्पत्ति

17.4 संगीत में यान्त्रिक वाद्यों की भूमिका

17.5 सारांश

17.6 शब्दकोष

17.7 स्वयं परीक्षा प्रश्न उत्तर

17.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

17.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

17.1 भूमिका :–

गीत, वाद्य तथा नृत्य इन तीनों कलाओं का सामूहिक नाम संगीत है अर्थात् संगीत के अन्तर्गत् ये तीन कलाएं मानी जाती हैं। इन तीनों का सामूहिक प्रयोग ही संगीत को जन्म देता है, फिर भी ये तीनों कलाएँ स्वतन्त्र मानी जाती हैं। इन तीनों का अलग–अलग प्रयोजन एवं महत्व है।

17.2 उदेश्य :–

इस पाठ का उदेश्य यह जानना है कि यान्त्रिक वाद्य क्या होते हैं और उनका हमारे संगीत में क्या स्थान है।

17.3 संगीत में वाद्य उत्पत्ति :–

गीत वाद्य तथा नृत्य इन तीनों कलाओं में नाद तथा गति दो ऐसे मुख्य आधार तत्व हैं जो संगीत में क्रमशः स्वर तथा लय को जन्म देते हैं। दूसरे शब्दों में संगीत रूपी भवन स्वर तथा लय इन दो नीवों पर खड़ा है। इन्हीं दो मूल आधारों का अर्थात् संगीतात्मक स्वर तथा उसकी लय का बोध करवाने वाले उपकरण का नाम वाद्य है। दूसरे शब्दों में ध्वनि उच्चारण करने वाला उपकरण 'वाद्य' कहलाता है। इस दृष्टि से ध्वनि उत्पन्न करने वाला मनुष्य का कण्ठ भी एक प्रकार का वाद्य ही हुआ।

अतः हम वाद्य उपकरण दो प्रकार के मान सकते हैं :–

1. **ईश्वर निर्मित**
2. **मनुष्य निर्मित**

मनुष्य अथवा किसी जीव का कण्ठ ईश्वर निर्मित वाद्य कहा जा सकता है। क्योंकि इसमें कण्ठ के विशेष अंगों की सहायता से स्वरोत्पत्ति की जाती है। जबकि अन्य सभी भौतिक वाद्य मनुष्य निर्मित माने जाते हैं।

वाद्यों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है – शास्त्रीय संगीत की विवेचना में उनका सहयोग। प्राचीनकाल से चली आ रही शास्त्रीय संगीत की परम्परा वाद्यों के द्वारा ही आज सुरक्षित रही है। यदि ऐसा कहा जाए कि आज अगर वाद्य न होते तो शास्त्रीय संगीत की परम्परा भी अस्तित्व हीन हो चुकी होती ऐसा कहना गलत न होगा क्योंकि संगीत में स्वरोत्पत्ति स्वर–स्थान का स्थिरीकरण, स्वरान्तरालों का नाप–तोल, लय–ताल बनाने तथा विकसित करने, विभिन्न लयकारियों का प्रदर्शन करने आदि जैसे कार्य वाद्यों के बिना सम्भव नहीं हो सकते। महर्षि भरत ने भी श्रुतियों के प्रत्यक्षीकरण के लिए एक समान बनी दो वीणाओं का प्रयोग किया।

शास्त्रीय संगीत में ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा आदि गायन के साथ विभिन्न वाद्यों का सुन्दर प्रयोग ही इन शैलियों का अस्तित्व बनाए हुए हैं। वादन कला में सितार, सरोद, शहनाई, बाँसुरी, संतूर, वायलिन, वीणा इत्यादि का एकल–वादन जो आज अत्यधिक लोकप्रिय हो रहा है, वह तो पूरे का पूरा ही वाद्यों पर आधारित है। तबले अथवा मृदंग का प्रयोग शास्त्रीय संगीत की प्रत्येक शैली के साथ ताल संगति के लिए आवश्यक रूप से किया जाता है। ताल वाद्यों के बिना तो कोई भी संगीत शैली मधुर तथा आकर्षक नहीं लग सकती।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 संगीत में वाद्यों की उत्पत्ति पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

17.4 संगीत में यान्त्रिक वाद्यों की भूमिका :–

हमारे संगीत में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है और परिवर्तन के साथ–साथ संगीत का विकास भी होता गया है। आज अनेक परिवर्तन हमारे संगीत में देखने को मिल रहे हैं, यही परिवर्तन संगीत वाद्यों में भी देखने को मिल रहा है। हमारे शास्त्रीय संगीत में हाथों से बजाए जाने वाले वाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इन वाद्यों का अपना एक अलग स्थान है। फिर चाहे वह सितार हो, सरोद, शहनाई, बाँसुरी, तबला, मृदंग इत्यादि ये सभी वाद्य जब शास्त्रीय संगीत के साथ बजाए जाते हैं तो एक अलग ही प्रकार के रस का संचार होता है। लेकिन आज जिस प्रकार हमारे चारों ओर वस्तुओं में परिवर्तन होते जा रहे हैं उसी प्रकार हमारे शास्त्रीय संगीत में प्रयोग होने वाले वाद्य भी परिवर्तित होते जा रहे हैं। आज हमारा सम्पूर्ण जीवन Electronic अर्थात् यान्त्रिक वस्तुओं से भर गया है। हमारे दैनिक जीवन का कोई भी पहलू इससे अछूता नही है। यहाँ तक की हमारे शास्त्रीय संगीत में भी यान्त्रिकी ने अपनी जगह बना ली है। आज शास्त्रीय संगीत में यान्त्रिक वाद्यों का बहुत अधिक समावेश हो गया है। वह शास्त्रीय गायन हो या वादन सभी में यान्त्रिक वाद्यों का ज़ोर–शोर से प्रयोग होने लगा है। यान्त्रिक वाद्यों के अन्तर्गत् आज बहुत से वाद्य प्रचार में आ गए हैं जैसे –– तानपूरा, तबला, बाँसुरी, सिथेसाइज़र इत्यादि। सिथेसाइज़र तो एक ऐसा यान्त्रिक वाद्य है कि जिसमें हमारे हाथ से बजाए जाने वाले लगभग सभी वाद्य बज सकते हैं।

आज हमारे विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के संगीत शिक्षण में इन वाद्यों का पूर्ण रूप से समावेश हो चुका है। आज शिक्षण संस्थाओं में यान्त्रिक वाद्यों जैसे –– तानपूरा, तबला आदि का भरपूर प्रयोग किया जाता है। गायन–वादन के साथ स्वर और ताल के लिए इन वाद्यों का पूर्ण रूप से प्रयोग होता है। विद्यार्थियों के लिए तो ये यान्त्रिक वाद्य बहुत सहायक सिद्ध हो रहे हैं। विद्यार्थी इन वाद्यों को प्रयोग कहीं भी, किसी भी समय कर सकते हैं। यदि शिक्षक कक्षा में नही है तो विद्यार्थी इन वाद्यों के द्वारा अपने शास्त्रीय संगीत का अभ्यास इन वाद्यों के सहयोग से कर सकते हैं। जैसे विद्यार्थी अपने स्वर के अनुसार यान्त्रिक तानपूरे को स्वर पर व्यवस्थित करके उसके स्वराधार पर गायन कर सकता है। इसी प्रकार यान्त्रिक तबले में भी हर तरह के ताल का समावेश किया गया है इसी लिए इसे 'तालमाल' कहकर भी पुकारा जाता है, जो विद्यार्थियों तथा अन्य गायकों–वादकों के शास्त्रीय संगीत के साथ उपयुक्त ताल का वादन कर उन्हें ताल संगत में सहायक सिद्ध होता है।

इसी प्रकार अलग–अलग यान्त्रिक वाद्यों का प्रयोग बड़े–बड़े कार्यक्रमों में संगत के लिए तथा शास्त्रीय गायन के साथ भिन्न–भिन्न प्रकार के वाद्यों की संगत के रूप में किया जाने लगा है। कई स्थानों पर संगत के

लिए वाद्यवृन्द के लिए भी एक ही यान्त्रिक वाद्य का प्रयोग होने लगा है क्योंकि इस एक वाद्य में अनेक वाद्यों की ध्वनि उत्पन्न की जा सकती है।

इन वाद्यों के प्रयोग का लाभ तो शास्त्रीय संगीत में हुआ ही है लेकिन इनका सबसे अधिक लाभ विद्यार्थियों को हुआ है। क्योंकि वे इन वाद्यों के साथ अपने शास्त्रीय संगीत का अभ्यास आसानी से कर लेते हैं। उन्हें वाद्य मिलाने की आवश्यकता नही पड़ती जिससे उनका समय बचता है और वे आसानी से यान्त्रिक वाद्यों का प्रयोग करते हैं और इनका लाभ उठाते हैं। यहाँ तक की हमारे कई कलाकार भी इन वाद्यों का प्रयोग अपने शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमों में करने लगे हैं क्योंकि दूसरे वाद्य अधिक बढ़े तथा नाज़ुक होने के कारण इधर–उधर ले जाने में कठिनाई उत्पन्न करते हैं जबकि यान्त्रिक वाद्य लाने–ले जाने में सुविधाजनक होते हैं और इन्हें मिलाने के लिए समय भी नष्ट नही होता है।

ये वाद्य शास्त्रीय संगीत में अपना अत्यधिक स्थान बना चुके हैं। इसका कारण ये है कि ये यान्त्रिक वाद्य रखने में, इधर–उधर ले जाने में और सबसे अधिक आसानी से प्रयोग होने के कारण हमारे संगीत में अपना प्रमुख स्थान बनाते जा रहे हैं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 संगीत में यान्त्रिक वाद्यों की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

प्र0.2 यान्त्रिक वाद्यों का संगीत में क्या लाभ है ?

17.5 सारांश :–

यांत्रिक वाद्यों का हमारे संगीत में धीरे–धीरे प्रचार–प्रसार बढ़ता जा रहा है। आज संगीत का चाहे कोई भी क्षेत्र हो कहीं न कहीं यान्त्रिक वाद्यों का प्रयोग दिखाई दे ही जाता है। यद्यपि ये यान्त्रिक वाद्य रख–रखाव व लाने–ले जाने में तथा प्रयोग करने में सुविधाजनक होते हैं तथापि ये कहना तर्कसंगत होगा कि ये वाद्य हमारे पारम्परिक वाद्यों का स्थान नही ले सकते।

17.6 शब्दकोष :–

1. भैतिक – सांसारिक
2. अस्तित्व – विद्यमानता या सत्ता
3. प्रत्यक्षीकरण – व्याख्या करना या किसी बात को सामने लाना
4. स्थिरीकरण – स्थिर करने का काम

17.7 स्वयं परीक्षा प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 संगीत में वाद्यों की उत्पत्ति पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उ0. **संगीत में वाद्य उत्पत्ति :–**

गीत वाद्य तथा नृत्य इन तीनों कलाओं में नाद तथा गति दो ऐसे मुख्य आधार तत्व हैं जो संगीत में क्रमशः स्वर तथा लय को जन्म देते हैं। दूसरे शब्दों में संगीत रूपी भवन स्वर तथा लय इन दो नीवों पर खड़ा है। इन्हीं दो मूल आधारों का अर्थात् संगीतात्मक स्वर तथा उसकी लय का बोध करवाने वाले उपकरण का नाम वाद्य है। दूसरे शब्दों में ध्वनि उच्चारण करने वाला उपकरण 'वाद्य' कहलाता है। इस दृष्टि से ध्वनि उत्पन्न करने वाला मनुष्य का कण्ठ भी एक प्रकार का वाद्य ही हुआ।

अतः हम वाद्य उपकरण दो प्रकार के मान सकते हैं :–

1. **ईश्वर निर्मित**
2. **मनुष्य निर्मित**

मनुष्य अथवा किसी जीव का कण्ठ ईश्वर निर्मित वाद्य कहा जा सकता है। क्योंकि इसमें कण्ठ के विशेष अंगों की सहायता से स्वरोत्पत्ति की जाती है। जबकि अन्य सभी भौतिक वाद्य मनुष्य निर्मित माने जाते हैं।

वाद्यों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है – शास्त्रीय संगीत की विवेचना में उनका सहयोग। प्राचीनकाल से चली आ रही शास्त्रीय संगीत की परम्परा वाद्यों के द्वारा ही आज सुरक्षित रही है। यदि ऐसा कहा जाए कि आज अगर वाद्य न होते तो शास्त्रीय संगीत की परम्परा भी अस्तित्व हीन हो चुकी होती ऐसा कहना गलत न होगा क्योंकि संगीत में स्वरोत्पत्ति स्वर–स्थान का स्थिरीकरण, स्वरान्तरालों का नाप–तोल, लय–ताल बनाने तथा विकसित करने, विभिन्न लयकारियों का प्रदर्शन करने आदि जैसे कार्य वाद्यों के बिना सम्भव नहीं हो सकते। महर्षि भरत ने भी श्रुतियों के प्रत्यक्षीकरण के लिए एक समान बनी दो वीणाओं का प्रयोग किया।

शास्त्रीय संगीत में ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा आदि गायन के साथ विभिन्न वाद्यों का सुन्दर प्रयोग ही इन शैलियों का अस्तित्व बनाए हुए हैं। वादन कला में सितार, सरोद, शहनाई, बाँसुरी, संतूर, वायलिन, वीणा इत्यादि का एकल–वादन जो आज अत्यधिक लोकप्रिय हो रहा है, वह तो पूरे का पूरा ही वाद्यों पर आधारित है। तबले अथवा मृदंग का प्रयोग शास्त्रीय संगीत की प्रत्येक शैली के साथ ताल संगति के लिए आवश्यक रूप से किया जाता है। ताल वाद्यों के बिना तो कोई भी संगीत शैली मधुर तथा आकर्षक नहीं लग सकती।

प्र0.2 संगीत में यान्त्रिक वाद्यों की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

उ0. **संगीत में यान्त्रिक वाद्यों की भूमिका :–**

हमारे संगीत में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है और परिवर्तन के साथ–साथ संगीत का विकास भी होता गया है। आज अनेक परिवर्तन हमारे संगीत में देखने को मिल रहे हैं, यही परिवर्तन संगीत वाद्यों में भी देखने को मिल रहा है। हमारे शास्त्रीय संगीत में हाथों से बजाए जाने वाले वाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इन वाद्यों का अपना एक अलग स्थान है। फिर चाहे वह सितार हो, सरोद, शहनाई, बाँसुरी, तबला, मृदंग इत्यादि ये सभी वाद्य जब शास्त्रीय संगीत के साथ बजाए जाते हैं तो एक अलग ही प्रकार के रस का संचार होता है। लेकिन आज जिस प्रकार हमारे चारों ओर वस्तुओं में परिवर्तन होते जा रहे हैं उसी प्रकार हमारे शास्त्रीय संगीत में प्रयोग होने वाले वाद्य भी परिवर्तित होते जा रहे हैं। आज हमारा सम्पूर्ण जीवन Electronic अर्थात् यान्त्रिक वस्तुओं से भर गया है। हमारे दैनिक जीवन का कोई भी पहलू इससे अछूता नही है। यहाँ तक की हमारे शास्त्रीय संगीत में भी यान्त्रिकी ने अपनी जगह बना ली है। आज शास्त्रीय संगीत में यान्त्रिक वाद्यों का बहुत अधिक समावेश हो गया है। वह शास्त्रीय गायन हो या वादन सभी में यान्त्रिक वाद्यों का ज़ोर–शोर से प्रयोग होने लगा है। यान्त्रिक वाद्यों के अन्तर्गत् आज बहुत से वाद्य प्रचार में आ गए हैं जैसे –– तानपूरा, तबला, बाँसुरी, सिथेसाइज़र इत्यादि। सिथेसाइज़र तो एक ऐसा यान्त्रिक वाद्य है कि जिसमें हमारे हाथ से बजाए जाने वाले लगभग सभी वाद्य बज सकते हैं।

आज हमारे विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के संगीत शिक्षण में इन वाद्यों का पूर्ण रूप से समावेश हो चुका है। आज शिक्षण संस्थाओं में यान्त्रिक वाद्यों जैसे –– तानपूरा, तबला आदि का भरपूर प्रयोग किया जाता है। गायन–वादन के साथ स्वर और ताल के लिए इन वाद्यों का पूर्ण रूप से प्रयोग होता है। विद्यार्थियों के लिए तो ये यान्त्रिक वाद्य बहुत सहायक सिद्ध हो रहे हैं। विद्यार्थी इन वाद्यों को प्रयोग कहीं भी, किसी भी समय कर सकते हैं। यदि शिक्षक कक्षा में नही है तो विद्यार्थी इन वाद्यों के द्वारा अपने शास्त्रीय संगीत का अभ्यास इन वाद्यों के सहयोग से कर सकते हैं। जैसे विद्यार्थी अपने स्वर के अनुसार यान्त्रिक तानपूरे को स्वर पर व्यवस्थित करके उसके स्वराधार पर गायन कर सकता है। इसी प्रकार यान्त्रिक तबले में भी हर तरह के ताल का समावेश किया गया है इसी लिए इसे 'तालमाल' कहकर भी पुकारा जाता है, जो विद्यार्थियों तथा अन्य गायकों–वादकों के शास्त्रीय संगीत के साथ उपयुक्त ताल का वादन कर उन्हें ताल संगत में सहायक सिद्ध होता है।

इसी प्रकार अलग–अलग यान्त्रिक वाद्यों का प्रयोग बड़े–बड़े कार्यक्रमों में संगत के लिए तथा शास्त्रीय गायन के साथ भिन्न–भिन्न प्रकार के वाद्यों की संगत के रूप में किया जाने लगा है। कई स्थानों पर संगत के लिए वाद्यवृन्द के लिए भी एक ही यान्त्रिक वाद्य का प्रयोग होने लगा है क्योंकि इस एक वाद्य में अनेक वाद्यों की ध्वनि उत्पन्न की जा सकती है।

प्र0.3 यान्त्रिक वाद्यों का संगीत में क्या लाभ है ?

उ0. इन वाद्यों के प्रयोग का लाभ तो शास्त्रीय संगीत में हुआ ही है लेकिन इनका सबसे अधिक लाभ विद्यार्थियों को हुआ है। क्योंकि वे इन वाद्यों के साथ अपने शास्त्रीय संगीत का अभ्यास आसानी से कर लेते हैं। उन्हें वाद्य

मिलाने की आवश्यकता नही पड़ती जिससे उनका समय बचता है और वे आसानी से यान्त्रिक वाद्यों का प्रयोग करते हैं और इनका लाभ उठाते हैं। यहाँ तक की हमारे कई कलाकार भी इन वाद्यों का प्रयोग अपने शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमों में करने लगे हैं क्योंकि दूसरे वाद्य अधिक बढ़े तथा नाजुक होने के कारण इधर–उधर ले जाने में कठिनाई उत्पन्न करते हैं जबकि यान्त्रिक वाद्य लाने–ले जाने में सुविधाजनक होते हैं और इन्हें मिलाने के लिए समय भी नष्ट नही होता है।

ये वाद्य शास्त्रीय संगीत में अपना अत्यधिक स्थान बना चुके हैं। इसका कारण ये है कि ये यान्त्रिक वाद्य रखने में, इधर–उधर ले जाने में और सबसे अधिक आसानी से प्रयोग होने के कारण हमारे संगीत में अपना प्रमुख स्थान बनाते जा रहे हैं।

17.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. भारतीय संगीत का इतिहास, भगवत शरण शर्मा।
2. संगीत शिक्षा, श्री मति विजय अरोडा, ए.पी. पब्लिशर, बुक्स मारकेट, जालन्धर।
3. वर्तमान शास्त्रीय संगीत में यान्त्रिक वाद्यों की भूमिका, डा0 कीर्ति गर्ग, स्वर सिन्धु, ISSN 2348–9197, 2320 – 7175 (online) Issue 1, January – March] 2015.

17.9 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र01. यान्त्रिक वाद्यों की संगीत में क्या भूमिका है ?

प्र02. क्या हमारे शास्त्रीय संगीत में यान्त्रिक वाद्यों का प्रयोग सही है ? अपने विचार प्रकट कीजिए।

–:–:–:–:–:–:–:–

LESSON – 18

Notation System of Pt. V.N. Bhatkhande and Pt. V.D. Plusker

पं0 वी. एन. भातखण्डे और पं0 वी. डी. पलुस्कर की स्वरांकन (स्वरलिपि) प्रणाली

STRUCTURE :

18.1 भूमिका

18.2 उदेश्य

18.3 प्राचीनकाल में स्वरलिपि पद्धति विकसित न होने के कारण

18.4 संगीत शिक्षण की पद्धति

18.5 स्वरलिपि पद्धति के लाभ

18.6 स्वरलिपि पद्धति की उत्पत्ति

18.7 भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति

18.7.1 भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति के लाभ

18.8 विष्णु दिगम्बर स्वरलिपि पद्धति

18.8.1 विष्णु दिगम्बर स्वरलिपि पद्धति के चिन्ह

18.9 भातखण्डे तथा विष्णुदिगम्बर स्वरलिपि पद्धति में अन्तर

18.10 सारांश

18.11 शब्दकोष

18.12 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

18.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

18.14 महत्वपूर्ण प्रश्न

18.1 भूमिका :–

किसी गाने की कविता अथवा साजों पर बजाने की गत को स्वर और ताल के साथ जब लिखा जाता है, तब उसे स्वरलिपि कहते हैं। प्राचीनकाल में , भारत में लगभग 250 ई0 पूर्व अर्थात् पाणिनि के समय से पूर्व स्वरलिपि पद्धति विद्यमान थी, किन्तु तब यह स्वरलिपि पद्धति अपने शैशव काल में थी। उस समय तीव्र और कोमल स्वरों के भेद तथा ताल–मात्रा–सहित स्वरलिपि नही होती थी अपितु केवल स्वरों के नाम उनके प्रथम अक्षरों के साथ सरगम के रूप में दिए जाते थे। उनसे केवल इतना ही बोध होता था कि अमुक गायन में अमुक स्वर प्रयोग हुए हैं। तीव्र तथा कोमल स्वरों के चिन्ह न होने के कारण व ताल, मात्रा, मींड आदि के चिन्ह न होने के कारण उन स्वरलिपियों से संगीत विद्यार्थी लाभ उठाने में अस्मर्थ रहे।

य253ेवह253 संगीत में स्वरलिपि पद्धति की उत्पत्ति प्राचीन काल से ही मानी जाती है लेकिन उस समय की पद्धति में संगीत से सम्बन्धित सभी चीज़ों को दर्शाने की क्षमता नही थी अथवा पूरी तरह से संगीत पद्धति विकसित नही हुई थी।

18.2 उदेश्य :–

भारत में दो प्रकार की स्वरलिपि पद्धतियां प्रचार में हैं। य253ेवह253 भारतीय संगीत का आधार एक ही है लेकिन दोनों स्वरलिपि पद्धतियों में थोड़ा–बहुत अंतर पाया जाता है। हमारे संगीत में दो महान विभूतियों को बहुत आदर से याद किया जाता है। जिनमें से एक हैं पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर और दूसरे पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे जी। इन दोनों विभूतियों ने हमारे संगीत में स्वरलिपि पद्धति का निर्माण किया। इन दोनों की स्वरलिपि पद्धति आज हमारे संगीत में प्रयोग की जाती है। इन्हीं स्वरलिपि पद्धतियो के विषय में अध्ययन करना इस पाठ का उदेश्य है।

18.3 प्राचीन काल में स्वरलिपि पद्धति विकसित न होने के कारण :–

प्राचीन समय में स्वरलिपि पद्धति का विकास न होने के और भी कुछ कारण थे जो इस प्रकार हैं–

1. उस समय संगीत कला विशषतया क्रियात्मक रूप में थी अर्थात् गुरू–मुख से सुनकर ही विद्यार्थी शिक्षा गहण किया करते थे।
2. लेखन प्रणाली व मुद्रण सम्बन्धी सुविधाएं उस समय आजकल जैसी नहीं थीं।
3. रागों को मौखिक अर्थात् ज़ुबानी याद रखा जाता था।
4. संगीत कला गुरू से शिष्य को और शिष्य से उसके आगे शिष्यों को सिखाने या कण्ठस्थ कराने की प्रथा थी।

5. प्राचीन समय के उस्ताद अपनी कला को अपने पुत्र अथवा विश्वसनीय शिष्यों को भी लिखकर नही बताते थे, अपितु सामने बैठकर ही सिखाना पसंद करते थे।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 प्राचीनकाल में स्वरलिपि पद्धति के विकसित न होने के कोई तीन कारण बताइए।

18.4 संगीत शिक्षण की पद्धति :–

संगीत शिक्षा में दो पद्धतियाँ प्रमुख हैं। एक गुरू परम्परा पद्धति और दूसरी स्वरलिपि पद्धति। प्राचीनकाल से लेकर मध्यकाल तक प्रधानतया गुरू परम्परा शिक्षा प्रणाली प्रचलित थी। इस शिक्षा प्रणाली में गुरू के सान्निध्य में शिष्य उपस्थित होकर संगीत की शिक्षा ग्रहण करते थे। किन्तु मध्यकाल के उपरान्त आधुनिक काल में स्वरलिपि पद्धति के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था की गई है। स्वरलिपि का स्थान संगीत शिक्षण में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। स्वरलिपि के आधार पर संगीत की शिक्षा अधिक वैज्ञानिक हो गई है। आजकल संगीत का जो अत्यधिक प्रचार–प्रसार हो रहा है, उसका एकमात्र कारण है स्वर–लिपि–मूलक संगीत शिक्षा की व्यवस्था।

जिस समय स्वरलिपि का प्रचार नही था, उस समय गुरू शिष्यों को मौखिक रूप से संगीत की शिक्षा देता था। शिष्य उसे कण्ठस्थ करता था और लय व ताल के साथ गेय पदों को गाया करता था। किन्तु इस शिक्षा प्रणाली में संगीत का अध्ययन सुविधाजनक नही होता था। गुरू अपने शिष्यों को एक बार जो बतलाता था उसका अभ्यास करने में शिष्यों को अत्यधिक समय लगाना पड़ता था। संगीत सीखने के बाद शिष्य को रागों के विषय में पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाता था। वे केवल गायन और वादन का प्रदर्शन करते थे किन्तु उन्हें रागों का शास्त्रीय ज्ञान उतना नहीं हो पाता था जितना आधुनिक काल में विद्यार्थियों को होता है। आधुनिक काल में स्वरलिपि के द्वारा संगीत सीखने में बहुत बड़ी सुविधा हो गई है। इसके द्वारा संगीत शिक्षक कम से कम समय में और एक ही साथ अधिक छात्रों को संगीत शिक्षा भली प्रकार दे सकता है। संगीत शिक्षक कक्षा में सर्वप्रथम छात्रों को गीतों की स्वरलिपि लिख देता है। उसके पश्चात् वह स्थाई और अन्तरा की एक–एक पंक्ति के स्वरों तथा स्वरांकित शब्दों को क्रमशः बोलता जाता है। छात्र उसका अनुकरण करते हैं। सीखते समय छात्रों को इस बात का ज्ञान रहता है कि गीत के प्रत्येक शब्द में किन–किन स्वरों का प्रयोग होता है। उन्हें ये भी ज्ञात हो जाता है कि स्थाई और अन्तरा के प्रत्येक अवयव में किन–किन स्वरों पर कम और किन–किन स्वरों पर अधिक विश्राम किया जाता है। स्वरलिपि का आश्रय न लेने पर गायक जितनी बार उन गेय पदों की पंक्तियों को दुहराता है उतनी 254 ॆवह254 स्वरों के ठहराव में अन्तर उत्पन्न करता जाता है। इस विषमता से गायन और वादन में वैज्ञानिकता नही आने पाती। किन्तु स्वर लिपि के आधार पर जो संगीत सिखाया जाता 254ॆवह अत्यधिक वैज्ञानिक होता है।

सरगम, लक्षण, गीत, ध्रुपद, धमार, ख्याल, टपपा, ठुमरी और तराना आदि जितनी गीत–शैलियाँ प्रचलित हैं, उन सब की शिक्षा स्वरलिपि के आधार पर दी जाती है। स्वरलिपि से अध्ययन और अभ्यास में सबसे बड़ी सुविधा यह है कि किसी एक गीत शैली का सम्यग् अध्ययन और अभ्यास होने से उस शैली के अन्तर्गत जितने गीत होते हैं, उनके सीखने में विशेष श्रम और समय की अपेक्षा नहीं होती। छात्रों में गाने और बजाने की अभूतपूर्व क्षमता उत्पन्न होती है। स्वरलिपि के माध्यम से संस्थागत संगीत शिक्षा की सुव्यवस्था के साथ–साथ व्यक्तिगत संगीत–शिक्षा में विशेष लाभ पहुँचता है। अधिकांश छात्र अपने निवास स्थान पर स्थित होकर बिना किसी शिक्षक की सहायता लिए हुए संगीत कला का अध्ययन करते हैं। स्वरलिपि का क्षेत्र व्यापक और विस्तृत है। स्वर लिपि के अन्तर्गत शुद्ध और विकृत 12 स्वरों, तालों और मात्राओं के ज्ञान के लिए सांकेतिक चिन्ह निर्धारित किए गए हैं। उन चिन्हों के आधार पर संगीत के प्रारम्भिक अध्ययन के पश्चात् कोई भी छात्र सरलता और सुगमता पूर्वक संगीत का अध्ययन और अभ्यास कर सकता है। स्वरलिपि के माध्यम से संगीत की शिक्षा प्राप्त करने वाला छात्र दूसरों को सुविधा के साथ संगीत की शिक्षा दे सकता है। अपना विचार और भाव प्रकट करने के लिए जैसे भाषा की आवश्यकता होती है, वैसे ही विभिन्न गायन और वादन शैलियों की अभिव्यक्ति के लिए स्वरलिपि की अत्यन्त आवश्यकता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 संगीत शिक्षण की पद्धति पर प्रकाश डालिए।

18.5 स्वरलिपि पद्धति के लाभ :–

स्वरलिपि से सबसे बड़ा लाभ यह है कि छात्रों में किसी भी राग में गीतों को सम्बद्ध करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। इसके अतिरिक्त एक और महत्वपूर्ण लाभ यह है कि किसी महान संगीतज्ञ की बन्दिश का तत्तकाल ज्ञान होता है। स्वरलिपि का आश्रय न लेने से उस बन्दिश को सर्वप्रथम कण्ठस्थ करना पड़ता है। कण्ठस्थ करने के बाद उसका अभ्यास करना पड़ता है। इन समस्त प्रकियाओं में पर्याप्त श्रम तथा समय की अपेक्षा होती है। किन्तु जिस छात्र को स्वरलिपि का अच्छा ज्ञान होता 255ै वह तत्तकाल बन्दिश को सुन कर उसे स्वरबद्ध कर लेता है। बन्दिश को सुनकर उसे स्वरांकित करने के बाद छात्र कालान्तर में उसका अनुकरण और अभ्यास करके उस बन्दिश को उसी प्रकार प्रस्तुत कर सकता है। इस प्रकार कम से कम समय और श्रम में स्वरलिपि के द्वारा वह वस्तु प्राप्त हो जाती है जो महिने भर श्रम करने पर भी साध्य नही होती। बन्दिशों के अतिरिक्त महान संगीतज्ञों के तान लेने का ढंग अलग होता है। उनकी तानों में जो वैचित्रय पाया जाता 255ै वह प्रभावोत्पादक और आकर्षक होता है। ऐसी तानों का मौखिक रूप से याद करना साधारण कार्य नही है। तत्तकाल उन तानों का प्रभाव ह्रदय पर भले ही हो जाता है लेकिन बाद में उन्हें याद नहीं रखा जा सकता। अतः स्वरलिपि के द्वारा उनकी रोचक

और आकर्षक तानों को सुनकर लिपिबद्ध कर लेने से वह याद भी की जा सकती हैं और ताने सर्वकालिक हो जाती है। आगे चलकर किसी भी समय इन लिपिबद्ध तानों का प्रयोग किया जा सकता है।

गायन में बोलतानों का बहुत अधिक महत्व है। टपपा तथा ठुमरी आदि बहुत सी भाव प्रधान गीत शैलियाँ ऐसी हैं, जिनमें बोल–आलापों और बोल–तानों की बहुलता पाई जाती है। इन गीतों में बोलतानों और बोल–आलापों से ही रोचकता, आकर्षण और चमत्कार की अभिवृद्धि होती है। अतः बोल–आलापों और बोलतानों का अध्ययन और अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। इनका अध्ययन और अभ्यास एकमात्र स्वरलिपि के माध्यम से ही सम्भव है।

आधुनिक काल में संगीत का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक हो गया है। अनेक नए–नए रागों और तालों का निर्माण किया गया है। इसके अतिरिक्त संगीत के सिद्धान्त पक्ष और क्रियात्मक पक्ष पर बड़े–बड़े शोधकार्य किए जा रहे हैं। संगीत की उच्चतम कक्षाओं में अप्रचलित तथा मिश्र रागों का अध्ययन और अध्यापन किया जाता है। संगीत विद्या का भण्डार अनन्त है। कोई भी संगीतज्ञ इस बात का दावा नही कर सकता 256 वह सभी रागों के प्रदर्शन में पारंगत है। महान से महान संगीतज्ञों का कुछ सीमित रागों पर ही अधिकार होता है। किन्तु जब उन्हें किसी मिश्र या अप्रचलित रागों को सिखाने की आवश्यकता पड़ती है तो वे स्वरलिपि का सहारा लेते हैं। जिन रागों से संगीतज्ञ अपरिचित रहता है, उनको भी वह स्वरलिपि के द्वारा सीखा सकता है। क्रियात्मक तथा शास्त्रीय सिद्धांतों पर बड़े–बड़े संगीताचार्यों ने अनेक ग्रंथों की रचना की है। उन ग्रंथों में अनेक मिश्र तथा अप्रचलित रागों में निबद्ध ध्रुपद, धमार, ख्याल, टपपा, ठुमरी तथा तरानों का उल्लेख रहता है। गायक अथवा वादक इन ग्रंथों में दिए गए स्वरलिपि बद्ध रागों का सुगमता के साथ अध्ययन एवं अभ्यास कर संगीत शिक्षण–कला को अत्यन्त सुगम बना सकते हैं।

अतः स्वरलिपि पद्धति का अनुसरण न करने से गायक अथवा वादक उन्हीं रागों और गीतों को सीखाने में सक्षम हो सकता है जिनका अध्ययन व अभ्यास वह पहले कर चुका है लेकिन उन गीतों और रागों को सिखाने में वह अस्मर्थ रहता है जिनका उसे अभ्यास और जानकारी नही होती। किन्तु स्वरलिपि एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा उपरोक्त कठिनाइयों का समाधान तुरन्त हो जाता है।

विद्यार्थियों के लिए सुबोध और सरल स्वरलिपि का निर्माण आज से लगभग 90–100 वर्श पूर्व हुआ। वर्तमान समय में स्वरलिपि का बहुत अधिक महत्व है। भारत में लगभग पिछले कई वर्षों से स्वरलिपि का विकसित और वैज्ञानिक रूप सामने आया है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 स्वरलिपि पद्धति के लाभ पर प्रकाश डालिए।

18.6 स्वरलिपि पद्धति की उत्पत्ति :–

आधुनिक समय में दो स्वरलिपियाँ हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में मानी जाती हैं– विष्णुदिगम्बर स्वरलिपि पद्धति और भातखण्डे स्परलिपि पद्धति। इन पद्धतियों का नामकरण इनके जन्मदाताओं के नाम पर हुआ है।

उन्नसवीं शाताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में संगीत की बहुत बुरी दशा थी। एक ओर संगीत वेश्याओं के हाथ लग चुका था और दूसरी ओर रहे–सहे उस्ताद जल्दी किसी को संगीत की शिक्षा नही देते थे। संगीत धीरे–धीरे साधारण जनता से दूर होता जा रहा था। संगीत और साधारण जनता के बीच की इस दूरी को दूर करने का प्रण पं0 विष्णुदिगम्बर और पं0 विष्णुनारायण भातखण्डे ने लिया। इसके लिए पं0 विष्णु दिगम्बर ने देश–देश घूम कर संगीत का प्रचार किया और संगीत को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए एक स्वरलिपि पद्धति का आविष्कार किया।

दूसरी ओर भातखण्डे जी ने यह देखा कि उस्ताद लोग केवल एक बन्दिश भी बहुत मुश्किल से सिखाते थे। उन्होंने यह अनुमान लगाया कि अगर भविष्य में संगीत की ऐसी ही दशा रही तो इससे बड़ी हानि होगी। अतः उन्हें बन्दिशों को स्वरलिपि बद्ध कर उन्हें पुस्तक रूप प्रदान करने की तीव्र आवश्यकता अनुभव हुई। कहते भी हैं कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है। अतः उनके द्वारा एक नवीन स्वरांकन पद्धति अर्थात् स्वरलिपि पद्धति का जन्म हुआ।

भातखण्डे जी ने संगीत के उत्थान तथा विकास के लिए और संगीत को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए एक साधारण स्परलिपि पद्धति का आविष्कार किया। इन्होंने सैंकड़ों सीनों का भ्रमण किया और बड़े–बड़े गायकों का संगीत सुना और उसकी स्वरलिपि तैयार करके ''हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका'' के नाम से एक ग्रंथ माला प्रकाशित की जिसके छः भाग हैं और इसके द्वारा संगीत को लोगों में लोकप्रिय बनाया। जहाँ एक ओर पं0 विष्णुदिगम्बर जी को स्वरलिपि पद्धति का प्रथम अन्वेशक माना गया है वहीं दूसरी ओर यह कहना अनुचित न होगा कि आधुनिक युग में पं0 भातखण्डे भी संगीत के उत्थान तथा स्परलिपि तैयार करने वाले अद्वितीय विद्वान व संगीत शास्त्री हुए हैं। उन्होंने स्वरलिपि पद्धति का विकास करके एक महान कार्य किया। पं0 भातखण्डे द्वारा निर्मित स्वरलिपि पद्धति, पं0 विष्णुदिगम्बर द्वारा रचित स्वरलिपि पद्धति से अधिक सरल है। इस सरल स्वरलिपि पद्धति द्वारा संगीत शिक्षा और संगीत प्रचार दोनों को बहुत प्रोत्साहन मिला है। इस स्वरलिपि द्वारा पढ़े–लिखे आम लोगों में भी संगीत ज्ञान को बढ़ाने के लिए बहुत सहायता मिली। इस स्वरलिपि पद्धति से संगीत शिक्षा के लिए और अधिक आसानी हो गई। इस प्रकार पं0 भातखण्डे जी और पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने आधुनिक संगीत निर्माण में तथा विशेषकर स्वरलिपि पद्धति के निर्माण में महान कार्य किया है। जिससे कि संगीत जगत में इनका नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाएगा।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 4

प्र0.1 स्वरलिपि पद्धति की उत्पत्ति पर प्रकाश डालिए।

18.7 भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति :–

भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति, पं0 विष्णुदिगम्बर स्वरलिपि पद्धति से अधिक सरल और आसानी से समझने योग्य है। भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति में स्वरों, सप्तक के स्वरों, मात्राओं इत्यादि के अलग–अलग चिन्ह बताएं हैं। जिनसे संगीत सम्बन्धी विशेषताओं को समझने में सुगमता आ गई है। भातखण्डे स्वरलिपि में प्रयुक्त होने वाले चिन्ह निम्नलिखित हैं–––

1. मध्य सप्तक के लिए कोई चिन्ह प्रयोग नही होता।
2. मन्द्र सप्तक के लिए स्वर के नीचे बिन्दु लगाया जाता है। जैसे–– ''स़'' (स्वर के नीचे बिन्दु)
3. अति मंद्र सप्तक के लिए स्वर के नीचे दो बिन्दु लगाए जाते हैं। जैसे–– ''सा॒'' (स्वर के नीचे दो बिन्दु)
4. तार सप्तक के लिए स्वर के ऊपर बिन्दु लगाया जाता है। जैसे–– ''सां '' (स्वर के ऊपर बिन्दु)
5. अति तार सप्तक के लिए स्वर के ऊपर दो बिन्दु लगाए जाते हैं। जैसे–– ''सां ˙ '' (स्वर के ऊपर दो बिन्दु)
6. शुद्ध स्वर के लिए कोई चिन्ह प्रयोग नही किया जाता है। जैसे–– ''सा रे'' आदि। (कोई चिन्ह नहीं।)
7. कोमल स्वर के लिए स्वर के नीचे एक सीधी रेखा खींची जाती है। जैसे–– ''<u>रे</u> <u>ग</u> <u>ध</u> <u>नि</u>'' ।
8. तीव्र स्वर को दर्शाने के लिए स्वर के ऊपर एक खड़ी रेखा खींची जाती है। जैसे–– '' मे '' ।
9. भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति में गायन–वादन के अन्तर्गत यदि किसी स्वर को बढ़ाना होता है अर्थात् अधिक देर तक बोलना होता है तो स्वर के आगे एक सीधी रेखा खींची जाती हैं। जैसे–– '' सा– ग– – प– – –'' इत्यादि।
10. यदि स्वरलिपि में किसी शब्द या बोल के आगे अवग्रह का चिन्ह जितनी बार लगा हो उसे उतनी ही मात्राओं तक गाया अथवा बजाया जाता है। जैसे–– रा ऽ ऽ ऽ।
11. यदि स्वर एक–दूसरे से सटा कर लिखे गए हों तो इसका अर्थ है कि इन सभी स्वरों को एक मात्रा काल में गाया–बजाया जाएगा। जैसे– ''मधप''। इसी प्रकार यदि स्वरों को एक कोष्ठक अथवा ब्रैकिट में लिखा गया हो तो उन्हें भी एक मात्रा में ही गाया–बजाया जाएगा। जैसे–– <u>म ध प</u> ।

इसी प्रकार भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति में संगीत में प्रयोग की जाने वाली ताल पद्धति के भी कुछ चिन्ह निर्धारित किए गए हैं। जिनका अध्ययन करके गायक तथा वादक किसी भी बन्दिश की स्वरलिपि तैयार कर सकते हैं। साथ ही किसी गीत या बन्दिश की स्वरलिपि को पढ़ कर उसका गायन–वादन कर सकते हैं। भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति में ताल के लिए प्रयुक्त होने वाले चिन्ह इस प्रकार हैं–

1. सम के लिए ''काटे'' का चिन्ह प्रयोग किया जाता है। जैसे–– (×)

2. खाली मात्रा को दर्शाने के लिए शून्य का चिन्ह प्रयोग किया जाता है। जैसे–– (0)
3. ताल में ताली को दर्शाने के लिए गिनती का प्रयोग किया जाता है। जैसे–– (1 2 3 4)
4. एक ही मात्रा के स्वरों अथवा आपस में सटे हुए सभी स्वरों के बीच में लगा हुआ ''कौमा'' या ''अल्प विराम'' चिन्ह एक मात्रा को, आधी–आधी मात्रा के दो खण्डों में विभाजित करता है। जैसे–– (सारे, सा)
5. स्वरलिपि में जहाँ–जहाँ फूल के आकार का चिन्ह बना हो वहाँ गायन–वादन करते समय उतनी ही देर चुप रहना चाहिए। जैसे–– (∞ घर ∞ ∞ आ)

इसी प्रकार भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति में गायन–वादन में प्रयुक्त होने वाली चीज़ों जैसे मींड, गमक, कण इत्यादि दर्शाने के लिए भी कुछ चिन्ह तैयार किए गए हैं। जिनका प्रयोग करने से गायक–वादक अपने संगीत में मधुरता ला सकते हैं। ये चिन्ह इस प्रकार हैं––

1. जब स्वरों के ऊपर उल्टी ब्रैकिट अथवा अर्धचन्द्र बना हो तो उसे ''मींड'' कहते हैं। जैसे–– ध ग
2. इसी प्रकार यदि किसी स्वर के ऊपर दूसरा स्वर लिखा गया हो तो उसका अर्थ है कि उस ऊपर वाले स्वर को छूते हुए निचले स्वर पर आया जाए। ऐसे स्वरों को ''कण''स्वर कहते हैं। जैसे––
   ग ग
   प रे प
3. यदि कोई स्वर कोष्ठक में बंद हो तो उसका अर्थ यह है कि उस स्वर के आगे का स्वर, वह स्वर, उससे पहले का स्वर और फिर वही स्वर इकठ्ठे एक ही मात्रा में गाए–बजाए जाएं। जैसे (म) स्वर होंगे –– (प म ग म)
4. यदि स्वरों के ऊपर हिलती हुई रेखा का चिन्ह है तो उसका अर्थ है कि उन स्वरों को मधुरता व संतुलित ढंग से हिलाते हुए गाया–बजाया जाए। जैसे–– गगममपप । इसे जमजमा अथवा कम्पन्न या गमक लेना कहते हैं।

18.7.1 भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति के लाभ :–

1. संगीत सर्व साधारण के लिए सुलभ हो सका।
2. स्कूल, कालेजों और विश्वविद्यालयों में संगीत एक विषय बनाया जा सका।
3. स्वरलिपि पद्धति के कारण किसी बंदिश की मूल रचना में कई वर्षों बाद भी कोई भूल होने की सम्भावना नहीं रही।

4. संगीत में अन्य विषयों की तरह परीक्षा में मुद्रित प्रश्न पूछे जा सके और उनका उत्तर लिखना सम्भव हो सका।
5. स्वरलिपि द्वारा संगीत शिक्षण में सुविधा हो गई। पहले की तरह बंदिश को बार–बार रटाने की आवश्यकता नही रही। अब शिक्षक एक–दो बार बंदिश याद करा कर उसकी स्वरलिपि विद्यार्थी को दे देता है और विद्यार्थी उसे घर पर अभ्यास करके याद कर लेता है।

इस प्रकार भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति का हमारे संगीत में एक विशिष्ट स्थान है। यह पद्धति संगीत विद्यार्थियों, संगीत अध्यापकों के लिए ही नहीं अपितु संगीत से सम्बन्धित जनसाधारण के लिए भी उपयोगी है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 5

प्र0.1 भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति में ताल के लिए प्रयोग होने वाले चिन्हों का वर्णन कीजिए।

प्र0.2 भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति के लाभ बताइए।

18.8 विष्णुदिगम्बर स्वरलिपि पद्धति :–

इसी प्रकार पं0 विष्णुदिगम्बर पलुस्कर जी ने भी कई पुस्तकें रची और एक नई स्वरलिपि पद्धति का आविष्कार किया। पलुस्कर जी की स्वरलिपि पद्धति जो प्रारम्भ में उनके द्वारा शुरू की गई उसमें अब कुछ परिवर्तन हो गए हैं। यही कारण है कि विष्णु दिगम्बर जी की प्रारम्भिक मूल पुस्तकों में और आज की कुछ पुस्तकों में स्वरलिपि के चिन्हों में काफी अन्तर पाया जाता है।

18.8.1 विष्णु दिगम्बर स्वरलिपि पद्धति के चिन्ह :–

पं0 विष्णु दिगम्बर द्वारा रचित स्वरलिपि पद्धति के स्वरलिपि चिन्ह इस प्रकार हैं :–

1. जिन स्वरों के ऊपर–नीचे कोई चिन्ह नही होता, वे मध्य सप्तक के शुद्ध स्वर माने जाते हैं जैसे–– सा रे ग म प।
2. जिन स्वरों के नीचे हलन्त का निशान होता है, उन्हें कोमल या विकृत स्वर मानते हैं जैसे –– रे् ग् ध् नि्।
3. तीव्र या विकृत मध्यम को उल्टे हलन्त द्वारा इस प्रकार दिखाते हैं –– म/।
4. ऊपर बिंदी वाले स्वर मन्द्र सप्तक के माने जाते हैं जैसे –– पं धं निं।
5. जिन स्वरों के ऊपर खड़ी लकीर होती है, वे तार सप्तक के स्वर होते हैं जैसे –– सो रे गे मे।
6. स्वर पर मात्राओं के लिए इस प्रकार के चिन्ह बताए गए हैं :–

\+ चार मात्रा, जैसे सा (सा के नीचे जमा का चिन्ह)

\+

ऽ दो मात्रा, जैसे सा (सा के नीचे अवग्रह के समान चिन्ह)

ऽ

– एक मात्रा, जैसे सा (सा के नीचे एक सीधी रेखा)

0 आधी मात्रा, जैसे सा (सा के नीचे शून्य का चिन्ह)

0

1/4 मात्रा, जैसे प (प के नीचे एक अर्ध चन्द्र)

1/8 मात्रा, जैसे म (म के नीचे दो अर्ध चन्द्र)

7. स्वरों को लम्बा करने के लिए अवग्रह (ऽ) का प्रयोग करते हैं और गीत के अक्षरों के ठहराव को लम्बा करने के लिए बिन्दु (•) का प्रयोग करते हैं। जैसे –– ग ऽ ऽ प और रा • • म।
8. स्वरों के नीचे 1/3 या 1/6 लिखा हो तो उसका अर्थ है कि एक मात्रा में 3 या 6 स्वर बोले जाते हैं।
9. किसी स्वर के ऊपर यदि कोई दूसरा स्वर लिखा हो तो उसे कण स्वर के रूप में प्रयुक्त करते हैं।
10. ताल के सम के लिए १ का चिन्ह लगाते हैं, खाली के लिए + का चिन्ह प्रयोग किया जाता है तथा अन्य तालियों के लिए गिनती के चिन्ह प्रयोग किए जाते हैं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 6

प्र0.1 भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति में ताल के लिए प्रयोग होने वाले चिन्हों का वर्णन कीजिए।

18.9 भातखण्डे और विष्णु दिगम्बर स्वरलिपि पद्धति में अन्तर :–

जहाँ एक ओर पं0 विष्णु दिगम्बर जी को स्वरलिपि पद्धति का प्रथम अन्वेषक माना गया है वहीं दूसरी ओर यह कहना अनुचित न होगा कि आधुनिक युग में पं0 भातखण्डे भी संगीत के उत्थान तथा स्वरलिपि तैयार करने वाले अद्वितीय विद्वान व संगीत शास्त्री हुए हैं। उन्होंने स्वरलिपि पद्धति का विकास करके एक महान कार्य किया। पं0 भातखण्डे द्वारा निर्मित स्वरलिपि पद्धति, पं0 विष्णुदिगम्बर द्वारा रचित स्वरलिपि पद्धति से अधिक सरल है। इस सरल स्वरलिपि पद्धति द्वारा संगीत शिक्षा और संगीत प्रचार दोनों को बहुत प्रोत्साहन मिला है। इस स्वरलिपि द्वारा पढ़े–लिखे आम लोगों में भी संगीत ज्ञान को बढ़ाने के लिए बहुत सहायता मिली। इस स्वरलिपि पद्धति से संगीत शिक्षा के लिए और अधिक आसानी हो गई। इस प्रकार पं0 भातखण्डे जी तथा पं0 विष्णुदिगम्बर

जी ने आधुनिक संगीत निर्माण में तथा विशेषकर स्वरलिपि पद्धति के निर्माण में महान कार्य किया है। जिससे कि संगीत जगत में इनके नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखे जाएंगे।

भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति, पं0 विष्णुदिगम्बर स्वरलिपि पद्धति से अधिक सरल और आसानी से समझने योग्य है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 7

प्र0.1 भातखण्डे और विष्णुदिगम्बर स्वरलिपि पद्धति में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

18.10 सारांश :–

हमारे संगीत की दो महान विभूतियों पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर तथा पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे जी ने हमें स्वरलिपि प्रदान करके संगीत से सम्बन्धित लोगों को एक अमूल्य भेंट प्रदान की है। जिसके कारण आज संगीत की गायन–वादन प्रणाली को सीखना आसान हो गया है। यद्यपि इन स्वरलिपि पद्धतियों से गायक के गले की सभी विशेषताएं जैसे – अलंकार, राग सौंदर्य, श्रुति प्रयोग, गिटकरी, गमक तथा स्वर माधुर्य लिपिबद्ध करना सम्भव नहीं है, फिर भी वर्तमान स्वरलिपि पद्धतियों से जो लाभ और सहायता विद्यार्थियों एवं अन्य संगीत जिज्ञासुओं को मिली 262 वह कभी न भूलने वाली भेंट है।

18.11 शब्दकोष :–

1. शैशव – शिशु सम्बन्धी
2. कण्ठस्थ – याद किया हुआ
3. मुद्रित – मुद्रण किया हुआ या छापा हुआ

18.12 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 प्राचीनकाल में स्वरलिपि पद्धति के विकसित न होने के कोई तीन कारण बताइए।

उ0. **प्राचीन काल में स्वरलिपि पद्धति विकसित न होने के कारण :**

1. उस समय संगीत कला विशषतया क्रियात्मक रूप में थी अर्थात् गुरू–मुख से सुनकर ही विद्यार्थी शिक्षा गहण किया करते थे।
2. लेखन प्रणाली व मुद्रण सम्बन्धी सुविधाएं उस समय आजकल जैसी नहीं थीं।

3. रागों को मौखिक अर्थात् जुबानी याद रखा जाता था।

प्र0.2 संगीत शिक्षण की पद्धति पर प्रकाश डालिए।

उ0. **संगीत शिक्षण की पद्धति :–**

संगीत शिक्षा में दो पद्धतियाँ प्रमुख हैं। एक गुरू परम्परा पद्धति और दूसरी स्वरलिपि पद्धति। प्राचीनकाल से लेकर मध्यकाल तक प्रधानतया गुरू परम्परा शिक्षा प्रणाली प्रचलित थी। इस शिक्षा प्रणाली में गुरू के सान्निध्य में शिष्य उपस्थित होकर संगीत की शिक्षा ग्रहण करते थे। किन्तु मध्यकाल के उपरान्त आधुनिक काल में स्वरलिपि पद्धति के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था की गई है। स्वरलिपि का स्थान संगीत शिक्षण में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। स्वरलिपि के आधार पर संगीत की शिक्षा अधिक वैज्ञानिक हो गई है। आजकल संगीत का जो अत्यधिक प्रचार–प्रसार हो रहा है, उसका एकमात्र कारण है स्वर–लिपि–मूलक संगीत शिक्षा की व्यवस्था।

जिस समय स्वरलिपि का प्रचार नही था, उस समय गुरू शिष्यों को मौखिक रूप से संगीत की शिक्षा देता था। शिष्य उसे कण्ठस्थ करता था और लय व ताल के साथ गेय पदों को गाया करता था। किन्तु इस शिक्षा प्रणाली में संगीत का अध्ययन सुविधाजनक नही होता था। गुरू अपने शिष्यों को एक बार जो बतलाता था उसका अभ्यास करने में शिष्यों को अत्यधिक समय लगाना पड़ता था। संगीत सीखने के बाद शिष्य को रागों के विषय में पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाता था। वे केवल गायन और वादन का प्रदर्शन करते थे किन्तु उन्हें रागों का शास्त्रीय ज्ञान उतना नहीं हो पाता था जितना आधुनिक काल में विद्यार्थियों को होता है। आधुनिक काल में स्वरलिपि के द्वारा संगीत सीखने में बहुत बड़ी सुविधा हो गई है। इसके द्वारा संगीत शिक्षक कम से कम समय में और एक ही साथ अधिक छात्रों को संगीत शिक्षा भली प्रकार दे सकता है। संगीत शिक्षक कक्षा में सर्वप्रथम छात्रों को गीतों की स्वरलिपि लिख देता है। उसके पश्चात् वह स्थाई और अन्तरा की एक–एक पंक्ति के स्वरों तथा स्वरांकित शब्दों को क्रमशः बोलता जाता है। छात्र उसका अनुकरण करते हैं। सीखते समय छात्रों को इस बात का ज्ञान रहता है कि गीत के प्रत्येक शब्द में किन–किन स्वरों का प्रयोग होता है। उन्हें ये भी ज्ञात हो जाता है कि स्थाई और अन्तरा के प्रत्येक अवयव में किन–किन स्वरों पर कम और किन–किन स्वरों पर अधिक विश्राम किया जाता है। स्वरलिपि का आश्रय न लेने पर गायक जितनी बार उन गेय पदों की पंक्तियों को दुहराता है उतनी 263 वह263 स्वरों के ठहराव में अन्तर उत्पन्न करता जाता है। इस विषमता से गायन और वादन में वैज्ञानिकता नही आने पाती। किन्तु स्वर लिपि के आधार पर जो संगीत सिखाया जाता 263 वह अत्यधिक वैज्ञानिक होता है।

सरगम, लक्षण, गीत, ध्रुपद, धमार, ख्याल, टपपा, ठुमरी और तराना आदि जितनी गीत–शैलियाँ प्रचलित हैं, उन सब की शिक्षा स्वरलिपि के आधार पर दी जाती है। स्वरलिपि से अध्ययन और अभ्यास में सबसे बड़ी सुविधा यह है कि किसी एक गीत शैली का सम्यग् अध्ययन और अभ्यास होने से उस शैली के अन्तर्गत जितने गीत होते हैं, उनके सीखने में विशेष श्रम और समय की अपेक्षा नहीं होती। छात्रों में गाने और बजाने की अभूतपूर्व क्षमता उत्पन्न होती है। स्वरलिपि के माध्यम से संस्थागत संगीत शिक्षा की सुव्यवस्था के साथ–साथ व्यक्तिगत

संगीत–शिक्षा में विशेष लाभ पहुँचता है। अधिकांश छात्र अपने निवास स्थान पर स्थित होकर बिना किसी शिक्षक की सहायता लिए हुए संगीत कला का अध्ययन करते हैं। स्वरलिपि का क्षेत्र व्यापक और विस्तृत है। स्वर लिपि के अन्तर्गत शुद्ध और विकृत 12 स्वरों, तालों और मात्राओं के ज्ञान के लिए सांकेतिक चिन्ह निर्धारित किए गए हैं। उन चिन्हों के आधार पर संगीत के प्रारम्भिक अध्ययन के पश्चात् कोई भी छात्र सरलता और सुगमता पूर्वक संगीत का अध्ययन और अभ्यास कर सकता है। स्वरलिपि के माध्यम से संगीत की शिक्षा प्राप्त करने वाला छात्र दूसरों को सुविधा के साथ संगीत की शिक्षा दे सकता है। अपना विचार और भाव प्रकट करने के लिए जैसे भाषा की आवश्यकता होती है, वैसे ही विभिन्न गायन और वादन शैलियों की अभिव्यक्ति के लिए स्वरलिपि की अत्यन्त आवश्यकता है।

प्र0.3 स्वरलिपि पद्धति के लाभ पर प्रकाश डालिए।

उ0. **स्वरलिपि पद्धति के लाभ :–**

स्वरलिपि से सबसे बड़ा लाभ यह है कि छात्रों में किसी भी राग में गीतों को सम्बद्ध करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। इसके अतिरिक्त एक और महत्वपूर्ण लाभ यह है कि किसी महान संगीतज्ञ की बन्दिश का तत्तकाल ज्ञान होता है। स्वरलिपि का आश्रय न लेने से उस बन्दिश को सर्वप्रथम कण्ठस्थ करना पड़ता है। कण्ठस्थ करने के बाद उसका अभ्यास करना पड़ता है। इन समस्त प्रकियाओं में पर्याप्त श्रम तथा समय की अपेक्षा होती है। किन्तु जिस छात्र को स्वरलिपि का अच्छा ज्ञान होता 264ै वह तत्तकाल बन्दिश को सुन कर उसे स्वरबद्ध कर लेता है। बन्दिश को सुनकर उसे स्वरांकित करने के बाद छात्र कालान्तर में उसका अनुकरण और अभ्यास करके उस बन्दिश को उसी प्रकार प्रस्तुत कर सकता है। इस प्रकार कम से कम समय और श्रम में स्वरलिपि के द्वारा वह वस्तु प्राप्त हो जाती है जो महिने भर श्रम करने पर भी साध्य नही होती। बन्दिशों के अतिरिक्त महान संगीतज्ञों के तान लेने का ढंग अलग होता है। उनकी तानों में जो वैचित्रय पाया जाता 264ै वह प्रभावोत्पादक और आकर्षक होता है। ऐसी तानों का मौखिक रूप से याद करना साधारण कार्य नही है। तत्तकाल उन तानों का प्रभाव ह्रदय पर भले ही हो जाता है लेकिन बाद में उन्हें याद नहीं रखा जा सकता। अतः स्वरलिपि के द्वारा उनकी रोचक और आकर्षक तानों को सुनकर लिपिबद्ध कर लेने से वह याद भी की जा सकती हैं और ताने सर्वकालिक हो जाती है। आगे चलकर किसी भी समय इन लिपिबद्ध तानों का प्रयोग किया जा सकता है।

गायन में बोलतानों का बहुत अधिक महत्व है। टपपा तथा ठुमरी आदि बहुत सी भाव प्रधान गीत शैलियाँ ऐसी हैं, जिनमें बोल–आलापों और बोल–तानों की बहुलता पाई जाती है। इन गीतों में बोलतानों और बोल–आलापों से ही रोचकता, आकर्षण और चमत्कार की अभिवृद्धि होती है। अतः बोल–आलापों और बोलतानों का अध्ययन और अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। इनका अध्ययन और अभ्यास एकमात्र स्वरलिपि के माध्यम से ही सम्भव है।

आधुनिक काल में संगीत का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक हो गया है। अनेक नए–नए रागों और तालों का निर्माण किया गया है। इसके अतिरिक्त संगीत के सिद्धान्त पक्ष और क्रियात्मक पक्ष पर बड़े–बड़े शोधकार्य

किए जा रहे हैं। संगीत की उच्चतम कक्षाओं में अप्रचलित तथा मिश्र रागों का अध्ययन और अध्यापन किया जाता है। संगीत विद्या का भण्डार अनन्त है। कोई भी संगीतज्ञ इस बात का दावा नही कर सकता 265 वह सभी रागों के प्रदर्शन में पारंगत है। महान से महान संगीतज्ञों का कुछ सीमित रागों पर ही अधिकार होता है। किन्तु जब उन्हें किसी मिश्र या अप्रचलित रागों को सिखाने की आवश्यकता पड़ती है तो वे स्वरलिपि का सहारा लेते हैं। जिन रागों से संगीतज्ञ अपरिचित रहता है, उनको भी वह स्वरलिपि के द्वारा सीखा सकता है। क्रियात्मक तथा शास्त्रीय सिद्धांतों पर बड़े–बड़े संगीताचार्यों ने अनेक ग्रंथों की रचना की है। उन ग्रंथों में अनेक मिश्र तथा अप्रचलित रागों में निबद्ध ध्रुपद, धमार, ख्याल, टपपा, ठुमरी तथा तरानों का उल्लेख रहता है। गायक अथवा वादक इन ग्रंथों में दिए गए स्वरलिपि बद्ध रागों का सुगमता के साथ अध्ययन एवं अभ्यास कर संगीत शिक्षण–कला को अत्यन्त सुगम बना सकते हैं।

अतः स्वरलिपि पद्धति का अनुसरण न करने से गायक अथवा वादक उन्हीं रागों और गीतों को सीखाने में सक्षम हो सकता है जिनका अध्ययन व अभ्यास वह पहले कर चुका है लेकिन उन गीतों और रागों को सिखाने में वह अस्मर्थ रहता है जिनका उसे अभ्यास और जानकारी नही होती। किन्तु स्वरलिपि एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा उपरोक्त कठिनाइयों का समाधान तुरन्त हो जाता है।

विद्यार्थियों के लिए सुबोध और सरल स्वरलिपि का निर्माण आज से लगभग 90–100 वर्श पूर्व हुआ। वर्तमान समय में स्वरलिपि का बहुत अधिक महत्व है। भारत में लगभग पिछले कई वर्षों से स्वरलिपि का विकसित और वैज्ञानिक रूप सामने आया है।

प्र0.4 स्वरलिपि पद्धति की उत्पत्ति पर प्रकाश डालिए।

उ0. **स्वरलिपि पद्धति की उत्पत्ति :–**

आधुनिक समय में दो स्वरलिपियाँ हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में मानी जाती हैं– विष्णुदिगम्बर स्वरलिपि पद्धति और भातखण्डे स्परलिपि पद्धति। इन पद्धतियों का नामकरण इनके जन्मदाताओं के नाम पर हुआ है।

उन्नसवीं शाताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में संगीत की बहुत बुरी दशा थी। एक ओर संगीत वेश्याओं के हाथ लग चुका था और दूसरी ओर रहे–सहे उस्ताद जल्दी किसी को संगीत की शिक्षा नही देते थे। संगीत धीरे–धीरे साधारण जनता से दूर होता जा रहा था। संगीत और साधारण जनता के बीच की इस दूरी को दूर करने का प्रण पं0 विष्णुदिगम्बर और पं0 विष्णुनारायण भातखण्डे ने लिया। इसके लिए पं0 विष्णु दिगम्बर ने देश–देश घूम कर संगीत का प्रचार किया और संगीत को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए एक स्वरलिपि पद्धति का आविष्कार किया।

दूसरी ओर भातखण्डे जी ने यह देखा कि उस्ताद लोग केवल एक बन्दिश भी बहुत मुश्किल से सिखाते थे। उन्होंने यह अनुमान लगाया कि अगर भविष्य में संगीत की ऐसी ही दशा रही तो इससे बड़ी हानि होगी। अतः उन्हें बन्दिशों को स्वरलिपि बद्ध कर उन्हें पुस्तक रूप प्रदान करने की तीव्र आवश्यकता अनुभव हुई। कहते

भी हैं कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है। अतः उनके द्वारा एक नवीन स्वरांकन पद्धति अर्थात् स्वरलिपि पद्धति का जन्म हुआ।

भातखण्डे जी ने संगीत के उत्थान तथा विकास के लिए और संगीत को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए एक साधारण स्परलिपि पद्धति का आविष्कार किया। इन्होंने सैंकड़ों सीनों का भ्रमण किया और बड़े–बड़े गायकों का संगीत सुना और उसकी स्वरलिपि तैयार करके ''हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका'' के नाम से एक ग्रंथ माला प्रकाशित की जिसके छः भाग हैं और इसके द्वारा संगीत को लोगों में लोकप्रिय बनाया। जहाँ एक ओर पं0 विष्णुदिगम्बर जी को स्वरलिपि पद्धति का प्रथम अन्वेशक माना गया है वहीं दूसरी ओर यह कहना अनुचित न होगा कि आधुनिक युग में पं0 भातखण्डे भी संगीत के उत्थान तथा स्परलिपि तैयार करने वाले अद्वितीय विद्वान व संगीत शास्त्री हुए हैं। उन्होंने स्वरलिपि पद्धति का विकास करके एक महान कार्य किया। पं0 भातखण्डे द्वारा निर्मित स्वरलिपि पद्धति, पं0 विष्णुदिगम्बर द्वारा रचित स्वरलिपि पद्धति से अधिक सरल है। इस सरल स्वरलिपि पद्धति द्वारा संगीत शिक्षा और संगीत प्रचार दोनों को बहुत प्रोत्साहन मिला है। इस स्वरलिपि द्वारा पढ़े–लिखे आम लोगों में भी संगीत ज्ञान को बढ़ाने के लिए बहुत सहायता मिली। इस स्वरलिपि पद्धति से संगीत शिक्षा के लिए और अधिक आसानी हो गई। इस प्रकार पं0 भातखण्डे जी और पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने आधुनिक संगीत निर्माण में तथा विशेषकर स्वरलिपि पद्धति के निर्माण में महान कार्य किया है। जिससे कि संगीत जगत में इनका नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाएगा।

प्र0.5 भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति में ताल के लिए प्रयोग होने वाले चिन्हों का वर्णन कीजिए।

उ0. भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति में ताल के लिए प्रयुक्त होने वाले चिन्ह इस प्रकार हैं–

1. सम के लिए ''काटे'' का चिन्ह प्रयोग किया जाता है। जैसे–– (×)
2. खाली मात्रा को दर्शाने के लिए शून्य का चिन्ह प्रयोग किया जाता है। जैसे–– (0)
3. ताल में ताली को दर्शाने के लिए गिनती का प्रयोग किया जाता है। जैसे–– (1 2 3 4)
4. एक ही मात्रा के स्वरों अथवा आपस में सटे हुए सभी स्वरों के बीच में लगा हुआ ''कौमा'' या ''अल्प विराम'' चिन्ह एक मात्रा को, आधी–आधी मात्रा के दो खण्डों में विभाजित करता है। जैसे–– (सारे, सा)
5. स्वरलिपि में जहाँ–जहाँ फूल के आकार का चिन्ह बना हो वहाँ गायन–वादन करते समय उतनी ही देर चुप रहना चाहिए। जैसे–– (∞ घर ∞ ∞ आ)

प्र0.6 भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति के लाभ बताइए।

उ0. **भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति के लाभ :–**

1. संगीत सर्व साधारण के लिए सुलभ हो सका।
2. स्कूल, कालेजों और विश्वविद्यालयों में संगीत एक विषय बनाया जा सका।

3. स्वरलिपि पद्धति के कारण किसी बंदिश की मूल रचना में कई वर्षों बाद भी कोई भूल होने की सम्भावना नहीं रही।
4. संगीत में अन्य विषयों की तरह परीक्षा में मुद्रित प्रश्न पूछे जा सके और उनका उत्तर लिखना सम्भव हो सका।
5. स्वरलिपि द्वारा संगीत शिक्षण में सुविधा हो गई। पहले की तरह बंदिश को बार–बार रटाने की आवश्यकता नही रही। अब शिक्षक एक–दो बार बंदिश याद करा कर उसकी स्वरलिपि विद्यार्थी को दे देता है और विद्यार्थी उसे घर पर अभ्यास करके याद कर लेता है।

इस प्रकार भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति का हमारे संगीत में एक विशिष्ट स्थान है। यह पद्धति संगीत विद्यार्थियों, संगीत अध्यापकों के लिए ही नहीं अपितु संगीत से सम्बन्धित जनसाधारण के लिए भी उपयोगी है।

प्र0.7 पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर की स्वरलिपि पद्धति का वर्णन कीजिए।

उ0. **विष्णुदिगम्बर स्वरलिपि पद्धति :–**

इसी प्रकार पं0 विष्णुदिगम्बर पलुस्कर जी ने भी कई पुस्तकें रची और एक नई स्वरलिपि पद्धति का आविष्कार किया। पलुस्कर जी की स्वरलिपि पद्धति जो प्रारम्भ में उनके द्वारा शुरू की गई उसमें अब कुछ परिवर्तन हो गए हैं। यही कारण है कि विष्णु दिगम्बर जी की प्रारम्भिक मूल पुस्तकों में और आज की कुछ पुस्तकों में स्वरलिपि के चिन्हों में काफी अन्तर पाया जाता है।

विष्णु दिगम्बर स्वरलिपि पद्धति के चिन्ह :–

पं0 विष्णु दिगम्बर द्वारा रचित स्वरलिपि पद्धति के स्वरलिपि चिन्ह इस प्रकार हैं :–

1. जिन स्वरों के ऊपर–नीचे कोई चिन्ह नही होता, वे मध्य सप्तक के शुद्ध स्वर माने जाते हैं जैसे–– सा रे ग म प।
2. जिन स्वरों के नीचे हलन्त का निशान होता है, उन्हें कोमल या विकृत स्वर मानते हैं जैसे –– रे् ग् ध् नि्।
3. तीव्र या विकृत मध्यम को उल्टे हलन्त द्वारा इस प्रकार दिखाते हैं –– म/।
4. ऊपर बिंदी वाले स्वर मन्द्र सप्तक के माने जाते हैं जैसे –– पं धं निं।
5. जिन स्वरों के ऊपर खड़ी लकीर होती है, वे तार सप्तक के स्वर होते हैं जैसे –– सा रे गे मे।
6. स्वर पर मात्राओं के लिए इस प्रकार के चिन्ह बताए गए हैं :–

   + चार मात्रा, जैसे सा (सा के नीचे जमा का चिन्ह)

   +

ऽ दो मात्रा, जैसे सा (सा के नीचे अवग्रह के समान चिन्ह)

ऽ

– एक मात्रा, जैसे सा (सा के नीचे एक सीधी रेखा)

0 आधी मात्रा, जैसे सा (सा के नीचे शून्य का चिन्ह)

0

1/4 मात्रा, जैसे प (प के नीचे एक अर्ध चन्द्र)

1/8 मात्रा, जैसे म (म के नीचे दो अर्ध चन्द्र)

7. स्वरों को लम्बा करने के लिए अवग्रह (ऽ) का प्रयोग करते हैं और गीत के अक्षरों के ठहराव को लम्बा करने के लिए बिन्दु (•) का प्रयोग करते हैं। जैसे –– ग ऽ ऽ ᑊ और रा • • म।
8. स्वरों के नीचे 1/3 या 1/6 लिखा हो तो उसका अर्थ है कि एक मात्रा में 3 या 6 स्वर बोले जाते हैं।
9. किसी स्वर के ऊपर यदि कोई दूसरा स्वर लिखा हो तो उसे कण स्वर के रूप में प्रयुक्त करते हैं।
10. ताल के सम के लिए १ का चिन्ह लगाते हैं, खाली के लिए + का चिन्ह प्रयोग किया जाता है तथा अन्य तालियों के लिए गिनती के चिन्ह प्रयोग किए जाते हैं।

प्र0.8 पं0 विष्णु दिगम्बर तथा पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उ0. **भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति और विष्णु दिगम्बर स्वरलिपि पद्धति में अन्तर :–**

जहाँ एक ओर पं0 विष्णु दिगम्बर जी को स्वरलिपि पद्धति का प्रथम अन्वेषक माना गया है वहीं दूसरी ओर यह कहना अनुचित न होगा कि आधुनिक युग में पं0 भातखण्डे भी संगीत के उत्थान तथा स्वरलिपि तैयार करने वाले अद्वितीय विद्वान व संगीत शास्त्री हुए हैं। उन्होंने स्वरलिपि पद्धति का विकास करके एक महान कार्य किया। पं0 भातखण्डे द्वारा निर्मित स्वरलिपि पद्धति, पं0 विष्णुदिगम्बर द्वारा रचित स्वरलिपि पद्धति से अधिक सरल है। इस सरल स्वरलिपि पद्धति द्वारा संगीत शिक्षा और संगीत प्रचार दोनों को बहुत प्रोत्साहन मिला है। इस स्वरलिपि द्वारा पढ़े–लिखे आम लोगों में भी संगीत ज्ञान को बढ़ाने के लिए बहुत सहायता मिली। इस स्वरलिपि पद्धति से संगीत शिक्षा के लिए और अधिक आसानी हो गई। इस प्रकार पं0 भातखण्डे जी तथा पं0 विष्णुदिगम्बर जी ने आधुनिक संगीत निर्माण में तथा विशेषकर स्वरलिपि पद्धति के निर्माण में महान कार्य किया है। जिससे कि संगीत जगत में इनके नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखे जाएंगे।

भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति, पं0 विष्णुदिगम्बर स्वरलिपि पद्धति से अधिक सरल और आसानी से समझने योग्य है।

18.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. संगीत निबन्ध माला।
2. संगीत शिक्षा, श्री मति विजय अरोड़ा, ए.पी. पब्लिशर, जालन्धर।
3. संगीत युगे–युगे, तजम्मुल खान संगीतज्ञ, शकीला प्रकाशन, लखनऊ, 1988।
4. भारतीय संगीत का इतिहास, भगवत शरण शर्मा।

18.14 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति का वर्णन कीजिए।

प्र0.2 विष्णु दिगम्बर स्वरलिपि पद्धति से आप क्या समझते हो ?

प्र0.3 स्वरलिपि का संगीत में क्या महत्व अथवा लाभ है ?

–:–:–:–:–:–:–:–

LESSON – 19

Relationship of Music with Fine Arts

ललित कलाओं से संगीत का सम्बन्ध

STRUCTURE :

19.1 भूमिका

19.2 उदेश्य

19.3 कला का अर्थ

19.4 कला के प्रकार

19.4.1 उपयोगित कला

19.4.2 ललित कला

19.5 संगीत का अन्य ललित कलाओं से सम्बन्ध

19.5.1 चित्रकला

19.5.2 काव्य कला

19.5.3 मूर्ति कला

19.5.4 वास्तु कला

19.6 सारांश

19.7 शब्दकोष

19.8 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

19.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

19.10 महत्वपूर्ण प्रश्न

19.1 भूमिका :–

मनुष्य जीवन के साथ जिस प्रकार संगीत कला जुड़ी है उसी प्रकार हर कला का भी मनुष्य जीवन में बड़ा महत्व है। संस्कृत वाङ्मय में पाँच प्रकार की ललित कलाओं का वर्णन मिलता है। जैसे – संगीत कला, काव्य कला, चित्र कला, मूर्ती कला तथा वास्तु कला। इन सभी प्रकार की ललित कलाओं में संगीत कला को सर्वश्रेष्ठ कला माना जाता है क्योंकि संगीत कला मधुरता, सरलता, सौन्दर्यात्मकता, लय तथा लालित्य से परिपूर्ण है। इतना ही नही संगीत कला को मोक्ष का साधन भी माना जाता है। संगीत का इन सभी ललित कलाओं में सर्वश्रेष्ठ स्थान तो माना ही जाता है साथ ही इन सभी कलाओं से संगीत कला का घनिष्ट सम्बन्ध भी माना जाता है।

19.2 उदेश्य :–

संगीत को सभी ललित कलाओं में सर्वश्रेष्ठ कला माना जाता है। कला क्या है तथा ललित कला क्या है और ललित कलाओं से संगीत का क्या सम्बन्ध है, इसके विषय में जानकारी प्राप्त करना ही इस पाठ काउदेश्य है।

19.3 कला का अर्थ :–

कला को अन्ग्रेंज़ी भाषा में '' आर्ट '' कहा जाता है। कला का अर्थ कर्म की कुशलता से भी लगाया जाता है। कला वह जादू है जिसके माध्यम से मानव की इन्द्रियाँ और उसका मस्तिष्क, सौन्दर्य के रहस्य को खोजता है। प्रो0 रानाडे के अनुसार, '' कला वास्तविकता को स्वयं में खोजती है।'' पाश्चात्य विद्वान कला को केवल कला के लिए मानते हैं, जबकि पूर्व के विद्वान कला को केवल आत्मा के लिए मानते हैं। कला शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'कम' तथा 'ला' शब्द से मानी जाती है। जिसमें 'कम' का अर्थ है 'आनन्द' तथा 'ला' का अर्थ है 'लेना' अर्थात् जो आनन्द लाती हो अथवा वह कला जिससे हम आनन्द लेते हैं। इस प्रकार कला की उत्पत्ति आनन्द भावना से होती है और आनन्द हमें उससे प्राप्त होता है जो सत्य हो, सुन्दर हो, मंगलमय हो। अतः विभिन्न कर्मों में कुशलता प्राप्त करना ही 'कला' है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 कला से आप क्या समझते हैं ?

19.4 कला के प्रकार :–

कला को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है — उपयोगित कला और ललित कला।

19.4.1 उपयोगित कला :–

इस प्रकार की कलाओं में उपयोगिता को अधिक महत्व दिया जाता है। इसमें भी सौन्दर्य बोध तो रहता ही है परन्तु वह गौण रूप में ही रहता है। ये वे कलाएं होती हैं जिनका प्रयोग हम अपने पूरे जीवन में किसी न किसी रूप में उपयोग करते रहते हैं।

19.4.2 ललित कला :–

जो कला चित का रंजन करे उसे ललित कला कहते हैं। ललित कला को 'चारू' नाम से भी जाना जाता है। चारू अर्थात् सुन्दर। जिस कला से लौकिक तथा अलौकिक दोनों आनन्द प्राप्त होते हैं उसे "ललित कला" कहते हैं। लौकिक का अर्थ है – सांसारिक तथा अलौकिक का अर्थ है – आध्यात्मिक। संगीत कला, साहित्यकला, वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला आदि ऐसी ललित कलाएं हैं जिनमें भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों सुखों को प्रदान करने की क्षमता होती है।

यूँ तो सभी ललित कलाओं में संगीत को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है लेकिन सभी ललित कलाएं मानव जीवन का अभिन्न अंग है। संगीत एवं अन्य ललित कलाओं में इतना आकर्षण है कि इसके सामने संसार की बड़ी से बड़ी वस्तु फीकी पड़ जाती है। सांसारिक विषयों से जो सुख प्राप्त होता है उससे कहीं अधिक सुख संगीत एवं अन्य ललित कलाओं से मिलता है। अतः प्रत्येक दृष्टिकोण से संगीत एवं अन्य ललित कलाओं को श्रेयस्कर माना जाता है।

इस संसार में समस्त चेतन प्राणी विषयों के आनन्द के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। इन विषयों के उपलब्ध न होने पर एक–दूसरे में संघर्ष होता है। वे इन विषयों के पीछे इतने पड़ जाते हैं कि उन्हें नैतिक या अनैतिक किसी भी प्रकार से प्राप्त करना चाहते हैं। जिससे देश में अनैतिक और अधर्म फेल जाता है। देश और समाज का ह्रास हो जाता है। इन संघर्षों को रोकने के लिए विषयों से अलग होना आवश्यक है। संगीत एवं ललित कला ही ऐसी कलाएं हैं जो मनुष्य को इन सांसारिक विषयों से अलग करती है। प्रायः सभी ललित कलाओं का उदेश्य देश और समाज का सृजन करना है। संगीत एवं ललित कलाओं के द्वारा देश के नैतिक उत्थान में विशेष सहायता मिलती है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 कला के कितने प्रकार हैं ? ललित कला से आप क्या समझते हैं।

19.5 संगीत का अन्य ललित कलाओं से सम्बन्ध :–

जैसा कि हम जानते हैं कि ललित कला के अन्तर्गत् हमारी अलग–अलग कलाएं आती हैं जैसे संगीत कला, चित्रकला, काव्य कला, मूर्ति कला, वास्तु कला आदि। इनमें से चित्र कला, मूर्ति कला, वास्तु कला को दृष्यकला का नाम दिया गया है जबकि संगीत कला और काव्य कला को श्रव्यकला के नाम से पुकारा जाता है। यूँ तो सभी कलाओं का अपना–अपना एक अलग सीन हैं लेकिन फिर भी इन सभी कलाओं में संगीत कला को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इन सभी कलाओं से संगीत का कहीं न कहीं कुछ न कुछ सम्बन्ध रहता है। संगीत की अन्य कलाओं से सम्बन्ध की व्याख्या इस प्रकार है –––

19.5.1 चित्रकला :–

चित्रकला में कलाकार रंग तथा ब्रश या तुलिका के माध्यम से विभिन्न प्रकार के चित्रों का निर्माण करता है। चित्रकला में हमें अलौकिक सौंदर्य के दर्शन होते हैं। इसमें चित्रकार अपने मनोगत भावों को चित्र के द्वारा प्रदर्शित करता है। उसी प्रकार संगीतकार भी अपने संगीत के माध्यम से अपने मनोगत भावों को प्रकट करता है। जिस प्रकार चित्रकार किसी चित्र को बनाते समय यह सोचता है कि उसे किसी चित्र को सुन्दर बनाने तथा सजीव करने के लिए किस प्रकार का ब्रश या तुलिका प्रयोग करनी है, किन–किन रंगों का प्रयोग करना है, ठीक उसी प्रकार संगीतकार को भी यह ध्यान रखना पड़ता है कि किसी भी राग का चित्र प्रस्तुत करते समय उसकी संयोजना किस प्रकार की जाए कि जिससे राग का वास्तविक रूप श्रोताओं के समक्ष आ सके। इस प्रकार संगीत का चित्रकला से और भी अधिक समीप का सम्बन्ध है जिसके कारण ये दोनों कलाएं एक–दूसरे की पूरक लगती हैं क्योंकि संगीत में जो राग ध्यानों की कल्पना की गई है और उन्हें गायक और वादक स्वर, लय व ताल के माध्यम से गा–बजा कर उनका मूर्त रूप प्रस्तुत करते हैं ठीक उसी प्रकार चित्रकारों ने इन राग ध्यानों को रंगो व तुलिका के माध्यम से सजीव किया है। दूसरी ओर चित्रकला के माध्यम से हमें प्राचीन चित्रों से प्राचीन संगीत, प्राचीन वाद्यों उनके आकार–प्रकार की जानकारी भी उपलब्ध होती है। हम यह कह सकते हैं कि संगीत में चित्रकला का एक विशेष सीन है। चित्रकला में कलाकार अपने मनोगत भावों एवं जीवन की अनुभूतियों को साकार एवं सजीव बना देता है। जो कार्य चित्र कला का है वही कार्य संगीत कला का भी है। चित्रकार तथा संगीतकार दोनों ही भावों का चित्र खींचते हैं। जिस प्रकार चित्रकार किसी वस्तु या मनुष्य को चित्रकला के द्वारा दर्शाता है उसी प्रकार संगीतकार जीवन के उत्थान–पतन तथा हर्ष–विषाद आदि संघर्षों का दृश्य स्वर, लय और ताल के सहयोग से चित्रित करता है। यही कारण है कि संगीत कला तथा चित्रकला में निकट का सम्बन्ध माना जाता है।

19.5.2 काव्यकला :–

ललित कलाओं में काव्य कला एक श्रव्य कला मानी जाती है। यह कला भी मनुष्य के मनोगत भावों को उजागर करती है और मनुष्य को अलौकिक आनन्द प्रदान करती है। इस कला का भी संगीत से घनिष्ट सम्बन्ध

है क्योंकि काव्य कला संगीत के द्वारा अधिक परिभाषित होती है। जिस प्रकार काव्य के बिना संगीत का अस्तित्व अधूरा लगता है उसी प्रकार काव्य में से यदि संगीत को निकाल दिया जाए तो काव्य फीका लगता है। काव्य का मूल तत्व छंद है जो कि संगीत का भी एक आवश्यक तत्व है। इस प्रकार संगीत कला और काव्य कला का भी आपस में एक घनिष्ठ सम्बन्ध है।

19.5.3 मूर्ति कला :–

मूर्तिकला का भी संगीत से निकट का सम्बन्ध है। इस कला से हमें इतिहास व वर्तमान की जानकारी तो प्राप्त होती ही है साथ ही कभी –कभी भविष्य की कुछ झलक भी दिखाई देती है। फिर वह जानकारी इतिहास की हो, रहन–सहन की, खान–पान की या फिर संगीत की ही क्यों न हो, मूर्ति कला हमें इन सब से अवगत करवाती है। संगीत से मूर्ति कला का सम्बन्ध हमें हर काल के संगीत की जानकारी उपलब्ध करवाता है। जो जानकारी हमारे संगीत के विकास की कहानी भी बताता है और हमारे विकास के मार्ग को और समृद्ध करता है। बहुत से प्राचीन मन्दिरों, महलों, भवनों आदि में अनेक प्राचीनतम् भित्ति चित्र एवं मूर्तियाँ पाई जाती हैं जो कि संगीत से सम्बन्धित मूर्तियाँ व भित्ति चित्र हैं। जैसे कि नृत्य करती मूर्तियां, गायन–वादन करती मुद्राओं की मूर्तियां तथा ऐसी मूर्तियां जिनमें विभिन्न वाद्यों को बजाते हुए लोग दिखाए गए हैं। इनसे हमें प्राचीन समय के संगीत की जानकारी भी उपलब्ध होती है कि उस समय कैसा नृत्य था, कैसे वाद्य थे, क्या उनका आकार–प्रकार था इत्यादि। इस प्रकार संगीत कला और मूर्ति कला भी एक–दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं।

19.5.4 वास्तु कला :–

वास्तु कला के अन्तर्गत् भवन तथा मन्दिर आदि निर्माण आता है। किसी भी भवन को देखने मात्र से उसके निर्माता तथा उसमें रहने वाले मनुष्यों की मनोवृतियों का पता चलता है। प्रत्येक भवन या मन्दिर का सौन्दर्य भिन्न होता है तथा उसके प्रति मानव का आकर्षण भी भिन्न–भिन्न रहता है। वास्तुकला के अन्तर्गत् जिस प्रकार एक भवन निर्माता को दो चीज़ों की आवश्यकता होती है। एक सामग्री, जिसके द्वारा उसने अपने भवन का निर्माण करना है तथा दूसरे उसके विचार, जिनके आधार पर उसे भवन तैयार करना है। हो सकता है कि उसके विचारों तथा अन्य भवन निर्माताओं के विचारों में भिन्नता हो परन्तु भवन निर्माण सम्बन्धी जो मूल सिद्यांत हैं उसका पालन तो करना ही पड़ेगा, अन्यथा भवन सही ढंग से नही बनेगा और सुरक्षित भी नहीं होगा। इसी प्रकार एक संगीतकार को संगीतरूपी भवन का निर्माण करने के लिए दो वस्तुओं की अति आवश्यकता होती है। सामग्री के रूप में उसे स्वरों का सहारा लेना पड़ता है तथा संगीत रचना के नियम उसके वे मूल सिद्यांत हैं जिनके द्वारा उसे अपने संगीत रूपी भवन का निर्माण करना होता है। जिस प्रकार ईंट, बालू या रेत इत्यादि को भवन नही कहा जा सकता उसी प्रकार केवल स्वरों मात्र से ही संगीत नही बन सकता। संगीत के लिए स्वरों का किसी क्रम या लय में रहना आवश्यक है जिसके लिए हमें कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है जो कि हमारे लिए वह संगीत रचना के सिद्यांत बन जाते हैं। इस प्रकार वास्तु कला का भी किसी न किसी रूप में संगीत से सम्बन्ध पाया जाता है।

अतः हम यह कह सकते हैं कि संगीत कला का सभी ललित कलाओं से किसी न किसी रूप में सम्बन्ध पाया जाता है और ये सभी कलाएं कहीं न कहीं एक–दूसरे की पूरक हैं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 चित्र कला से संगीत का क्या सम्बन्ध है ? वर्णन कीजिए।

प्र0.2 काव्य कला से संगीत का सम्बन्ध बताइए।

19.6 सारांश :–

सभी ललित कलाओं का मुख्य प्रयोजन आनन्द और सुख प्रदान करना है। य275 ंतो सभी कलाओं का अपना एक अलग स्थान है लेकिन इन सभी में संगीत कला को एक उच्च स्थान दिया गया है। इसका कारण यह भी है कि अन्य सभी कलाओं को समझने के लिए बुद्धि का प्रयोग करना पड़ता है तब कहीं जाकर वह समझ में आती हैं जबकि संगीत एक ऐसी ललित कला है जिसे कोई भी व्यक्ति बिना समझे भी आनन्द प्राप्त कर सकता है। संगीत एक ऐसी कला है जिसका कही न कही हर ललित कला से किसी न किसी रूप में सम्बन्ध पाया जाता है। यही सम्बन्ध संगीत को अन्य ललित कलाओं से उच्च स्थान प्रदान करता है।

19.7 शब्दकोष :–

1. चित – मन
2. गौण – जो प्रधान या मुख्य न हो
3. श्रव्य कला – जिस कला को सुना जा सके
4. दृष्य कला – देखी जाने वाली कला
5. तुलिका – तिनका
6. मनोगत – मन में आया हुआ
7. हर्ष–विषाद – खुशी एवं दुःख
8. उजागर – प्रकट करना
9. घनिष्ट – समीप या अभिन्न
10. अवगत – जाना हुआ
11. मनोवृति – अर्न्तदशा

19.8 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 कला से आप क्या समझते हैं ?

उ0. कला को अन्ग्रेंज़ी भाषा में '' आर्ट '' कहा जाता है। कला का अर्थ कर्म की कुशलता से भी लगाया जाता है। कला वह जादू है जिसके माध्यम से मानव की इन्द्रियाँ और उसका मस्तिष्क, सौन्दर्य के रहस्य को खोजता है। प्रो0 रानाडे के अनुसार, '' कला वास्तविकता को स्वयं में खोजती है।'' पाश्चात्य विद्वान कला को केवल कला के लिए मानते हैं, जबकि पूर्व के विद्वान कला को केवल आत्मा के लिए मानते हैं। कला शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'कम' तथा 'ला' शब्द से मानी जाती है। जिसमें 'कम' का अर्थ है 'आनन्द' तथा 'ला' का अर्थ है 'लेना' अर्थात् जो आनन्द लाती हो अथवा वह कला जिससे हम आनन्द लेते हैं। इस प्रकार कला की उत्पत्ति आनन्द भावना से होती है और आनन्द हमें उससे प्राप्त होता है जो सत्य हो, सुन्दर हो, मंगलमय हो। अतः विभिन्न कर्मों में कुशलता प्राप्त करना ही 'कला' है।

प्र0.2 कला के कितने प्रकार हैं ? ललित कला से आप क्या समझते हैं।

उ0. **कला के प्रकार :–**

कला को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है –– उपयोगित कला और ललित कला।

ललित कला :–

जो कला चित का रंजन करे उसे ललित कला कहते हैं। ललित कला को 'चारू' नाम से भी जाना जाता है। चारू अर्थात् सुन्दर। जिस कला से लौकिक तथा अलौकिक दोनों आनन्द प्राप्त होते हैं उसे ''ललित कला'' कहते हैं। लौकिक का अर्थ है – सांसारिक तथा अलौकिक का अर्थ है – आध्यात्मिक। संगीत कला, साहित्यकला, वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला आदि ऐसी ललित कलाएं हैं जिनमें भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों सुखों को प्रदान करने की क्षमता होती है।

यूँ तो सभी ललित कलाओं में संगीत को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है लेकिन सभी ललित कलाएं मानव जीवन का अभिन्न अंग है। संगीत एवं अन्य ललित कलाओं में इतना आकर्षण है कि इसके सामने संसार की बड़ी से बड़ी वस्तु फीकी पड़ जाती है। सांसारिक विषयों से जो सुख प्राप्त होता है उससे कहीं अधिक सुख संगीत एवं अन्य ललित कलाओं से मिलता है। अतः प्रत्येक दृष्टिकोण से संगीत एवं अन्य ललित कलाओं को श्रेयस्कर माना जाता है।

इस संसार में समस्त चेतन प्राणी विषयों के आनन्द के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। इन विषयों के उपलब्ध न होने पर एक–दूसरे में संघर्ष होता है। वे इन विषयों के पीछे इतने पड़ जाते हैं कि उन्हें नैतिक या अनैतिक किसी भी प्रकार से प्राप्त करना चाहते हैं। जिससे देश में अनैतिक और अधर्म फेल जाता है। देश और समाज का ह्रास हो जाता है। इन संघर्षों को रोकने के लिए विषयों से अलग होना आवश्यक है। संगीत एवं ललित कला

ही ऐसी कलाएं हैं जो मनुष्य को इन सांसारिक विषयों से अलग करती है। प्रायः सभी ललित कलाओं का उदेश्य देश और समाज का सृजन करना है। संगीत एवं ललित कलाओं के द्वारा देश के नैतिक उत्थान में विशेष सहायता मिलती है।

प्र0.3 चित्र कला से संगीत का क्या सम्बन्ध है ? वर्णन कीजिए।

उ0. **चित्रकला :–**

चित्रकला में कलाकार रंग तथा ब्रश या तुलिका के माध्यम से विभिन्न प्रकार के चित्रों का निर्माण करता है। चित्रकला में हमें अलौकिक सौंदर्य के दर्शन होते हैं। इसमें चित्रकार अपने मनोगत भावों को चित्र के द्वारा प्रदर्शित करता है। उसी प्रकार संगीतकार भी अपने संगीत के माध्यम से अपने मनोगत भावों को प्रकट करता है। जिस प्रकार चित्रकार किसी चित्र को बनाते समय यह सोचता है कि उसे किसी चित्र को सुन्दर बनाने तथा सजीव करने के लिए किस प्रकार का ब्रश या तुलिका प्रयोग करनी है, किन–किन रंगों का प्रयोग करना है, ठीक उसी प्रकार संगीतकार को भी यह ध्यान रखना पड़ता है कि किसी भी राग का चित्र प्रस्तुत करते समय उसकी संयोजना किस प्रकार की जाए कि जिससे राग का वास्तविक रूप श्रोताओं के समक्ष आ सके। इस प्रकार संगीत का चित्रकला से और भी अधिक समीप का सम्बन्ध है जिसके कारण ये दोनों कलाएं एक–दूसरे की पूरक लगती हैं क्योंकि संगीत में जो राग ध्यानों की कल्पना की गई है और उन्हें गायक और वादक स्वर, लय व ताल के माध्यम से गा–बजा कर उनका मूर्त रूप प्रस्तुत करते हैं ठीक उसी प्रकार चित्रकारों ने इन राग ध्यानों को रंगो व तुलिका के माध्यम से सजीव किया है। दूसरी ओर चित्रकला के माध्यम से हमें प्राचीन चित्रों से प्राचीन संगीत, प्राचीन वाद्यों उनके आकार–प्रकार की जानकारी भी उपलब्ध होती है। हम यह कह सकते हैं कि संगीत में चित्रकला का एक विशेष सीन है। चित्रकला में कलाकार अपने मनोगत भावों एवं जीवन की अनुभूतियों को साकार एवं सजीव बना देता है। जो कार्य चित्र कला का है वही कार्य संगीत कला का भी है। चित्रकार तथा संगीतकार दोनों ही भावों का चित्र खींचते हैं। जिस प्रकार चित्रकार किसी वस्तु या मनुष्य को चित्रकला के द्वारा दर्शाता है उसी प्रकार संगीतकार जीवन के उत्थान–पतन तथा हर्ष–विषाद आदि संघर्षों का दृश्य स्वर, लय और ताल के सहयोग से चित्रित करता है। यही कारण है कि संगीत कला तथा चित्रकला में निकट का सम्बन्ध माना जाता है।

प्र0.4 काव्य कला से संगीत का सम्बन्ध बताइए।

उ0. **काव्यकला :–**

ललित कलाओं में काव्य कला एक श्रव्य कला मानी जाती है। यह कला भी मनुष्य के मनोगत भावों को उजागर करती है और मनुष्य को अलौकिक आनन्द प्रदान करती है। इस कला का भी संगीत से घनिष्ट सम्बन्ध है क्योंकि काव्य कला संगीत के द्वारा अधिक परिभाषित होती है। जिस प्रकार काव्य के बिना संगीत का अस्तित्व अधूरा लगता है उसी प्रकार काव्य में से यदि संगीत को निकाल दिया जाए तो काव्य फीका लगता है। काव्य का

मूल तत्व छंद है जो कि संगीत का भी एक आवश्यक तत्व है। इस प्रकार संगीत कला और काव्य कला का भी आपस में एक घनिष्ठ सम्बन्ध है।

19.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. संगीत निबन्ध माला।
2. संगीत शिक्षा, श्री मति विजय अरोड़ा, ए.पी. पब्लिशर, जालन्धर।
3. संगीत युगे–युगे, तजम्मुल खान संगीतज्ञ, शकीला प्रकाशन, लखनऊ, 1988।
4. भारतीय संगीत का इतिहास, भगवत शरण शर्मा।

19.10 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 कला और ललित कला से आप क्या समझते हैं ?

प्र0.2 संगीत कला का अन्य कलाओं से सम्बन्ध पर प्रकाश डालिए।

–:–:–:–:–:–:–:–

LESSON – 20

Relation between Raga-Rasa and Raga-Bhava

राग–रस और राग–भाव में सम्बन्ध

STRUCTURE :

20.1 भूमिका

20.2 उदेश्य

20.3 राग की परिभाषा

20.4 रस की परिभाषा

20.5 भाव की परिभाषा

20.6 राग और रस में सम्बन्ध

20.7 राग, रस और भाव की स्थिति या सम्बन्ध

20.7.1 शास्त्रकारों के अनुसार

20.8 सारांश

20.9 शब्दकोष

20.10 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

20.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

20.12 महत्वपूर्ण प्रश्न

20.1 भूमिका :– मानव के अंतः करण में निवास करने वाली विशिष्ट भावनाएं जब चरम सीमा पर पहुँच जाती हैं तब रस का संचार होता है। जब हम कोई राग बड़ी कुशलता और स्वर, लय और ताल को ध्यान में रखते हुए तथा माधुर्य, सरलता, रंजकता आदि को ध्यान में रखते हुए गाते हैं तब रस का संचार होता है। यह रस राग से

तभी उत्पन्न होता है जब राग को पूर्ण भाव के साथ गाया–बजाया जाए क्योंकि जब भाव जागृत होता है तभी रस की सृष्टि होती है। एक राग तभी पूर्ण रूप से जागृत हो पाता है अर्थात् रंजकता प्रदान करता है जब उसमें भाव और रस उचित रूप में समाहित हो। अतः राग का रस और भाव से अति निकट का सम्बन्ध है।

राग और रस आपस में कितने निकट हैं, इसका विवेचन करने से पूर्व राग और रस की परिभाषा जानना अत्यन्त आवश्यक है।

20.2 उदेश्य :–

इस पाठ का अध्ययन मे ंहम ये जानेंगे कि राग, रस और भाव का आपसी सम्बन्ध क्या है। साथ ही हमें इस बात का ज्ञान भी होगा कि राग, रस और भाव किसे कहते हैं तथा संगीत में इनका क्या स्थान है।

20.3 राग की परिभाषा :–

संगीत के क्षेत्र में जिस 'जन चित रंजक ध्वनि विशेष' की प्रतिष्ठा है उस ध्वनि विशेष के वाचक 'राग' शब्द का उद्गम 'रंज' धातु से हुआ है। ' रंजयति इति रागः ' अर्थात् जिससे चित का रंजन हो वह 'राग' कहलाता है। भारतीय संगीत में राग को प्रधान अंग माना गया है। संगीत शास्त्रों में राग की परिभाषा इस प्रकार बताई गई है ––

योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वर वर्ण विभूषितः।

रंजको जनचितानां स रागः कथियो बुधैः।।

अर्थात् ध्वनि की वह विशिष्ट रचना जिसमें स्वर और वर्ण सौन्दर्यमान हो, जो मनुष्य के चित का रंजन करे, बुद्धिमान लोग उसे '' राग '' कहते हैं। इस प्रकार राग में स्वर, वर्ण तथा रंजक तत्व का होना अत्यन्त आवश्यक है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 राग की परिभाषा बताइए।

20.4 रस की परिभाषा :–

281 सवह अनुभूति है जो आनन्द प्रदान करती है और जो संवेदनाओं तथा मन में उठने वाले भावों के प्रभाव से उत्पन्न होती है। जब कोई स्वाभाविक वस्तु कुछ परिवर्तित हो क रमन के अन्दर एक असाधारण नवीनता उत्पन्न कर देती है, तब उसे " रस " कहते हैं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 रस की परिभाषा दीजिए।

20.5 भाव की परिभाषा :–

'भाव' राग और रस के द्वारा उत्पन्न वह आनन्द है जो मनुष्य के अन्तःकरण से उत्पन्न होता है। जब कलाकार अपने राग और रस के द्वारा सुनने वालों की भावनाओं को प्रभावित करता है अर्थात् राग और रस के अनुसार श्रोताओं के भावों को अर्थात् श्रेष्ठ आनन्द को जगाता है, तब 281 सवह281 भाव कहते हैं।

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि राग का उदेश्य रंजकता प्रदान करना तथा रस और भाव का उदेश्य आनन्द प्रदान करना है अर्थात् राग, रस और भाव तीनों का उदेश्य एक ही है। अतः संगीत में राग के बिना रस तथा रस के बिना भाव की कल्पना ही नहीं की जा सकती अर्थात् राग के बिना रस और भाव की कल्पना ही नहीं की जा सकती। राग और रस तथा भाव में अटूट सम्बन्ध है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 संगीत में भाव से आप क्या समझते हैं ?

20.6 राग और रस में सम्बन्ध :–

एक राग स्वरों से बनता है। स्वरों से रस की उत्पत्ति राग में लगने वाले स्वरों की प्रधानता पर निर्भर करती है। राग का वादी स्वर राग का मुख्य स्वर होता है। यदि राग का वादी स्वर षड़ज है तो उस राग से वीर, रौद्र या अदभुत रस की उत्पत्ति होगी। षड़ज से तीन रस उत्पन्न होते हैं। राग में वादी स्वर के अतिरिक्त जिन स्वरों की प्रबलता होती है उनके अनुसार षड़ज से कभी वीर, कभी रौद्र तथा कभी अद्भुत रस की उत्पत्ति होगी। इस प्रकार जितने भी राग हैं उन सब में वादी स्वर, न्यास स्वर तथा बहुत्व के स्वर के आधार पर राग से रस उत्पन्न होता है। कोई राग करूण, कोई वीरता तथा कोई शान्त इत्यादि रस को प्रकट करता है। जैसे कहा जाता है कि राग भैरव के स्वरों का योग ही कुछ ऐसा है कि उससे भयानक रस की उत्पत्ति होती है, राग भैरवी से श्रृंगार तथा राग तोड़ी, देस तथा बिहाग आदि रागों से शान्त रस की उत्पत्ति होती है।

राग, रस को उद्दिप्त करता है। जिस प्रकार प्रकृति के बाह्य उपकरण उद्दिपन का कार्य करते हैं, उसी प्रकार विभिन्न रागों के स्वर विभिन्न रसों की सृष्टि करते हैं। षड़ज से वीर, रौद्र और अद्भुत, रिषभ से भी वीर, रौद्र और अद्भुत, गन्धार से करूण, मध्यम से श्रृंगार और हास्य, पंचम से श्रृंगार और हास्य, धैवत से विभत्स और भयानक तथा निषाद से करूण और शान्त रस की उत्पत्ति होती है। अतः जब राग के स्वरों में ही रस विद्यमान है तो राग में रस कैसे नहीं होगा।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 4

प्र0.1 राग और रस में क्या सम्बन्ध है ? उल्लेख कीजिए।

20.7 राग, रस और भाव की स्थिति या सम्बन्ध :–

जिस प्रकार मानव शरीर की नस–नस में रक्त प्रवाहित हो रहा है तथा इन्हीं नसों के योग से मानव शरीर बनता है तो इस प्रकार मानव शरीर को रक्तहीन नही कहा जा सकता, ठीक यही स्थिति राग और रस की भी है। जैसे काव्य में जो उदेश्य रस का है वही उदेश्य संगीत में राग का है। 'रागः इति रंजिता' तथा 'रसोः वैः साः', दोनों का उदेश्य एक ही है। राग और रस की उत्पत्ति का आधार भी एक है और लक्ष्य भी एक है क्योंकि दोनों में कवि और गायक के भाव प्रदर्शन की क्षमता है। इस प्रकार राग से भाव तथा भाव से रस पैदा होता है।

राग और रस का भाव उत्पन्न करना सब के बस की बात नहीं है। एक कुशल कलाकार ही ऐसा कर सकता है और वह भी तभी कर सकता है यदि वह राग को उसके नियम, उसके समयानुसार ए282 सवहयारी के साथ गायन करे।

राग और रस किसी भाव को दर्शाने के लिए क्या भूमिका निभाते हैं, इस पर विचार करना भी आवश्यक है।

20.7.1 शास्त्रकारों के अनुसार —

राग में न तो भाव के बिना रस उत्पन्न होता है और न ही रस के बिना कोई भाव। स्थाईभाव, विभाव, अनुभाव व संचारी भाव के सहयोग से रस उत्पन्न होता है। जब तक स्वर स्थाई नही रहता तब 282 सवह संचारी भाव का प्रकाशक रहता है और जब स्वर स्थाई हो जाता है 282 सवह रस का प्रकाशक होता है। अतः राग का रस एवं भाव से अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 5

प्र0.1 राग, रस और भाव की स्थिति को समझाइए।

20.8 सारांश :–

राग, रस और भाव का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध देखा गया है। राग से भाव तब तक पैदा नहीं हो सकता जब तक रस उत्पन्न न हो और रस तब तक उत्पन्न नहीं हो सकता जब तक गायक या वादक राग को उसके नियमानुसार, भलीप्रकार से अर्थात् पूर्ण भाव के साथ न गाए। इस प्रकार राग–रस और राग–भाव में अत्यन्त घनिष्ठ एवं महत्वपूर्ण सम्बन्ध माना गया है।

20.9 शब्दकोष :–

1. विशिष्ट – असाधारण
2. अन्तःकरण – ह्रदय के अन्दर
3. प्रवाहित – बहाया हुआ या बहता हुआ
4. उद्विपन – प्रज्जवलित करना या उत्तेजित करना
5. उपकरण – यंत्र या अंग

20.10 स्वयं परीक्षा प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 राग की परिभाषा बताइए।

उ0. **राग की परिभाषा :–**

संगीत के क्षेत्र में जिस 'जन चित रंजक ध्वनि विशेष' की प्रतिष्ठा है उस ध्वनि विशेष के वाचक 'राग' शब्द का उद्‌गम 'रंज' धातु से हुआ है। ' रंजयति इति रागः ' अर्थात् जिससे चित का रंजन हो वह 'राग' कहलाता है। भारतीय संगीत में राग को प्रधान अंग माना गया है। संगीत शास्त्रों में राग की परिभाषा इस प्रकार बताई गई है ––

योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वर वर्ण विभूषितः।

रंजको जनचितानां स रागः कथियो बुधैः।।

अर्थात् ध्वनि की वह विशिष्ट रचना जिसमें स्वर और वर्ण सौन्दर्यमान हो, जो मनुष्य के चित का रंजन करे, बुद्धिमान लोग उसे '' राग '' कहते हैं। इस प्रकार राग में स्वर, वर्ण तथा रंजक तत्व का होना अत्यन्त आवश्यक है।

प्र0.2 रस की परिभाषा दीजिए।

रस की परिभाषा :–

284 सवह अनुभूति है जो आनन्द प्रदान करती है और जो संवेदनाओं तथा मन में उठने वाले भावों के प्रभाव से उत्पन्न होती है। जब कोई स्वाभाविक वस्तु कुछ परिवर्तित हो क रमन के अन्दर एक असाधारण नवीनता उत्पन्न कर देती है, तब उसे '' रस '' कहते हैं।

प्र0.3 संगीत में भाव से आप क्या समझते हैं ?

उ0. 'भाव' राग और रस के द्वारा उत्पन्न वह आनन्द है जो मनुष्य के अन्तःकरण से उत्पन्न होता है। जब कलाकार अपने राग और रस के द्वारा सुनने वालों की भावनाओं को प्रभावित करता है अर्थात् राग और रस के अनुसार श्रोताओं के भावों को अर्थात् श्रेष्ठ आनन्द को जगाता है, तब 284 सवह284 भाव कहते हैं।

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि राग का उदेश्य रंजकता प्रदान करना तथा रस और भाव का उदेश्य आनन्द प्रदान करना है अर्थात् राग, रस और भाव तीनों का उदेश्य एक ही है। अतः संगीत में राग के बिना रस तथा रस के बिना भाव की कल्पना ही नहीं की जा सकती अर्थात् राग के बिना रस और भाव की कल्पना ही नहीं की जा सकती। राग और रस तथा भाव में अटूट सम्बन्ध है।

प्र0.4 राग और रस में क्या सम्बन्ध है ? उल्लेख कीजिए।

उ0. **राग और रस में सम्बन्ध :–**

एक राग स्वरों से बनता है। स्वरों से रस की उत्पत्ति राग में लगने वाले स्वरों की प्रधानता पर निर्भर करती है। राग का वादी स्वर राग का मुख्य स्वर होता है। यदि राग का वादी स्वर षड़ज है तो उस राग से वीर, रौद्र या अदभुत रस की उत्पत्ति होगी। षड़ज से तीन रस उत्पन्न होते हैं। राग में वादी स्वर के अतिरिक्त जिन स्वरों की प्रबलता होती है उनके अनुसार षड़ज से कभी वीर, कभी रौद्र तथा कभी अद्भुत रस की उत्पत्ति होगी। इस प्रकार जितने भी राग हैं उन सब में वादी स्वर, न्यास स्वर तथा बहुत्व के स्वर के आधार पर राग से रस उत्पन्न होता है। कोई राग करूण, कोई वीरता तथा कोई शान्त इत्यादि रस को प्रकट करता है। जैसे कहा जाता है कि राग भैरव के स्वरों का योग ही कुछ ऐसा है कि उससे भयानक रस की उत्पत्ति होती है, राग भैरवी से श्रृंगार तथा राग तोड़ी, देस तथा बिहाग आदि रागों से शान्त रस की उत्पत्ति होती है।

राग, रस को उद्दिप्त करता है। जिस प्रकार प्रकृति के बाहृय उपकरण उद्दिपन का कार्य करते हैं, उसी प्रकार विभिन्न रागों के स्वर विभिन्न रसों की सृष्टि करते हैं। षड़ज से वीर, रौद्र और अद्भुत, रिषभ से भी वीर, रौद्र और अद्भुत, गन्धार से करूण, मध्यम से श्रृंगार और हास्य, पंचम से श्रृंगार और हास्य, धैवत से विभत्स और भयानक तथा निषाद से करूण और शान्त रस की उत्पत्ति होती है। अतः जब राग के स्वरों में ही रस विद्यमान है तो राग में रस कैसे नहीं होगा।

प्र0.5 राग, रस और भाव की स्थिति को समझाइए।

उ0. **राग, रस और भाव की स्थिति या सम्बन्ध :–**

जिस प्रकार मानव शरीर की नस–नस में रक्त प्रवाहित हो रहा है तथा इन्हीं नसों के योग से मानव शरीर बनता है तो इस प्रकार मानव शरीर को रक्तहीन नही कहा जा सकता, ठीक यही स्थिति राग और रस की भी है। जैसे काव्य में जो उदेश्य रस का है वही उदेश्य संगीत में राग का है। 'रागः इति रंजिता' तथा 'रसोः वैः साः', दोनों का उदेश्य एक ही है। राग और रस की उत्पत्ति का आधार भी एक है और लक्ष्य भी एक है क्योंकि दोनों में कवि और गायक के भाव प्रदर्शन की क्षमता है। इस प्रकार राग से भाव तथा भाव से रस पैदा होता है।

राग और रस का भाव उत्पन्न करना सब के बस की बात नहीं है। एक कुशल कलाकार ही ऐसा कर सकता है और वह भी तभी कर सकता है यदि वह राग को उसके नियम, उसके समयानुसार ए285 सवहयारी के साथ गायन करे।

राग और रस किसी भाव को दर्शाने के लिए क्या भूमिका निभाते हैं, इस पर विचार करना भी आवश्यक है।

20.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. भारतीय संगीत (एक ऐतिहासिक विश्लेषण), प्रो0 स्वतंत्र शर्मा, अभिनव पब्लिशिंग हॉउस, इलाहाबाद, 2014।
2. संगीत निबन्ध माला।
3. संगीत शिक्षा, श्री मति विजय अरोड़ा, ए.पी. पब्लिशर, जालन्धर।
4. संगीत युगे–युगे, तजम्मुल खान संगीतज्ञ, शकीला प्रकाशन, लखनऊ, 1988।
5. भारतीय संगीत का इतिहास, भगवत शरण शर्मा।

20.12 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 राग, रस और भाव से आप क्या समझते हैं ? वर्णन कीजिए।

प्र0.2 राग–रस और राग–भाव में सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।

–:–:–:–:–:–:–:–

संक्षिप्त वस्तुनिष्ठ प्रश्न–उत्तर

प्र0.1 दिल्ली घराने के प्रवर्तक कौन थे ?

उ0. तानरस खां।

प्र0.2 'कुतुप' के कितने भेद हैं ?

उ0. तीन।

प्र0.3 रज़ाखानी गत को और क्या कहते हैं ?

उ0. पूर्वी बाज।

प्र0.4 ' म प ग म ग ' स्वर समूह निम्न में से किस राग में प्रयोग होता है ?

उ0. बिहाग।

प्र0.5 धमार गायन किस पर्व से संबन्धित है ?

उ0. होरी।

प्र0.6 वायलिन का भारतीय नाम क्या है ?

उ0. बेला।

प्र0.7 हरिप्रसाद चौरसिया का सम्बन्ध इनमें से किस वाद्य से है ?

उ0. बाँसुरी।

प्र0.8 ''त्रीवट'' में किस वाद्य के बोल अधिक प्रयोग होते हैं ?

उ0. पखावज।

प्र0.9 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर स्वरलिपि पद्धति में 'सम' के लिए निम्न में से किस चिन्ह का प्रयोग होता है ?

उ0. 1 (एक का चिन्ह)।

प्र0.10 किस इलैक्ट्रौनिक वाद्य का प्रयोग ताल के लिए किया जाता है ?

उ0. तालमाला।

प्र0.11 धमार ताल में कितनी खाली होती है ?

उ0. 1

प्र0.12 शुद्ध सारंग किस समय का राग है ?

उ0. मध्यान्ह।

प्र0.13 ख्याल, ध्रुपद आदि किसके अन्तर्गत् आते हैं ?

उ0. निबद्ध गान।

प्र0.14 हद्दू खां किस घराने से संबन्धित थे ?

उ0. ग्वालियर।

प्र0.15 आधुनिक समय में वायलिन की जानी–मानी महिला कलाकार कौन हैं ?

उ0. एम राजम।

प्र0.16 ताल के कितने प्राण माने गए हैं ?

उ0. दस।

प्र0.17 ध्रुपद गायकी में निम्न में से किसका प्रयोग किया जाता है ?

उ0. गमक।

प्र0.18 अवनद् वाद्यों को और किस नाम से जाना जाता है ?

उ0. ताल वाद्य।

प्र0.19 संगीत में कितने रस प्रयोग होते हैं ?

उ0. चार।

प्र0.20 ललित कलाएं कितनी हैं ?

उ0. पाँच।

–:–:–:–:–:–:–:–

ASSIGNMENTS

नोट : यहाँ दस प्रश्न दिए गए हैं, इनमें से कोई पाँच प्रश्न करना अनिवार्य है।

प्र0.1 काव्य कला और मूर्ति कला से संगीत का सम्बन्ध समझाइए।

प्र0.2 राग–रस और राग–भाव में सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।

प्र0.3 स्वरलिपि का संगीत में क्या महत्व अथवा लाभ है ?

प्र0.4 राग वृन्दाबनी सारंग का पूर्ण परिचय लिखिए।

प्र0.5 काकु और कुतुप का वर्णन कीजिए।

प्र0.6 ताल के कितने प्राण हैं ? वर्णन कीजिए।

प्र0.7 आड़ाचारताल तथा रूपक की दुगुन और तिगुन लिखिए।

प्र0.8 तानपूरा वाद्य के विषय में आप क्या जानते हैं ? वर्णन कीजिए।

प्र0.9 घराना परम्परा से आप क्या समझते हैं ? गायन के घरानों का वर्णन कीजिए।

प्र0.10 मसीतखानी तथा रज़खानी गत का वर्णन कीजिए।

–:–:–:–:–:–:–:–